कुमाऊँ के साहित्यकार और उनका साहित्य

चक्रधर कर्नाटक

या सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

कुमाऊँ के साहित्यकार
और
उनका साहित्य

चक्रधर कर्नाटक
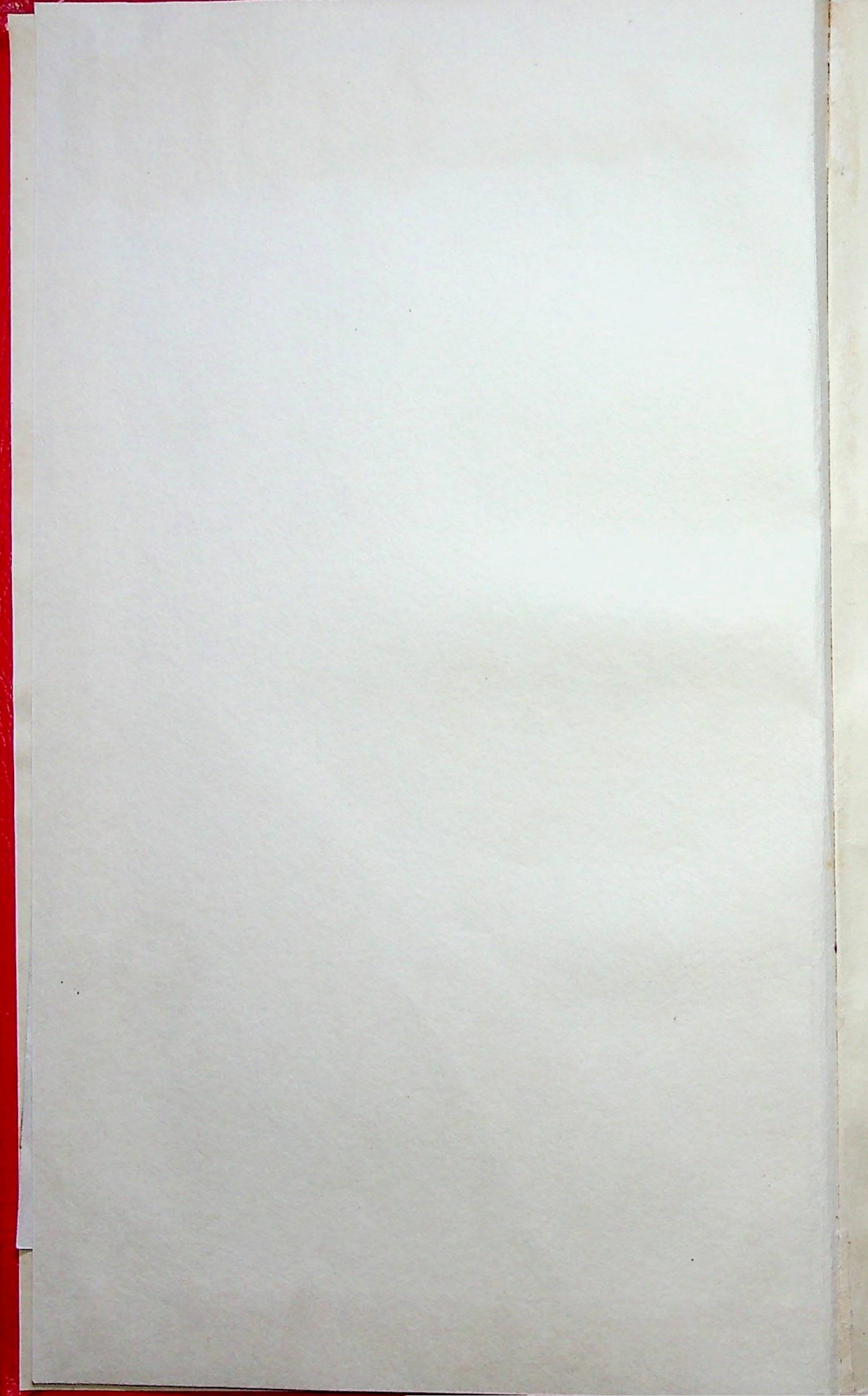
बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

|| श्रीः ||

चौखम्बा राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

१८

कुमाऊँ के साहित्यकार और उनका साहित्य

डॉ. चक्रधर कर्नाटक

प्रवक्ता : राजकीय इण्टर कालेज

(भगतोला) अल्मोड़ा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263

प्रथम संस्करण 2004 ई.

मूल्य : 350.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

प्रस्तावना

कुमाऊँ उत्तराञ्चल का महत्त्वपूर्ण भूभाग है, जिसमें इस समय नैनीताल, अल्मोड़ा, उधमसिंह नगर, चम्पावत, वागेश्वर और पिथौरागढ़ जिले सम्मिलित हैं। प्राकृतिक दृष्टि से यह क्षेत्र प्राय: पर्वतों और नदियों से घिरा हुआ है। पूर्व में काली नदी इसे नेपाल से पृथक् करती है तथा पश्चिम में गढ़वाल का पर्वतीय क्षेत्र है। उत्तर में हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वत शृंखलाएँ एवं दक्षिण में तराई भाँवर का मैदानी क्षेत्र, विशेषत: पीलीभीत, बरेली तथा मुरादाबाद आदि जिले हैं।

कुमाऊँ प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखद एवं रमणीक स्थान है। नैनीताल, भीमताल और नल-दमयन्तीताल के मोहक सरोवर, पुण्यसलिला रामगंगा, सरयू, शारदा एवं गोमती नदियों के उर्वर अंचल, बैजनाथ, बालेश्वर, तालेश्वर, बागेश्वर एवं जागेश्वर के मन्दिरों के भव्य भित्तिचित्र, सघन देवदार के वनों की छटा, चीड़ के पेड़ों से सनसनाती हवा किसका मन नहीं मोह लेती ? न केवल नैसर्गिक सौन्दर्य अपितु भगवान विष्णु के कूर्म अवतार की पावन स्मृति में खड़ा यह पर्वत क्षेत्र भारतमाता के देदीप्यमान मुकुट की रक्षा में सजग प्रहरी की भाँति कब से खड़ा है। सीमावर्ती भूभाग होने से इसका सामरिक महत्त्व भी अत्यधिक है।

कैलाश-मानसरोवर यात्रा-पथ में स्थित होने से प्राचीन काल से ही भारत तथा विभिन्न देशों के तीर्थ-यात्री तथा पर्यटक यहाँ आते रहते हैं। इस भूभाग में अनेक ऐसे स्थान है जिनका संबंध वैदिक-ऋषियों, पौराणिक आख्यानों एवं रामायण तथा महाभारत के पात्रों से जोड़ा गया है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में इस क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का माध्यम संस्कृत भाषा युगों से यहाँ की चेतना रही है, विविध युगों में पर्वतीय क्षेत्र के मेधावी साहित्यकारों ने संस्कृत वाङ्मय की प्राय: सभी विधाओं से सम्बद्ध उच्च कोटि के ग्रन्थ-रत्नों का प्रणयन कर अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन किया है। इस क्षेत्र में आज भी बहुत सी पाण्डुलिपियाँ प्रकाशन की राह देखते-देखते नष्ट हो रही है।

हिन्दी साहित्य में भी कूर्माचलीय साहित्यकारों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, किन्तु साधनों के अभाव में वह सब मौखिक रूप से लोकगीतों, लोककथाओं के माध्यम से सुनने को मिलता है। लिखित साहित्य १८ वीं शती के प्रारंभ में कविवर गुमानी पंत की रचनाओं से मिलता है, जिन्होंने भारतेन्दु जी से एक शती पूर्व खड़ी बोली में काव्य-रचना कर प्रथम खड़ी बोली के कवि होने का गौरव प्राप्त किया। इसके बाद यह परम्परा अक्षुण्ण चली आ रही है। गुमानी के बाद पंडित गंगादत्त उप्रेती का कार्य महत्त्वपूर्ण है। इसके बाद चिन्तामणि जोशी ने संस्कृत से कुमाऊँनी भाषा में 'दुर्गापाठ सार' का प्रकाशन करवाया। इस काल में अन्य भी कई रचनाएं लिखी गई किन्तु प्रकाशन की सुविधा न होने से कई महत्वपूर्ण रचनाएं काल-कवलित हो गई।

इसके बाद बीसवीं शती के आरम्भ में कुमाऊँनी साहित्य में शिवदत्त सती की रचनाएँ काफी लोकप्रिय रहीं। शिवदत्त सती के उपरान्त गाँधी युग के राष्ट्रवादी कवियों में 'गौदा' का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

आधुनिक युग में युगद्रष्टा कविवर पंत सर्वोपरि हैं। इसके बाद श्रीमती तारा पाण्डेय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनके गीतों में आशा, निराशा एवं पीड़ा की धारायें बहती हैं। नयी कविता एवं समकालीन कविता के क्षेत्र में अनगिनत प्रतिभाएं उभर रही हैं, जिसमें हिमांशु जोशी, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय, डॉ. आशापन्त, जीवनप्रकाश जोशी, विनोदचन्द्र पाण्डेय, ब्रजेन्द्रलाल साह आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

कथासाहित्य में स्वर्गीय लक्ष्मीदत्त जोशी कूर्माचल के प्रथम उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यास 'जवाकुसुम' में यहाँ के जन-जीवन का बड़ा मार्मिक विवेचन किया है। इसके बाद इलाचन्द्र जोशी का स्थान है जिन्होंने साहित्य में सर्वप्रथम मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसके बाद पं. गोविन्दवल्लभ पन्त का नाम आता है, जिन्होंने दो दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे ही नहीं अपितु अभी भी हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि करने में जुटे हुए हैं। ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार पर लिखे गये इनके उपन्यास बड़े लोकप्रिय हुए हैं। आञ्चलिक उपन्यासकारों में शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी, मनोहरश्याम जोशी, शिवानी का नाम अग्रगण्य है तो वैज्ञानिक उपन्यासकारों में यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', देवेन्द्र मेवाड़ी आदि का नाम प्रमुख है।

संस्मरण, रेखाचित्र में शिवानी का कोई जवाब नहीं, आलोचना, निबंध के क्षेत्र में डॉ. रमेशचन्द्र शाह, देवेश ठाकुर, त्रिलोचन पाण्डेय आदि का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

साहित्य का ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता न रहा, जिस पर यहाँ के साहित्यकारों ने लेखनी न चलाई हो। एक ओर इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक कथाकार तो दूसरी ओर शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी, जगदीशचन्द्र पाण्डेय जैसे आञ्चलिक कथाकार सामने आए। रमेशचन्द्र शाह, शिवानी ने समसामयिक रचनाएं प्रस्तुत की तो मृणाल पाण्डेय, देवेश ठाकुर ने नवीन रचनाधर्मिता से कथासाहित्य में नया कीर्तिमान स्थापित किया। वैज्ञानिक युग की चमक-दमक देखकर यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' जी एवं देवेन्द्र मेवाड़ी आदि ने वैज्ञानिक कथासाहित्य की रचना कर हिन्दी संसार को अनुपम भेंट प्रदान की। समसामयिक विषयों को लेकर बटरोही, पानूखोलिया, बलवन्त सिंह मनराल, शितांशु भरद्वाज, शेखर पाठक, ब्रजेन्द्र शाह आदि अनेक साहित्यकारों ने सैकड़ों रचनाएं लिखकर हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की, और कर रहे हैं।

कविता के क्षेत्र में पन्त जी का 'लोकायतन' महाकाव्य मानवता के नवीन सूत्रों का प्रतिपादन करता है। नयी कविता में जीवनप्रकाश जोशी, विनोदचन्द्र पाण्डेय आदि की कविताएं बहुत लोकप्रिय हुईं। साठोत्तरी कवयित्रियों में तारा पाण्डेय ने प्रेम की रसधारा ही प्रवाहित कर दी।

नाट्य साहित्य में भी कूर्मांचल के साहित्यकारों ने अपनी अच्छी भूमिका निभाई है। गोविन्दवल्लभ पंत ने अकेले ही दो दर्जन से ऊपर नाटकों की रचना की है। इसके बाद बृजमोहन शाह एवं ब्रजेन्द्रलाल शाह जी का नाम प्रमख रूप से लिया जाता है। आलोचना के क्षेत्र में प्रो. देवेश ठाकुर सर्वप्रमुख समीक्षकों में आते हैं। इसके बाद डॉ. बटरोही, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय एवं डॉ. रमेशचन्द्र शाह आदि प्रमुख कूर्मांचलीय समीक्षकों में हैं।

कथासाहित्य, कविता, नाटक एवं आलोचना के अतिरिक्त निबन्ध, संस्मरण एवं इतिहास लेखन में भी कूर्मांचलीय साहित्यकारों का स्थान पीछे नहीं हैं।

किन्त अभी तक इन साहित्यकारों की रचनाओं का एवं इनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन नहीं हो पाया है। ये टिमटिमाते सितारों की तरह अपने-अपने स्थान में जगमगाते रहे, जो जहाँ भी रहा अपनी लेखनी का प्रकाश फैलाता गया। मैंने इन्हें इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से एक सूत्र में पिरोने का प्रयास मात्र किया है, जिससे इनकी रचनाधर्मिता का, रचनाओं का, कृतित्व एवं व्यक्तित्व का उज्ज्वल पक्ष हिन्दी प्रेमियों के समक्ष आ सके।

पृथक्-पृथक् से इन साहत्यकारों में से कई साहित्यकारों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर अध्ययन हो चुका है। किन्तु समग्र रूप से इस तरह का अध्ययन यह मेरा प्रथम प्रयास है। इस दिशा में सन् साठ तक के साहित्यकारों की रचनाओं का एवं रचनाकारों के व्यक्तित्व का अध्ययन डॉ. भगत सिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध 'कूर्मांचल की हिन्दी साहित्य को देन' शीर्षक से प्रकाशित किया जा चुका है। इस दिशा में ही कदम बढ़ाते हुए मैंने 'साठोत्तर हिन्दी साहित्य को कूर्मांचलीय साहित्यकारों की देन' विषय लेकर इसी कार्य को आगे बढ़ाया है। इस शोध-प्रबन्ध में सन् १९८६-८७ तक की रचनाएं सम्मिलित है। सन् साठ के बाद इस दिशा में मेरा यह मौलिक कार्य है।

विवेच्य प्रबन्ध उपसंहार छोड़कर नौ अध्यायों में पूर्ण हुआ है। प्रथम अध्याय में कूर्मांचल का सामान्य परिचय, स्थिति एवं विस्तार, भौगोलिक सीमा, नामकरण, प्राकृतिक संरचना, जलवायु एवं वनस्पति तथा जीव-जन्तुओं का परिचय देते हुए वहाँ के मूल निवासियों के विषय में विवेचन किया है। इसके बाद कूर्मांचल के सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, मेले, त्योहार एवं उत्सवों के साथ-साथ उपासना पद्धति पर भी विचार किया गया है। इस अध्याय में कूर्मांचल प्रदेश के सामान्य परिचय के लिए उन सभी बातों का समावेश किया गया है, जिनका एक क्षेत्रविशेष की जानकारी के लिए ज्ञान होना परमावश्यक है। विशेष रूप से यहाँ के भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन के वैशिष्ट्य की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है।

द्वितीय अध्याय में कूर्मांचल की साहित्यिक परम्परा की विवेचना की गई है इस अध्याय में प्राचीन काल से कूर्मांचलीय विद्वानों की विद्वत् परम्परा का उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद के क्षेत्र में यहाँ के विद्वानों ने

कीर्तिमान स्थपित किये। कत्यूर एवं चंद राजाओं ने इन विद्वानों को आश्रय दिया। हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली के प्रथम कवि गुमानी (सन् १८०० के आस-पास) के बाद एक अक्षुण्ण परम्परा साहित्यकारों की सामने आती है। इसके बाद शिवदत्त सती, गौर्दा आदि के बाद प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पंत से आज तक के कवियों की परम्परा का परिचय दिया गया है। इसी तरह कथासाहित्य में भी लिखित रूप से स्वर्गीय लक्ष्मीदत्त जोशी प्रथम कूर्माचलीय उपन्यासकार से लेकर आज तक के लेखकों की परम्परा का विवेचन हुआ है।

तृतीय अध्याय में साठोत्तर हिन्दी साहित्य की विवेचना की गई है। साठोत्तर हिन्दी साहित्य का सामान्य परिचय देते हुए उसकी विभिन्न विधाओं-उपविधाओं का विवेचन किया गया है। साठोत्तरी उपन्यास, उनके रूप आञ्चलिक, मनोवैज्ञानिक, वैयक्तिक, सामाजिक आदि रूपों का विवेचन करते हुए उनमें कूर्माचलीय साहित्यकारों की भूमिका का विवेचन भी किया है। इसी तरह साठोत्तरी कहानी, नाटक, एकांकी-नाटक, आलोचनासाहित्य एवं कविता के विषय में चर्चा की गई है। इस चर्चा के अन्त में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इसमें कूर्माचलीय साहित्यकारों का कितना योगदान रहा है।

चतुर्थ अध्याय में कूर्माचल के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों एवं उनकी मानक कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। प्रमुख उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी हैं। उनके व्यक्तित्व का सामान्य परिचय देते हुए उनकी मानक कृतियों 'ऋतुचक्र', 'कवि की प्रेयसी', 'त्याग का भोग', 'भूत का भविष्य' आदि का विवेचन किया है। इसके बाद पं. गोविनदवल्लभ पन्त जी के व्यक्तित्व का परिचय देते हुए इनकी मानक कृतियों कोहनूर का हरण, निहारिका, रूपगंगा, उजाली, ध्वंश और निर्माण, संशय का आखेट, रजिया, तीन दिन, अँधेरे में उजाला, ज्वार, परिचारिका, कनक-कमल आदि का विवेचन किया है। इसके बाद शिवानी के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय देते हुए उनकी मानक कृतियों मायापुरी, चौदहफेरे, कृष्णकली, भैरवी, श्मशान चम्पा, सुरंगमा, रतिविलाप, कैजा, गैडा, रथ्या, कृष्णवेली, विषकन्या, माणिक, किशुनली का ढाँट, अतिथि आदि का विवेचन किया है। शिवानी के बाद कूर्माचल के यशस्वी सहित्यकार शैलेश मटियानी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विवेचना की गई है उनकी मानक कृतियों हौलदार, एक मूँठ सरसों, जलतरंग, दो बूँद जल, रामकली, सर्पगंधा, डेरेवाले, सवित्तरी, गोपुली, गफूरन, मुठभेड़, आकाश कितना अनन्त है आदि का विवेचन किया गया है। इसके बाद वैज्ञानिक कथाकार यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' जी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। अशोक जी के बाद हिमांशु जोशी, देवेश ठाकुर, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, ब्रजेन्द्र शाह, पानूखोलिया, मृणाल पाण्डेय, मनोहरश्याम जोशी, गोपाल उपाध्याय, नित्यानन्द, गिरिराज शाह, शितांशु भारद्वाज, देवेन्द्र मेवाड़ी आदि के कृतित्व एवं व्यक्तित्व की विवेचना की गई है।

ग्रन्थकारों के अध्ययन में व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी दो पक्ष रखे गये हैं। प्रथम में ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय (जीवन) तथा द्वितीय में उसकी प्रत्येक रचना का साहित्यिक मूल्यांकन है। अप्रकाशित कृतियों के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं एकत्र की गयी है। यद्यपि प्रधानतः साहित्यिक विषयों की ही गवेषणा की गई है, तथापि रचनाकारों की साहित्येतर कृतियों का समावेश भी कहीं पर हो गया है।

पंचम अध्याय में साठोत्तर हिन्दी साहित्य के कूर्माचलीय कहानीकारों एवं उनकी मानक कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। साठोत्तर कूर्माचलीय कहानीकारों में शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी, शिवानी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' शेखर जोशी, मनोहरश्याम जोशी, पानूखेलिया, लक्ष्मणसिंह विष्ट 'बटरोही', मृणाल पाण्डेय, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, श्री नित्यानन्द, पंकज विष्ट, कैलाश शाह, देवेन्द्र मेवाड़ी एवं शितांशु भारद्वाज की रचनाओं को चुना गया है।

षष्ठ अध्याय में कूर्माचल के सहित्यकारों का साठोत्तर हिन्दी काव्य पर प्रकाश डाला गया है। साठोत्तर कूर्माचलीय साहित्यकारों में कविवर सुमित्रानन्दन पंत का सर्वप्रथम स्थान है। उनकी साठोत्तरी रचनाओं में लोकायतन, सत्यकाम, पतझर : एक भाव क्रान्ति, पौ फटने से पहले, गीतहंस, शंखध्वनि, शशि की तरी, समाधिता, गीत-अगीत तथा संक्रान्ति है। इन सबका क्रम से विवेचन किया गया है। इसके बाद तारा पाण्डेय की एकमात्र साठोत्तरी रचना 'रंजना' की समीक्षा की गई है। इसके बाद नई कविता के क्षेत्र में विनोदचन्द्र पाण्डेय, जीवनप्रकाश जोशी, तथा दुर्गादत्त त्रिपाठी एवं मथुरादत्त पाण्डेय जी की रचनाओं की समीक्षा की गई है।

सप्तम अध्याय में कूर्माचल के प्रमुख नाटककारों एवं उनकी रचनाओं का विवेचन किया गया है। प्रमुख नाटककारों में पं. गोविनदवल्लभ पंत का नाम सर्वोपरि है। उनके प्रमुख नाटकों-अधूरी मूर्ति, गुरूदक्षिणा, अँधेरी बस्तियाँ, आत्मदीप, तुलसीदास, पन्ना एवं अहंकार की समीक्षा की गई है। इसके बाद बृजमोहन शाह के प्रमुख नाटक त्रिशंकु, शह ये मात, एवं युद्धमन की समीक्षा करने के उपरान्त ब्रजेन्द्रलाल शाह के अष्टावक्र, महाभारत एवं वन्या गीतिनाटिका की समीक्षा की गई है।

अष्टम अध्याय में कूर्माचल के सात्यिकारों का साठोत्तर निबंध एवं आलोचना साहित्य पर विचार किया गया है। प्रमुख निबंधकार एवं आलोचकों में शिवानी, सुमित्रानन्दन पंत, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, डॉ. प्रो. देवेश ठाकुर, जीवन प्रकाश जोशी, डॉ. बटरोही, केशवदत्त रूवाली आदि प्रमुख हैं।

नवम अध्याय में कूर्माचलीय साहित्यकारों की अन्य साठोत्तर साहित्यिक विधाओं का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत कूर्माचलीय साहित्यकारों द्वारा लिखित संस्मरण एवं रेखाचित्र, बाल-साहित्य, जीवनी-साहित्य, इतिहास, पत्रकारिता, अनुवाद कार्य आदि का विवेचन किया गया है।

अन्त में उपसंहार के बाद परिशिष्ट को दो भागों में बाँटकर प्रथम भाग में कूर्माचलीय रचनाकारों की कृतियों का अकारादि क्रम से विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा द्वितीय भाग में सहायक ग्रन्थ सूची दी गई है।

सामग्री चयन तथा आभार

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में निम्न तथ्यों से विशेष सहायता प्राप्त हुई—

(१) विभिन्न सूची-पत्र

(२) विभिन्न पुस्तकालय, जिनमें गायकवाड़ ग्रन्थालय, नागरी प्रचारिणी, सरस्वती भवन, विश्वनाथ आर्य पुस्तकालय, खोजवाँ आदर्श पुस्तकालय (सभी वाराणसी में), जिला पुस्तकालय, अल्मोड़ा, अद्वैत आश्रम, मायावती का पुस्तकालय, जिला पुस्तकालय पिथौरागढ़, दुर्गालाल शाह पुस्तकालय, नैनीताल, कूमायूँ विश्वविद्यालय पुस्तकालय आदि प्रमुख हैं, से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई।

(३) व्यक्तिगत संग्रह : इसमें स्वर्गीय श्री चन्द्रमोहन भट्ट जी एवं ब्रजेन्द्र शाह तथा श्री गोपालदत्त पाण्डेय जी के निजी ग्रन्थागार विशेष उल्लेखनीय हैं। क्षेत्र विशेष का अध्ययन होने से कूर्माचल के सर्वेक्षण तथा यात्रा भ्रमण में सम्पर्क में आये सहयोगी सज्जनों से विषय से सम्बद्ध आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त हुई।

यात्रा-भ्रमण के सहयोगी सज्जनों तथा व्यक्तिगत संग्रह के उन विद्वानों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिनसे मुझे प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को तैयार करने में आवश्यक सामग्री प्राप्त हुई। विशेषरूप से मातृमयी मौसी श्रीमती भाग्यवती भट्ट का मैं चिरऋणी हूँ, जिनसे न केवल मुझे इस कार्य में अग्रसर होने की प्रेरणा मिली अपितु उन्हीं के उत्साह से यह कार्य सम्पन्न हो पाया। अस्वस्थता एवं निरन्तर व्यस्तता के बावजूद भी आपने विषय से सम्बन्धित सामग्री चयन में अपना अमूल्य समय देकर मुझे अनुगृहीत किया, किन्तु मैं तो केवल कृतज्ञता ज्ञापन के सिवा और कर ही क्या सकता हूँ। शोध-प्रबन्ध की सामग्री एकत्रित करने में वैज्ञानिक कथाकार यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' जी के सहयोग की सराहना करता हूँ।

प्रबन्ध के समापन के लिए मैं सर्वप्रथम अपने विभाग के अध्यक्ष डॉ. त्रिभुवन सिंह के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ, जिनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार से सदैव ही मुझे आगे बढ़ने में सहयता मिली है। अपने गुरूवर निर्देशिका डॉ. आशापन्त जी, प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समक्ष मेरा मस्तक स्वयं ही श्रद्धा से नत हो जाता है, जिनसे अध्ययन सामग्री, मार्ग निर्देशन के अतिरिक्त पारिवारिक स्नेह प्राप्त कर मैंने इस महत् कार्य में सतत प्रेरणा प्राप्त की है।

अपने विभाग के डॉ. रामनरेश वर्मा जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरी सहायता कर मार्ग प्रशस्त किया है।

पूज्य पिता जी एवं स्नेहमयी माँ का चिरऋणी हूँ, जिनके पावन आशीर्वाद से मैं इस कार्य को प्रसन्नता पूर्वक पूर्ण कर पाया और जीवन-संगिनी प्रिय बीना एवं प्यारी अप्पू (पुत्री अपर्णा) का पग-पग पर मुझे सहयोग ही प्राप्त नहीं होता रहा वरन् सम्पूर्ण गृहस्थी का भार अपने ऊपर लेकर उस स्नेहमयी ने मुझे स्वतंत्र पढ़ने का अवसर दिया उसके लिए मैं क्या कहूँ ? उसके स्नेह का आकांक्षी हूँ और रहूँगा। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के कुशल टंकण के लिए मैं अपने मित्र प्रिय बिट्ठल जी के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए उनका चिर आभारी हूँ।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों, ग्रन्थकारों तथा सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनसे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विषय में ज्ञात-अज्ञात, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से यत्किंचित् भी सहायता ली गई है और क्षमा मांगता हूँ उन अज्ञात साहित्य मनीषियों से, जिनका कि साधनों के अभाव में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समावेश नहीं हो पाया है।

अन्त में जगज्जननी माँ भगवती से प्रार्थना है कि वह मेरे कार्य को सफल बनावें।

चक्रधर कर्नाटक

विषयानुक्रमणिका

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

●

प्रथम अध्याय

कूर्माचल का सामान्य-परिचय

गगनचुम्बी उत्तुंग शैल-शिखरों से सुशोभित, पावनसलिला जाह्नवी से निरन्तर चुम्बित, परम-पिता परमेश्वर एवं जगज्जननी पार्वती की क्रीड़ाभूमि शैलराज हिमालय, जिसकी पर्वत श्रेणियाँ काश्मीर से आसाम तक फैली हुई हैं, उसी पर्वतराज हिमालय की गोद में स्थित है—'कूर्माचल' अथवा कुमाऊँ का सुरम्य प्रदेश, जहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य अपनी अनुपम छटा बिखेरे हुए है। सदाबहार चीड़ देवदार के वनों के मध्य असंख्य खिले-अधखिले 'बुराँश' के लाल रंग के पुष्प अनायास ही मन मोह लेते हैं। एक तरफ उत्तुंग शैल-शिखर तो दूसरी ओर अतल गहरी तंग घाटियाँ, कहीं पर्वतों के सीने में भेद कर सर्पाकार सड़कें बनी हैं और कहीं सीढ़ीदार खेत लहलहा रहे हैं और कहीं स्तब्ध नीरवता को भंग करती छलछलाती नदियों एवं झरनों का नृत्य कलरव हो रहा है। इस प्रकार प्रकृति नटी के अनेक रूपों को अपने में संजोये हँसकर अतिथियों का, शैलानियों का स्वागत करने के लिए हमेशा तत्पर है कूर्माचल।

कुमाऊँ उत्तरांचल का एक महत्त्वपूर्ण पर्वतीय भूभाग है, जिसमें इस समय नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ ये तीन उत्तरी जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश के उत्तर में हिमालय की हिमाच्छादित श्रृंखलाएँ इसे तिब्बत से अलग करती है। दक्षिण में तराई का मैदानी क्षेत्र है। पूर्व में काली नदी वर्तमान नेपाल राष्ट्र के साथ सीमा बनाती है। पश्चिम में वर्तमान गढ़वाल मण्डल है।

कूर्माचल का भौगोलिक पुरातन स्वरूप स्कन्दपुराणान्तर्गत 'मानसखण्ड' में विस्तार से वर्णित है। समस्त क्षेत्रों को पर्वतशिखरों तथा शृंगों द्वारा विभाजित किया गया है। प्राकृतिक विभाग की यह परम्परा पुराणों के समय से चली आ रही है। आज भी क्षेत्रीय विभाजन में वही सिद्धान्त अपनाया जाता है। वर्तमान समय के अनुसार उन क्षेत्रों में विद्यमान स्थानों की विशेषता का निदर्शन कारण सहित पुराणों में देखने को मिलता है। तदनुसार 'मानसखण्ड' में भी उसके अन्तर्गत प्रत्येक शिखर एवं शृंग पर विद्यमान स्थान विशेषों का महत्त्व किसी देवता से सम्बद्ध कर वर्णित किया गया है। उसी के साथ ही क्रमशः उस क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ, स्रोत, जलाशय, मन्दिर, वनस्पति, धातु, खनिज सामग्री आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।[१]

अन्य हिमालयस्थ खण्डों के अनुसार इस खण्ड का 'मानसखण्ड' नाम भी

१. नाम्ना नन्दागिरिः पुण्यः यत्र नन्दा महेश्वरी। ततो मानसखण्डे वै पुण्यो द्रोणगिरिः स्मृतः ॥
महौषधिसमाकीर्णः सिद्धगन्धर्वसेवितः। ततः पुण्यो महाभाग विद्यते दारुकाननः ॥
यत्र योगीश्वरो देवो पूज्यते नात्र संशय :। परं कूर्माचलो नाम पर्वतः ख्यायते भुवि ॥
यत्र वै मानसस्यान्तं वदन्ति मुनयः शुभाः ॥ (मा.ख.—२१/९-१२)

सर्वथा सार्थक है। इससे स्पष्ट होता है कि पौराणिक मान्यता के अनुसार वर्तमान कूर्माचल का क्षेत्रीय विस्तार मानसरोवर पर्यन्त रहा। कैलाश आदि पर्वत भी इस अंक के भाग थे। मानसखण्ड में वर्णित क्रम इस बात को सूचित करता है। तदनुसार 'मानसखण्ड' के अन्तर्गत मानसरोवर, कैलाशपर्वत, राक्षसताल आदि स्थानों को मानस क्षेत्र में समाविष्ट किया गया है। अत: तिब्बत से मिलती हुई भारतीय सीमा का यह अन्तिम छोर था। कूर्माचल की उत्तरी सीमा का अन्त यहाँ होता था। मानसरोवर के आगम तथा निर्गम के विभिन्न मार्गों से यह सूचित होता है कि यहाँ तक की यात्रा निरापद होती रही है।

मानसरोवर की यात्रा के प्रसंग में आयात और निर्यात दोनों मार्गों का उल्लेख 'मानसखण्ड' में किया गया है। मानसरोवर जाने के मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए मानसखण्ड में कहा गया है कि यात्री को कूर्माचल मार्ग से जाना चाहिए। वहाँ से लोहाघाट होते हुए 'कूर्मशिला' की चोटी पर पूजन कर सरयू में स्नान करने के उपरान्त दारुण व झाँकर (जागीश्वर), पातालभुवनेश्वर, रामगंगा, पावनपर्वत, पताकापर्वत (ध्वज-पर्वत), कालीगौरी का संगम चतुर्दृष्ट्र, व्यासाश्रम,,काली नदी का मूल (केराल-छेछला पर्वत) पलोमन पर्वत तथा तारक पर्वत होते हुए गौरी पर्वत से नीचे उतर कर मानसरोवर में नहाये और लौटते समय यात्री राक्षसताल, कैलाश, सरयूमूल, खेचरी तीर्थ से जाय।[१]

वर्तमान स्वरूप में उत्तरांचल में हिमालय का समस्त पूर्वी भाग जो प्रशासनिक दृष्टि से पिथौरागढ़, अल्मोड़ा व नैनीताल जिलों को सम्मिलित करते हुए कुमायूँ मण्डल में है, जो कूर्माचल अथवा कुमाऊँ कहलाता है। 'कुमाऊँ' के स्थान पर इधर 'कुमायूँ' लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, परन्तु ऐसे उच्चारण एवं वर्तनी का प्रयोग व्यवहार की दृष्टि से मानक नहीं कहा जा सकता।[२] उत्तरांचल में प्राकृतिक जल विभाजक रेखा इसे तिब्बत से पृथक् करती है, जबकि काली नदी नेपाल के साथ इसकी पूर्वी सीमा बनाती है। इस प्रकार इसकी समस्त उत्तरी एवं पूर्वी सीमाएँ अन्तर्राष्ट्रीय होने के साथ-साथ प्राकृतिक भी हैं। पश्चिम में गढ़वाल के चमोली व पौड़ी जिले एवं दक्षिण पश्चिम में बिजनौर जिला स्थित है, जबकि दक्षिण में इसकी सीमा का स्पर्श पश्चिम से पूर्व की ओर मुरादाबाद, रामपुर, बरेली एवं पीलीभीत जिलों से होता है।

कूर्माचल का विस्तार २८°-४४' व ३०°-४९' उत्तरी अक्षांश एवं ७८°-४५' व ८१°-५' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। इसका क्षेत्रफल ८००० वर्ग मील एवं जनसंख्या १२ लाख के आसपास है।[३] हिमालय उत्थान के फलस्वरूप उत्पन्न सभी भूगर्भिक क्षेत्रों का विकास हिमालय के अन्य भागों की भाँति कूर्माचल में भी देखने को मिलता है। धरातलीय एकरूपता के कारण उक्त भूगर्भिक क्षेत्र कई प्रकार की भौगोलिक समानताओं

१. मानसखण्ड; ११/१४-६८

२. कुमाउनी भाषा—डॉ. केशवदत्त रूवाली, पृ. ३६-३७

३. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—राहुल उपाध्याय, भाग १६, पृ. ७६

का प्रदर्शन करते हैं। दक्षिण में तराई व भाँवर के लगभग समतल क्षेत्रों से लेकर उत्तर की ओर शिवालिक, लघु हिमालय, उच्चतम हिमाच्छादित शृंखलाओं एवं ट्रान्स हिमालय को सम्मिलित करते हुए कूर्माचल का धुर उत्तरी विस्तार, भारत-तिब्बत सीमा जल विभाजक तक है, जिसके मध्य अनेकों भौगोलिक विविधताएँ निहित हैं। उत्तरी जल विभाजक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का रहा है। जहाँ भारत व तिब्बत के मध्य प्राचीन आवागमन सम्पर्क एवं व्यापार के प्रतीक अनेक दर्रे स्थित हैं, जिनमें कुंगरी विंगरी ५५७८ मी. तथा लिपुलेख ५४५३ मी. उल्लेखनीय हैं। १९६२ के चीनी आक्रमण के बाद से इनकी भूमिका व्यापार व सम्पर्कों की अपेक्षा मुख्यत: सामरिक दृष्टि से है।

उत्तरी जल विभाजक के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण भौगोलिक तथा निरन्तर हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाएँ हैं। इस शीतप्रधान एवं सर्वाधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र में ६००० मी. से अधिक ऊँचाई की कई चोटियां हैं जिसमें त्रिशूल ७१२० मी., नन्दादेवी ७८१७ मी., नंदाघुटी ६४०९ मी., नंदाकोट ६८६१ मी., नंदाघाट ६६११ मी. तथा पंचचूली ६९०४ मी. उल्लेखनीय हैं। इन पर्वत शृंखलाओं के निचले भागों में कई हिमानियाँ विकसित हुई है, जिनमें पिंडारी एवं मिलम प्रमुख हैं। यह समस्त क्षेत्र हिम के रूप में वर्षण प्राप्त कर कूर्माचल की नदियों का उद्गम व अस्तित्व का आधार है, जिसमें मुख्य शृंखलाओं के उत्तरपूर्व में जन्म लेने वाली मुख्य नदियाँ कुटीयागटी, धोली एवं गोरी हैं। जबकि मध्य भाग में सरजू, पिंडर, रामगंगा, पश्चिम एवं पूर्वी हिमालय से जन्म लेने वाली प्रमुख नदियाँ हैं। दक्षिण की ओर कोसी, गगास, सुवाल, पनार, गोला व लधिया नदियाँ हिमाच्छादित क्षेत्रों से जन्म नहीं लेती। पूर्वी भागों में जल-प्रवाह की दिशा सामान्यत: दक्षिण-पूर्व एवं दक्षिण-पश्चिम की ओर है जो पश्चिमी रामगंगा में सम्मिलित होता है। शिवालिक की बाह्य शृंखलाओं से भी कई मौसमी एवं तीव्रगामी नदियाँ जन्म लेती हैं।

कूर्माचल का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल २१६३२ वर्ग कि.मी. है, जिसका लगभग ७४% धरातल पर्वतीय एवं औसतन ५०० मी. से अधिक ऊँचाई पर स्थित है। विभिन्न जिलों के मुख्य भूमि उपयोग सम्बन्धी आँकड़े निम्न तालिका में दिये गये हैं जो इस क्षेत्र में कृषि सिंचाई एवं वनों के वितरण पर भौगोलिक प्रभावों को स्पष्ट करने में सहायक होगें।[1]

जिला	कुल भौगोलिक क्षेत्रफल कि.मी.	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल कुल का प्रतिशत	सिंचित क्षेत्रफल बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत	वनों के अन्तर्गत कुल भाग का प्रतिशत
पिथौरागढ़	८८५५	८.०८	९.६९	३९.७
अल्मोड़ा	५३८५	२२.४९	९.२७	४७.८
नैनीताल	६७९२	३०.३६	५०.५९	६८.३

१. कूर्माचल-केशरी जन्मशती विशेषांक ''कूर्माचल भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में'', डॉ. शरदचन्द्र जोशी।

जैसा कि उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है, उत्तर की ओर भौगोलिक दशाएँ कृषि हेतु विषम होती चली जा रही है। इसी कारण सर्वाधिक क्षेत्रफल वाले जनपद पिथौरागढ़ में कृषि एवं वनों के अन्तर्गत भूमि न्यूनतम है।

स्वाभाविक रूप से इसका प्रमुख कारण विशाल क्षेत्रों का तीव्र ढाल हिमाच्छादित क्षेत्रों व असमान धरातल के अन्तर्गत होना है। समस्त भूभाग का २/३ पर्वतीय धरातल होने के कारण ही कूर्मांचल के कुल क्षेत्रफल के केवल ३,९८,९४६ हेक्टेअर या १८.९६ भाग में ही कृषि संभव हुई है। साथ ही वनों के वितरण पर भी भौगोलिक दशाओं की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। नैनीताल जिला वनाच्छादित है, यद्यपि पूर्णत: पर्वतीय जिलों पिथौरागढ़ एवं अल्मोड़ा का सिंचित क्षेत्रफल लगभग समान हैं। नैनीताल में भाँवर व तराई क्षेत्रों में सिंचाई विकास के कारण कुल कृषि का आधा भाग सिंचाई सुविधा प्राप्त करता है। सभी जिलों में पिथौरागढ़ का अपना विशिष्ट अस्तित्व है। कूर्मांचल के कुल क्षेत्रफल के ४२.१०% भाग में फैले हुए इस जिले का विस्तार भाँवर के लगभग समतल धरातल से लेकर धुर उत्तर में स्थित तिब्बत से सीमावर्ती जल विभाजक तक फैला है, जिसके मध्य में समस्त भौगोलिक व भूगर्भिक विविधताएँ निहित हैं, जो सामान्यत: हिमालय के सभी भागों दक्षिण से उत्तर तक पायी जाती है। इस जिले की समस्त उत्तरी व पूर्वी सीमायें अन्तर्राष्ट्रीय हैं तथा भौगोलिक विषमताओं के कारण ही कूर्मांचल न्यून जनसंख्या एवं घनत्व वाला क्षेत्र है।

१९८१ की जनगणनानुसार कूर्मांचल की कुल जनसंख्या २३,५८,७८५ है।[१] उपरोक्त आँकड़ों के अनुसार पिथौरागढ़, अल्मोड़ा एवं नैनीताल जिलों का जनसंख्या घनत्व क्रमश: ५४,१३८ तथा १६८ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। पिथौरागढ़ जिले में जो लगभग २/५ क्षेत्रफल में विस्तृत है, कूर्मांचल की केवल २०.३% जनसंख्या निवास करती है। जबकि नैनीताल जिला कुल भूभाग की लगभग आधी जनसंख्या (४८%) का निवास क्षेत्र है।

आदिकाल से ही कूर्मांचल मानव की क्रीड़ास्थली रहा है। स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक वातावरण पर मानव प्रभावों की सर्वाधिक छाप इसी भूभाग में देखने को मिलती है। चाहे पर्वतीय ढालों में सदियों से सीढ़ीनुमा खेतों में कृषि क्षेत्रों के रूप में या दुर्गम पर्वतीय धरातल में सर्पाकार सड़क मार्गों, प्राचीन अवशेष, मूल वाख्ली, घराट आदि के रूप में, चाहे भूस्खलन व भूमि अपक्षय के रूप में अथवा व्यापक स्तर पर वनस्पति के विनाश के रूप में। अनेक प्रकृति प्रदत्त सुविधाओं के कारण ही यह भौगोलिक क्षेत्र कूर्मांचल की कुल पर्वतीय जनसंख्या के लगभग ७०% का निवास क्षेत्र है। स्वाभाविक रूप से समस्त मानवीय आर्थिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्रियाएँ इसी भाग में केन्द्रित हैं।

---

१. कूर्मांचल-केशरी जन्मशती विशेषांक, "कूर्मांचल भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में", डॉ. शरदचन्द्र जोशी।

कूर्माचल की निरुक्ति का सम्बन्ध विष्णु भगवान के द्वितीय अवतार कूर्मावतार के साथ जोड़ा जाता है। इस विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है जो कूर्माचल के नामकरण का आधार बनी हुई है—कहा जाता है कि विष्णु भगवान का कूर्म अवतार वर्तमान पिथौरागढ़ जनपद में चम्पावती नदी के पूर्व स्थित कूर्मपर्वत में हुआ, जो आजकल कोनदेव, कांडादेव, क्रान्तेश्वर कहलाता है।[1] चम्पावत के आसपास का क्षेत्र आज भी पहाड़ी जनभाषा में कुम्मू नाम से जाना जाता है। कुमाऊँ शब्द (कुमूँ) कूर्माचल का अपभ्रंश है। इस भूभाग की 'कूर्माचल' नाम से प्रसिद्धि चन्दराजाओं के समय से चली आ रही है। इसके पूर्व कूर्माचल नाम स्कन्दपुराण (केदारखण्ड) में हिमालय के पांच भागों में कूर्माचल भी एक भाग है—

खण्डा: पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्माचलो।
केदारोऽयं जलन्धरोऽयं रूचिर: काश्मीर संज्ञोऽन्तिम: ॥[2]

कूर्माचल नाम मानसखण्ड के अनुसार केवल मंगा काल प्रदेश (वर्तमान कालीकुमूँ) को ही दिया गया था। इस प्रदेश की महत्ता कूर्मअवतार के स्थित रहने के कारण विशेषतया विदित रही। आज भी वह स्थान 'कूर्मशिला' (कानदेव) के नाम से प्रसिद्ध है। उसी को केन्द्र मानकर चम्पावत की सुरम्य स्थली मांडलिक विकोठी राजा एवं चन्दराजाओं की राजधानी रही। जब चन्दराजाओं ने क्रमश: अपने राज्य-विस्तार करना आरम्भ किया तो चम्पावत में रहने पर प्रशासनिक कठिनाइयाँ अनुभव होने लगी। अत: वालो कल्याणचन्द ने (१५६०-१५६५) अल्मोड़ा को १५६३ ई० में अपना केन्द्र स्थान बनाया और पूरे राज्य की संज्ञा कूर्माचल को दी।[3]

इसी कारण आज भी पुरातन कूर्माचल शब्द लोकभाषा में 'कालीकुमूँ' अर्थात् काली नदी से सम्बद्ध कुमाऊँ नाम अपनी सत्ता को बनाये हुए सीमित अर्थ को सूचित करता है।

शक्तिसंगम तंत्र में इसे कूर्मप्रस्थ कहा गया है, जो मानसरोवर के दक्षिण में तथा शारदा नदी के पश्चिम में अवस्थित था।

'कूर्मप्रस्थ महेशान्ति कथ्यते श्रृणु साम्प्रतम्।
उत्तरे मानसेश: स्यात् शारदापश्चिमे भवेत् ॥[4]

महाभारत सभापर्व २८-२९ तथा अध्याय ५२ में अर्जुन के दिग्विजय प्रसंग में पर्वतों की ओर जाने के अनेक आख्यान मिलते हैं। साथ ही युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर आये हुए तत्कालीन पर्वतीय राजाओं तथा विशेषत: पर्वतीय क्षेत्र में प्राप्त

१. दि हिमालियन गजिटियर, वा. तृतीय भाग प्रथम, पृ. १६३ टि. एटकिंशन
२. केदारखण्ड—४०/२८-२९; आर्कोलाजी आफ कुमाऊँ, नौटियाल, पृ. ५१
३. (क) कुमाऊँ का इतिहास—बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. २६, संस्करण १९३७।
(ख) हिमालयन गजिटियर, वा. तृतीय भाग प्रथम, पृ. १६३, टि. एटकिंशन
४. शक्तिसंगम तन्त्र—८/१४।

होने वाली वस्तुओं तथा औषधि, कस्तूरी, चेंवर, मधु, पिपीलिका, स्वर्ण आदि का उल्लेख है। यहाँ के पिपीलिक स्वर्ण का उल्लेख चीन और यूनान के लेखकों ने भी किया है। 'मानसखण्ड'में इसे मानसखण्ड नाम से बताया है यथा—

नन्दपर्वतमारभ्य यावत् काकगिरिः स्मृतः ।
तावद् वै मानसः खण्डः ख्यायते नृपसत्तमः ।।

अर्थात् नन्दादेवी से काकगिरि पर्यन्त मानसखण्ड फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत कैलाशादि तीर्थ स्थानों से प्रारंभ कर गढ़वाल के कर्णप्रयाग के पूर्व पिण्डर नदी के तटवर्ती प्रदेशों के साथ ही पुरातन डोटीराज्य के छकाड़ प्रदेश एवं नैनीताल जिले की तराई भाँवर तक भूभाग समाविष्ट है।[१]

१२वीं-१३वीं शती के पर्वतीय बौद्ध राजाओं (अशोकमल, जयतुंग सिंह, कामदेव सिंह तथा पुरुषोत्तम सिंह आदि) ने कूर्माचल के लिए 'कमादेश' शब्द प्रयुक्त किया है। बोधगया से प्राप्त अभिलेखों में इसका उल्लेख हुआ है—

अगाधगुणसम्पूर्णः सर्व सौख्यैरलङ्कृतः ।
सुवेशाश्च कमादेशो वसत्पूर्व प्रदेशतः ।।[२]

चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' में इसे कुमाऊँ कहा गया है। रासो के अनुसार दिल्ली, अजमेर के चौहानवंशी राजा पृथ्वीराज तृतीय (११७८-९२ ई०) के समय उत्तर दिशा में सवा लाख शैलों वाले कुमाऊँगढ़ में कुमुदमणि नाम का राजा शासन करता था—

सवालक्ष्य उत्तर रायल कमाऊँगढ़ दूरंग ।
राजतराज कुमोदमनि हय गय दिव्य अभंग ।।[३]

कमादेश, कुमाऊँ के साथ ही साथ कुमाऊँ तथा कुमायूँ नाम से भी इस प्रदेश को जाना जाता है किन्तु कूर्माचल तथा जनभाषा का रूप कुमाऊँ ही अधिक प्रचलित है।

कूर्माचल नाम को व्यापक रूप देने तथा उसके प्रचार तथा प्रसार का श्रेय यहाँ के चंदवंशी राजाओं तथा संस्कृतज्ञों को दिया जाता है। चन्दराजाओं की काशीपुर से प्राप्त प्राचीन वंशावली में 'कूर्माचल' नाम प्रयुक्त है—

झूसीग्राम समागत्य जातः कूर्माचलो नृपः ।
सोमचन्द्रस्तु शीतांशु सदृशः रामु पूजकः ।।[४]

---

१. मानसखण्ड स्कन्दपुराण का एक भाग विशेष है, जो कूर्माचली विद्वानों द्वारा निर्मित बताया जाता है। इसमें कूर्माचल के तीर्थों, मन्दिरों, उनके माहात्म्य तथा भौगोलिक बातों का वर्णन है। सम्प्रति यह ग्रन्थ श्री गोपालदत्त पाण्डे (अवकाश प्राप्त उप-शिक्षा निदेशक) प्रकाशित कर रहे हैं।

२. द. इण्डियन एण्टी—वा. १, पृ. ३४२।

३. पद्मावती समय—२०/३१।

४. कुमाऊँ का इतिहास—बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. २२१।

प्रारम्भ में कूर्माचल के चन्दराजवंश का राज्य आधुनिक चम्पावत के कुमू तक सीमित था, किन्तु ज्यों-ज्यों उनका शासन क्षेत्र बढ़ता गया त्यों-त्यों वह सब पूरा शासित प्रदेश कूर्माचल अथवा कुमाऊँ नाम से जाना जाने लगा।[१] सम्प्रति कूर्माचल से अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ तथा नैनीताल इन तीन जनपदों की सीमित भूमि का बोध होता है।

श्री हरिशंकर जोशी ने कुमाऊँ शब्द का विकास कूर्माचल शब्द से न मानकर कूर्माङ्क से माना है; यथा—

कूर्माचल > कुम्माचाओ > कुम्माचाउ > कुम्माचो > कुमाचो।

अत: कुमाऊँ का नाम कुमाचो होना था। फलत: यह स्पष्ट है कि कुमाऊँ शब्द किसी अन्य अनुरूप शब्द से निष्पन्न होगा और वह शब्द कूर्माङ्क या कूर्माङ्ग हो सकता है जिसका विकास इस प्रकार प्रतीत होता है—

कूर्माङ्क या कूर्माङ्ग > कुम्माङ्ओ > कुम्माओ > कुमांऊँ > कुमाऊँ।[२]

डॉ० केशवदत्त रुवाली के अनुसार—ध्वनि विकार की प्रक्रिया से 'कूर्माचल' शब्द कुमाऊँ के रूप में उच्चरित होने लगा। इसके ध्वनि परिवर्तन का क्रम इस प्रकार है—

कूर्माचल: > कूर्माचलो > कुम्माअओ > कुमाऊँ।[३]

बनावट की दृष्टि से कूर्माचल में धरातल के तीनों प्रधान रूप पर्वत, पठार, मैदान दृष्टिगोचर होते हैं। तथापि गिरिमालाओं के अनवरत क्रम को देखते हुए प्रधानत: इसे पर्वतीय प्रदेश कहा जा सकता है। नन्दादेवी २५६८९, पंचचूली २२४३०, त्रिशूल २२६३०, नन्दाकोट २२५३०, वणकट्टर २२९९०, चीनापहाड़, वधानपताल तथा वधानटोला आदि प्रमुख पर्वत हैं। ये ऊँचे-ऊँचे पर्वत प्राय: बर्फ से आच्छादित रहते हैं। जिला अल्मोड़ा में हिमपर्वत की चोटी १६८०० फीट से लेकर २५६८९ फीट तक ऊँची हैं। पिथौरागढ़ में १९००० फीट से अधिक ऊँचाई तक के अनेक हिममण्डित पर्वत शिखर हैं। पर्वतों की उतराई में छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, जिनको ८००० फीट तक की ऊँचाई का माना जा सकता है। यहाँ प्राय: सभी बस्तियाँ ८००० फीट से नीचे के क्षेत्रों में फैली हुई हैं। इन पहाड़ियों का क्रम धीरे-धीरे मैदानी क्षेत्रों की ओर नीचा होता गया है। यह मैदानी भाग भाँवर नाम से जाना जाता है,[४] जो १२०० फीट से १७०० फीट तक फैला है। पर्वतों से बड़े वेग से टकराती उतरती

१. दि हिमालियन गजेटियर, प्रथम भाग, पृ. १६३, टि. एटकिंशन।
२. प्रतिभादर्शन, हरिशंकर जोशी, पृ. ६३।
३. उत्तराखण्ड भारती, कुमाउँनी का नामकरण, डॉ. केशवदत्त रूवाली, पृ. ४८।
४. भामड़ नामक एक घास विशेष, जिससे प्राचीन समय में कागज बनता था, यहाँ बहुतायत से होता है। इसी से यह क्षेत्र भावर या भाँवर कहलाता है।
(कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. ४८)

हुई नदियों का प्रवाह यहाँ कम हो जाता है, फलतः तमाम भाँवर में बड़े-बड़े पत्थर, बालू, कंकड़ आदि का आधिक्य है। भावर से नीचे उतरने पर तराई क्षेत्र मिलता है। भावर की पथरीली एवं रेतीली भूमि में छिपा पानी यहाँ स्वतः ही निकल जाता है। तराई का लगभग १०-१२ मील चौड़ा प्रदेश काशीपुर से लेकर शारदा नदी के किनारे-किनारे बनबसा तक फैला हुआ है।

उत्तर में हिमाच्छादित गिरिमाला से लगा होने के कारण यहाँ छोटी-बड़ी नदियों का बाहुल्य है। काली, गोरी, सरयू, रामगंगा, कोसी, पनार तथा सुबाल आदि प्रमुख नदियाँ है। बरसात में तो इनका और भी प्रचण्ड रूप हो जाता है। इन छोटी-छोटी नदियों को यहाँ की जनभाषा में गाड़ कहा जाता है, जैसे—दुलीगाड़, वरगाड़, घटगाड़, रामगाड़ आदि। केवल बरसात में दिखने वाली गाड़ 'गधेरा' नाम से अभिहित की जाती है।

हिमाच्छादित प्रदेश में बर्फ की विशालकाय चट्टानें जिनके नीचे जल भी रहता है हिमनद कहलाते हैं। प्रकृति का यह बड़ा ही मनोरम कौतूहलवर्धक दृश्य है। पिण्डारी ग्लेशियर, मिलम, सुन्दरढुंगा तथा रामगंगा हिमनद प्रमुख हैं। पिण्डारी ग्लेशियर संसार के अन्य ग्लेशियरों से अनुपम माना जाता है। यह अल्मोड़ा से ६८ मील दूर है। यहाँ जाने के लिए सुन्दर सड़क भी बनी है, इसी से वहाँ तक पहुँचना भी सुगम है। इसकी ऊँचाई २०६४० फीट है। यह दो मील लम्बा तथा ३००-४०० गज चौड़ा है। नन्दाकोट, त्रिशूल और नंदादेवी शिखरों के मध्य स्थित यह रमणीक ग्लेशियर शैलानियों का मनमोहक केन्द्र है।

कूर्माचल तालाबों के लिए भी काफी प्रसिद्ध है, विशेषतः नैनीताल जनपद। भीमताल ४५०० फीट, नैनीताल ६३०० फीट, नांकुचियाताल, नलदमयन्ती ताल, रामसरोवर तथा सीताहृद् आदि प्रमुख तालाब हैं। नैतीताल को ऋषिसरोवर भी कहा जाता है। इस तालाब की लम्बाई १५०० मीटर तथा चौड़ाई ५०६ फीट है। सबसे ज्यादा गहराई पाषाण देवी के निकट है, जो ६३ फीट के लगभग है।[१]

मानसखण्ड में ६० तालाबों (षष्टिवाता) का उल्लेख हुआ है, जिसका सम्बन्ध किसी न किसी ऋषि-महर्षि से जोड़ा गया है। यहाँ कहीं-कहीं उष्ण जल के चश्मे भी हैं। पिथौरागढ़ में धारचूला के पास तपोवन नामक स्थान पर तल्लीताल में तथा काली नदी के किनारे अनेक खनिजांश अधिक रहने के कारण इनका जल स्वास्थ्य के लिए अनुपयोगी है। बर्फानी प्रदेशों में सूर्य की ऊष्णता से गर्मी के मौसम में जब बर्फ पिघलने लगती है और भूमि दिखाई देती है, तब उसमें नाना किस्म के फूल तथा छोटी-छोटी घासें उग जाती हैं। यह दृश्य बहुत ही रमणीय लगता है। इसी प्रदेश को वुग्याल, बुंगाल या पयांर आदि कई नामों से जाना जाता है। राहुल जी ने इस क्षेत्र को १०,००० से १३,००० फीट के मध्य माना है।[२]

---

१. कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. ४०।
२. कुमाऊँ, राहुल सांस्कृत्यायन, पृ. ११।

यह प्राय: शीतप्रधान देश है। उत्तर की पर्वत चोटियाँ वर्षभर हिमाच्छादित रहती हैं। गर्मी के कुछ महिनों को छोड़कर हमेशा बर्फ गिरती रहती है। उससे नीचे भोट प्रदेश है जहाँ भोटिये लोग रहते हैं। यहाँ ठंड बहुत अधिक है। अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में केवल शीत ऋतु में ही बर्फ गिरती है। पहाड़ों की घाटियाँ प्राय: गर्म हैं। तराई भावर के क्षेत्र में गर्मी का प्राधान्य है। शीतकाल में ५-६ हजार फीट के ऊँचे पर्वतों में बर्फ गिरने का क्रम प्रारंभ हो जाता है। बर्फ का गिरना भी एक प्राकृतिक कौतुक है। उस समय सारी प्रकृति एकदम शान्त हो जाती है, कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता है। निस्तब्धता तोड़े बिना ही हिमकण रूई के फूलों की तरह पेड़-पौधों, जमीन व मकान की छतों आदि में जम जाते हैं। छाता लिये चलता राहगीर बीच-बीच में छाता झाड़ता, बर्फ गिराता चलता रहता है। चारों ओर धवलता का अम्बार लग जाता है। बर्फ गिर चुकने के बाद मौसम साफ हो जाता है। धूप निकलते ही धवलता द्विगुणित होकर आँखें चकाचौंध कर देती है। कड़कती ठंड के बावजूद भी यह मौसम हर्षोल्लास एवं रौनक का समय है।

वर्ष भर की जलवायु को प्रधानत: तीन भागों में बाँटा जा सकता है—अप्रैल से जून का समय ग्रीष्मऋतु का समय रहता है। इस मौसम में आबोहवा गर्म रहती है। इस मौसम को कूर्माचल की लोक-भाषा में रूढ़ या रूढ़ी कहते हैं, जिसका तात्पर्य शुष्क मौसम से है। दिन में सूर्य का प्रकाश तेज हो उठता है, हवा में भी कुछ ऊष्णता रहती है किन्तु लू नहीं चलती है। मैदानी क्षेत्रों से ग्रीष्म की तपन बुझाने लोग इन क्षेत्रों में आते हैं। तराई तथा भावर में इस समय अत्यधिक गर्मी रहती है।

वर्षा ऋतु को कुमाऊँ की भाषा में चौमास या झड़ कहते हैं। जुलाई से अक्टूबर तक यह ऋतु छायी रहती है, कभी-कभी मूसलाधार वर्षा के साथ ओलावृष्टि भी हो जाती है। नवम्बर से मार्च तक लगभग ६ माह यहाँ शीत ऋतु का बोलबाला रहता है। जनवरी-फरवरी में बर्फ अधिक गिरती है। घाटियों में घना कोहरा या धुन्ध छायें रहते हैं। यहाँ की लोकभाषा कुमाउँनी में इसे 'ह्यून' नाम से जाना जाता है।

जलवायु वनस्पति का पोषक तत्त्व है तो धरातलीय स्थिति उसका आधार। चूँकि धरातल तथा जलवायु की दृष्टि से कूर्माचल प्रदेश विभिन्नता को लिये हुए है, फलत: वनस्पति का भी विभिन्नता को बनाये रखना स्वाभाविक है। ज्यों-ज्यों उत्तर की ओर बढ़ते जाते हैं, वनस्पति का अभाव होता जाता है। दूसरी तरफ तराई, भावर तथा पहाड़ियों के मध्य वनों का प्राधान्य है। साल, शीशम, हल्दू, खैर, बाँस आदि अनेक इमारती लकड़ी यहाँ बहुतायत से पैदा होती है। पेड़ लतावितानों से लिपटे रहते हैं। बीच-बीच में छोटी-छोटी झाड़ियाँ एवं घास उगी रहती हैं। औद्योगिक दृष्टि से वनों का अत्यधिक महत्त्व है किन्तु यातायात की सुविधा न होने से समुचित उपयोग नहीं हो पाता है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में चीड़ एवं देवदार के सघन वन फैले हुए हैं। बर्फ आदि से रक्षा के लिए प्रकृति ने इनकी पत्तियों को नुकीली बनाया है। प्रधानत: यह भी इमारती लकड़ी है, तथापि ईंधन के रूप में भी इसे उपयोग में लाया जाता है। कहीं-कहीं जंगलों के आस-पास के गाँवों में इसके छिलकों से प्रकाश की व्यवस्था की जाती

है, जिसे 'छ्यूल' या 'छुड़' तथा 'राका' आदि नामों से जाना है। ५-६ हजार फीट के आसपास के क्षेत्रों में बाँझ, बुराँस, फल्याट, खरसू आदि के वन हैं। कहीं-कहीं पहाड़ों में एक विशेष किस्म की लम्बी घास उगी रहती है, जिसे गाज्यों कहते हैं। इससे झाड़ू आदि बनाये जाते हैं। कुमाऊँ की वनस्पति के बारे में भी बद्रीदत्त पाण्डे जी ने लिखा है—

'जितनी लकड़ियाँ, घास व वनस्पति कूर्माचल के जंगलों में उत्पन्न होती है उसे कौन गिना सकता है। ज्यादातर जिन पेड़ों से काम होता है, उन्हें सब जानते हैं—चीड़, देवदार, बाँझ, अचार, बुराँस, अरण्डी, अशोक, मालू, बाँस, बेत, शाल, शीशम, सागौन, हल्दू, खैर, टुन, नीम, भोजवृक्ष, खड़क, फल्पाट, बबूल, रीठा आदि।[१]

राहुल जी ने यहाँ की वनस्पति के ऊँचाई के आधार पर निम्न वृक्षभूमियों में बाँटा है[२]—

४००० फीट	—	शाल, शीशम, तुन, हल्दू, साई, धौरी।
५००० फीट	—	चीड़ की बहुतायत।
६००० फीट	—	देवदार का आरंभ, बाँझ, बुराँस।
७००० फीट	—	चीड़ का अन्त, बाँझ, आईप्रस की बहुतायत।
८००० फीट	—	बाँझ का अन्त, सिलवर, फर।
९००० फीट	—	तिलाँग, खरसू।
१०००० फीट	—	साइका कोर, पंगार, घास ढलान आरंभ।
११००० फीट	—	घास ढलान अधिक, सिलवर, फर।
१२००० फीट	—	मुर्ग और चीला।
१३००० फीट	—	इसके ऊपर प्रायः वनस्पति अभाव।

फल कुमाऊँ में बहुतायत से होते हैं—सेव, नारंगी, अखरोट, दाड़िम, अनार, नींबू, मालटा आदि घरेलू फलों के अतिरिक्त हितालू, अंजीर, बहेड़ा, आंवला, बेर, वमांश, स्यूत, कुशभ्यारू, हरड़, काफल, किलमोड़ा, च्यूरा, कीमू, गोफला आदि जंगली फल एवं तरड़ आदि कन्दमूल जंगलों में पाये जाने वाले फल हैं।

फलों के अतिरिक्त कहीं-कहीं चाय के विस्तृत बागान हैं। पर्वतीय प्रदेश होने से कृषि की दृष्टि से अनुपयुक्त कहा जा सकता है, तथापि खरीफ तथा रवी की फसलों के सभी अनाज होते हैं। मैदानी क्षेत्रों को छोड़कर पर्वतीय ढलानों में सीढ़ीदार खेत बनाकर कृषि कार्य होता है। मोटे अनाजों में मडुवा, मादिरा, कौत, मक्का, ज्वार आदि प्रमुख हैं। आलू एवं मिर्च का व्यापारिक दृष्टि से अधिक उत्पादन किया जाता है। दालों में गहत (कुलथ), भट् (सोयाबीन), सेम (फ्रासवीन) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रायः यहाँ सभी देशी पशु मिलते हैं। भोट के शीतप्रदेश में चँवरगाय, बालों

१. कुमाऊँ का इतिहास, पृ. १२२।
२. कुमाऊँ, राहुल सांस्कृत्यायन, पृ. १२।

वाला भोटिया कुत्ता, तराई भावर में नरभक्षी बाघ, जंगलों में काला भालू, तिब्बत की तरफ लाल तथा भारत में भूरे रंग के भालू बहुतायत में मिलते हैं। चीतल, पाड़ा, घुरूड़, काकड़ तथा शील (साही) और कस्तूरी मृग (८०००फीट के ऊपर) के साथ ही जहरीले साँप, बिच्छू, ग्वाण, छिपकली के अतिरिक्त रंगबिरंगी गगनचारी पक्षियों की भी भरमार है।

आज का कूर्माचल विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों का समन्वित रूप है। यहाँ समय-समय पर अनेक जातियाँ आयीं। वे अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं सामाजिक मूल्यों को साथ लेकर आयीं और यहाँ की मूल जातियों के साथ घुलमिल गयी। कुछ ने अपने अस्तित्व को बनाये रखा तो कुछ यहाँ की प्रागैतिहासिक सभ्यता में विलीन हो गई। यहाँ के मूल निवासी कौन थे ? इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। तथापि अधिकांश विद्वानों के विचार से किन्नर, नाग, यक्ष, गन्धर्व आदि देवयोनियाँ प्रागैतिहासिक काल में यहाँ विद्यमान रही होगी। वायुपुराण में पर्वतों पर बसने वाली गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, विद्याधर, सिद्धदानव, दैत्य आदि जातियों के नाम आये हैं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार— 'ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारम्भ में खस लोग पूर्व-मध्य एशिया (काशगर) सोहान आदि की ओर से आये। उनके पीछे वैदिक आर्य उत्तरी भारत के मैदानी भाग (कुरू पांचाल) से हिमालय में पहुचें। इन दोनों जातियों के आने से बहुत पहले जो जाति हिमालय में रहती थी उसे हम किन्नर या किरात कह सकते हैं। किन्नरों का देश एक समय हिमालय में गंगा के पनढर से पश्चिम में सतलुज और चन्द्रभागा के पनढर तक फैला हुआ था। किरात गंगा के पनढर से पूर्वी छोर को लिए सारे नेपाल तक थे।[१]

कुबेरनगरी तथा अलकापुरी इन्हीं हिमाच्छादित प्रदेशों में मानी जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। मंत्रद्रष्टा ऋषियों की साधनाभूमि निर्जन पर्वतीय भूमि, पावन नदियों के सुरम्यतट अथवा प्रकृति का अतीव सानिध्य क्षेत्र यहीं रहा होगा।

आर्यों का मध्य एशिया से विभिन्न दिशाओं की ओर फैलना माना जाता है। भारत में वैदिक आर्यों का आगमन खैबर दर्रे से बताया जाता है। निश्चित रूप से प्रविष्ट होते समय आर्य जातियाँ भी पर्वतीय क्षेत्रों में बसी होंगी। देवासुर संग्राम को आर्य और अनार्यों का संग्राम मानने पर यह स्पष्ट है कि आर्यों से पूर्व भारत में अनार्य लोग बसते रहे होंगे। केवल अनार्य ही होंगे यह कहना भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इतने विशाल देश में एक ही जाति के लोगों का आधिपत्य सम्भव नहीं, अस्तु अन्य भी कई प्रजातियाँ यत्र-तत्र आदिम अवस्था में रही होगी।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि वैदिक आर्यों से पूर्व यहाँ पर डोम, दस्यु, किरात, थाड़ू, वोक्सा, नाग, खस, शक, हूण आदि प्रागैतिहासिक जातियाँ विद्यमान थी। आज भी इस क्षेत्र में शोक, वषिया, वनरोत, राजी, थाडू, लूल, हुणिया, भोटिया,

---

१. कुमाऊँ का इतिहास, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. ४७।

योनसारी आदि-आदि जातियाँ इन्हीं की वंशज विद्यमान है। मध्य काल में देश के विभिन्न प्रान्तों से अनेक जातियाँ यहाँ आकर बस गई। कत्यूरी एवं चंदराजाओं ने अयोध्या एवं झूसी से आकर यहाँ पर अपना आधिपत्य जमाया। इन्हीं राजवंशों के साथ कुछ पंडित लोग राज सम्मान पाकर पुरोहित, राजगुरू, वैद्यक, एवं ज्योतिषी के रूप में यहाँ आकर बस गये। राजस्थान के राजपूत, सौराष्ट्र से गुर्जर, महाराष्ट्र तथा कन्नौज से ब्राह्मण, बंगाल से पाल, कर्नाटक से संगीतज्ञ आदि किसी न किसी कारण से यहाँ आये हुए हैं। राजस्थान और गुजरात के मेहता, महर, राठौर, चौहान, तोमर, राणा और रावत, महाराष्ट्र तथा अन्य दक्षिणी प्रान्तों से पंत, भट्ट, त्रिपाठी, हरवोले के साथ ही पाण्डेय तथा जोशी ब्राह्मण यहाँ बहुतायत से दिखते हैं। डॉ. पालीवाल ने लिखा है—"ये विभिन्न जातियाँ अनेक रूपों में और अनेक कारणों से समय-समय पर आकर यहाँ बसी हुई हैं। कुछ लोग राजनैतिक उथल-पुथल के कारण, कुछ आक्रमणों से बचने के लिए और कुछ आक्रमणकारी बनकर यहाँ आये। कुछ बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाश, मानसरोवर की यात्रा करने आये और यहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता में रम जाने के कारण यहीं बस गये। जिनमें प्रधानत: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त विभिन्न धर्मों के लोग भी यहाँ आकर बसे हुए हैं"।[१]

अपनी सच्चाई एवं ईमानदारी और सादगी के कारण कूर्माचल के लोग प्रसिद्ध हैं। प्रकृति ने छल-कपट तथा चालाकी से इन्हें बहुत दूर रखा है। सीमित साधनों के कारण यहाँ के लोग कर्मठ तथा परिश्रमी होते हैं। लोगों में परस्पर प्रेम, सौहार्द्र तथा दु:ख-सुख में हाथ बंटाने की प्रवृत्ति है। विभिन्न धार्मिक मान्यताओं तथा रूढ़िवादिता ने अनेक अन्धविश्वासों को जन्म दिया है।

यहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि के साथ ही सरकारी, अर्द्धसरकारी सेवा में अधिकांश लोग जुड़े हुए हैं। कुछ लोग भेड़-बकरी पालन तथा ऊन का व्यापार करते हैं तथा कहीं बाँस, निगाले से टोकरी, सूप, डाले बनाकर भी लोग अपनी आजीविका चलाते हैं। व्यावसायिक एवं आर्थिक दृष्टि से यहाँ के लोग निर्बल हैं। पर्वतीय गांवों की छटा भी अविस्मरणीय है। पहाड़ों के आंचल से चिपके हुए पर्वतीय गांव बहुत ही रमणीक लगते हैं। गहन निशीथ में खिड़कियों और छज्जों की दरारों से बाहर झांकती दीप की टिमटिमाती लौ दूर से अंधेरी रात में न केवल आशा का संचार करती है अपितु भ्रान्त पथिक का मार्गदर्शन भी करती है। यहाँ के मकान पत्थर के ढालूदार छत वाले होते हैं। मकान को स्थानीय बोली में कुड़ या कुड़ी नाम से जाना जाता है। एक साथ मिले अनेक मकानों के समूह को पट्टी कहा जाता है— 'तलपट्टी' नीचे की पट्टी आदि। नीचे की मंजिल को गोठ कहते हैं तथा ऊपरी मंजिल 'पाड़' (गोठ-पाड़) बरामदा छाज यदि बड़ा हो तो 'चाख' कहा जाता है। ऊपर आधी मंजिल भाड़ नाम से जानी जाती है।

१. कुमाऊँ के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, डॉ. पालीवाल, पृ. ५।

कूर्माचल में मेले त्योहार एवं उत्सवों का एक मस्त आलम है। प्राय: सभी मेले तथा उत्सव एक उल्लास तथा उमंग के साथ आते हैं, जिनमें न केवल मनोरंजन होता है बल्कि धार्मिक पूजापाठ की प्रवृत्ति भी जगाते हैं। आषाढ़ की पूर्णिमा को माँ वाराही के मन्दिर देबीधुरा में एक ऐतिहासिक मेला जुटता है। आमोद-प्रमोद के साथ माँ वाराही की पूजा-अर्चना के अलावा जो एक आकर्षक घटना उस मेले में होती है वह है, दो समुदायों में परस्पर पत्थरों की वग्वाल (युद्ध), उसके उपरान्त परस्पर मिलन। बिना बैरभाव के लड़ी हुई यह पत्थरों की लड़ाई प्राचीन समय से प्रतिवर्ष चली आ रही है। धार्मिकताप्रधान मेले, पर्व एवं आमोद-प्रमोद युक्त उत्सव होली-दीवाली आदि स्थानीय महत्व के त्योहार कहलाते हैं, जैसे—खतडूवा, घुघुतिया, विरूड़पंचमी आदि।

देवीमन्दिर में पूजा पशुबलि के साथ-साथ बॉसी अथवा जागर लगाकर की जाती है। बॉसी में लगातार बाईस दिन तक रात में देवी का आह्वान किया जाता है। प्रमुख पुजारी आदि के शरीर में देवी का प्रवेश होता है। उसके बाद समस्त दुखियों की प्रार्थनानुसार 'गनत' (गणना) करके रोग शंका का निराकरण भी करते है। यह एक अलौकिक विधान है। इसकी आड़ में अन्धविश्वास भी खूब पनपा है।

समस्त संस्कारों को यहाँ पूर्ण आस्था के साथ माना जाता है। षष्ठी महोत्सव, नामकरण, अन्नप्रासन, जन्मोत्सव, यज्ञोपवीत, विवाह तथा अन्त्येष्टि आदि प्रमुख रूप से प्रचलन में रह गये हैं। सभी धार्मिक पर्वों एवं शुभ कार्यों में घर की सजावट में अल्पना का विशेष महत्त्व है, जो स्थानीय भाषा में ऐपण कहलाता है।

❖

द्वितीय अध्याय

कूर्माचल की साहित्यिक परम्परा

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरो तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥[१]

कविकुलगुरु कालिदास ने जिस श्वेत धवलिमा से धवलित शुभ्र नगाधिराज हिमालय से प्रेरणा पाकर उपर्युक्त श्लोक की रचना कर अपना गौरव ग्रन्थ 'कुमारसम्भव' लिखा। उसी देवतात्मा हिमालय की गोद में बसा है कूर्माचल।

हिमालय एक सजग प्रहरी मात्र नहीं, अपितु ऋषियों, मनीषियों का प्रेरणास्तम्भ भी रहा है। सुदूर प्रान्तों से उसकी महिमा सुनकर लोग इसकी शान्त कमनीय प्रेरणास्पद गोद में आकर सब कुछ भूलते रहे। फिर उन्हें इसका मोह कभी बिछुड़ने की बात सोचने का अवसर ही नहीं देता। यही इतिहास है कूर्माचल में निवास करने वाली विभिन्न जातियों के निवासियों का। हिमालय गंगा, यमुना, सिन्धु की पावन धारा का स्रोत ही नहीं रहा, अपितु काव्य प्रेरणा, ललित कलाओं का प्रेरणा स्रोत भी है। हिन्दू धर्म के सभी पावन स्थल गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, मानसरोवर आदि इसी की गोद में स्थित हैं। यहाँ का कण-कण परम पावन होने के साथ किसी न किसी ऋषिमुनि की तपोभूमि रही है। इसी पावन स्थली पर युग-युग से महान तत्त्वचिन्तकों द्वारा वेद, पुराण, उपनिषद् आदि की रचना की।

मध्य युग में इस भूभाग में देश के कोने-कोने से कई जातियों, संस्कृतियों के लोग यहाँ आकर बस गये। वर्तमान कूर्माचल किसी एक जाति धर्म का नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्यावर्त की संस्कृति का एक समन्वित रूप है।

वैदिक काल में यहाँ अनेक सम्मेलनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है, जिसमें भारद्वाज ऋषि की अध्यक्षता में लगभग पचास तत्त्वान्वेषी आयुर्वेद सम्मेलन में एकत्र हुए थे।[२] प्राचीन काल से ही यह विद्वत् परम्परा अनवरत रूप से चली आ रही है जो संस्कृत, हिन्दी, कुमाऊँनी तथा आँग्लभाषा इन चार धाराओं में प्रवाहित हुई है। संस्कृत वाङ्मय की श्रीवृद्धि में यहाँ के पण्डितों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सम्पूर्ण भारत में इनकी ख्याति रही है। चाहे व्याकरण सा जटिल विषय रहा हो या ज्योतिष का कठिन चक्र अथवा साहित्य की रसमाधुरी या आयुर्वेद का गहन अन्वेषी विषय, सबमें यहाँ के पण्डितों का अधिकार रहा। भारतीय नरेशों के राजदरबारों में यहाँ के पण्डितों का वर्चस्व रहा। चन्द्रवंशी राज दरबारों में यह बात और भी स्पष्ट देखने को मिलती है।

---

१. कुमारसम्भव, १:१ ।

२. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगत सिंह, पृ. ६ ।

जगन्नाथ पन्त, देवीदत्त पाण्डे, लोकरत्न, महाकवि गुमानी, पुरूषोत्तम पंत आदि ने संस्कृत में काव्य सृजन किया। महामहोपाध्याय पंडित नित्यानन्द पंत (षट्शास्त्री), पं. तारादत्त पंत, पं. केशवदत्त शास्त्री, पं. देवीदत्त जोशी, पं. चन्द्रादत्त शास्त्री आदि ने संस्कृत साहित्य भण्डार समृद्ध किया। वैयाकरणाचार्यों में पं. नित्यानन्द पंत, हरिवल्लभ पंत और प्रो. मोहनवल्लभ पंत एवं श्री गोपालदत्त पाण्डेय (अवकाश प्राप्त उपशिक्षा निदेशक) का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने व्याकरण जैसे क्लिष्ट विषय को बोधगम्य बनाकर एवं हिन्दी की व्याख्या कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर स्तुत्य कार्य किया।

हिन्दी के विकास में भी कूर्माचली साहित्यकारों का महान् योगदान रहा है। भारतेन्दु काल से सौ वर्ष पूर्व महाकवि गुमानी की खड़ी बोली की रचनाएं आज भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। वास्तव में कविवर गुमानी ही प्रथम खड़ी बोली के कवि एवं राष्ट्रीय कवि है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी उन्हें कूर्माचल का सबसे प्राचीन कवि स्वीकारा है।[१] गुमानी के काव्य में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक चित्रों का सजीव चित्रण मिलता है।

कवि गुमानी का जन्म काशीपुर (नैनीताल) में फरवरी सन् १७९० (कुम्वार्क २७ गते, सं. १८४७ वै.) में हुआ था। इनके पिता देवनिधि अल्मोड़ा से ३० कोस दूर उपराड़ा नामक गांव के निवासी थे। गुमानी जी का बचपन का नाम लोकरत्न था। जिस समय गुमानी का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय कुमाऊँ में गोरखों का बर्बर शासन था। प्रजा में व्याप्त असन्तोष को गुमानी ने वाणी दी थी। 'गुमानी ने संस्कृत में छोटी-बड़ी पन्द्रह पुस्तकें लिखीं। इनमें से कुछ की हस्तलिखित तथा कुछ की मुद्रित प्रतियां अब भी अल्मोड़ा, नैनीताल, काशीपुर तथा मुरादाबाद के पुस्तकालयों में तथा कुछ कुमाऊँनी परिवारों के निजी पुस्तकालयों में मिलती हैं। सन् १८१२ के लगभग कवि लोकरत्न काशीपुर के महाराज श्री गुमान सिंह देव की सभा में राजकवि नियुक्त हुए। तभी से वे कवि गुमानी कहलाए।[२]

'सन् १८१५ में अंग्रेजों ने कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया। उसके उपरान्त गुमानी टेहरी (गढ़वाल) के राजा सुदर्शन शाह की सभा के मुख्यकवि नियुक्त हुए। वे कांगड़ा के राजा संग्राम सिंह द्वारा भी सम्मानित हुए।[३] कुमाऊँ पर अंग्रेजों की विजय से देश भक्त कवि गुमानी को बड़ा दुःख हुआ। अल्मोड़ा में अंग्रेजों द्वारा जो मनमानी की गई, उस दुर्दशा का बड़ा सजीव वर्णन कवि ने किया है—

विष्णु का देवाल उखाड़ा ऊपर बंगला बना खरा।
महाराज का महल ढहाया बेड़ी खाना तहाँ धरा॥

---

१. The oldest writer in Kumauni with whom I am acyuainted is gumani Pant, who was born in 1790 A.D. Sr. George Grierssan,Linguistic Survey of India. Vol. I, part IV, p. 109.

२. संस्कृति-संगम उत्तरांचल, श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. १९८

३. संस्कृति-संगम उत्तरांचल, श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. १९९

मल्ले महल उड़ाई नन्दा बंगलों से भी तहां भरा।
अंग्रेजों ने अल्मोड़ा का नक्शा औरे और करा॥[१]

अंग्रेजों को सुगमता से भारत में अधिकार जमाने को कवि 'कलियुग' नामक कविता में स्पष्ट करता है—

विद्या की जो बढ़ती होती फूट न होती राजों में।
हिन्दुस्तान असंभव होता वश करना लख वर्षों में॥[२]

गुमानी की लिखी कुमाऊँनी कविताएं तो और भी मर्मस्पर्शी एवं स्वाभाविक हैं। 'काफल', 'हिसालू', 'केला', 'दाड़िम' आदि फलों पर लिखी उनकी कविता प्रकृति प्रेम के साथ ही उनकी विनोदप्रियता की द्योतक हैं।

गुमानी के निधन के उपरान्त उन्नीसवीं सदी में उस कोटि का कोई कवि कुमाऊँ में नहीं हुआ। कुमाउँनी बोलियों के विषय में पंडित गंगादत्त उप्रेती का कार्य महत्त्वपूर्ण है। भारतीय भाषा सर्वेक्षक सर जार्ज ग्रियर्सन के सहायतार्थ उन्होंने 'कुमाऊँनी बोलियां' नामक सारगर्भित रचना की। श्री जयदत्त जोशी द्वारा मेघदूत का अनुवाद तथा श्री ज्वालादत्त जोशी द्वारा 'दशकुमार चरित' का भाषानुवाद लिखा गया। श्री चिन्तामणि जोशी ने संस्कृत से कुमाऊँनी भाषा में 'दुर्गा (चण्डी) पाठ सार' अनुवाद करके प्रकाशित करवाया। इस काल की अधिकांश रचनाएं अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाईं।

इसके बाद बीसवीं सदी के आरम्भ में कुमाऊँनी साहित्य में शिवदत्त सती की रचनाएं 'बुद्धि प्रवेश', 'मित्र विनोद', तथा 'गोपी-गीत' आदि प्रसिद्ध हैं।

शिवदत्त सती के उपरान्त गांधीयुग के राष्ट्रवादी कवियों में अल्मोड़ा के 'गोर्दा' का नाम सदा अमर रहेगा। उनका पूरा नाम गौरीदत्त पाण्डे है। इन्होंने खड़ी बोली को काव्य का रूप दिया। कई कवियों की रचनाएं प्रकाशनाभाव में काल कवलित हो गई।

आधुनिक युग में युगद्रष्टा महाकवि पंत सर्वोपरि हैं। वे छायावाद के अमर स्तम्भ ही नहीं, अपितु प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नयी कविता के पोषक भी रहे हैं। इसके बाद कूर्माचल कोकिल श्रीमती तारापाण्डे का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने महादेवी वर्मा की भांति आशा, निराशा, एवं वेदना की धारा प्रवाहित की है। नयी कविता एवं समकालीन कविता के क्षेत्र में अनगिनत प्रतिभाएं उभर रही हैं, जिसमें हिमांशु जोशी, डॉ. रमेश चन्द्र शाह, बृजेन्द्रलाल शाह, डॉ. आशापन्त, जीवनप्रकाश जोशी, विनोदचन्द्र पाण्डे, डॉ. मथुरादत्त पाण्डे आदि का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

कथा-साहित्य में स्वर्गीय लक्ष्मीदत्त जोशी कूर्माचल के प्रथम उपन्यासकार हैं। इन्होंने सीमान्त प्रदेश कूर्माचल की समस्याओं पर आधारित 'जवाकुसुम' उपन्यास

---

१. गुमानी विरचित 'काव्य-संग्रह', पृ. ५२
२. गुमानी विरचित 'काव्य-संग्रह', पृ. ५०

बीसवीं सदी के प्रथम दशाब्दी में "लक्ष्मीनारायण प्रेस" मुरादाबाद से प्रकाशित किया था।[1] इसके उपरान्त इलाचन्द्र जोशी का नाम आता है, जिन्होंने कथा-साहित्य में सर्वप्रथम मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। "लज्जा", "सन्यासी", "पर्दे की रानी", "प्रेत और छाया" इनकी श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक औपन्यासिक कृतियां हैं। गोविन्द वल्लभ पंत ने लगभग दो दर्जन उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की है। इनके उपन्यास विभिन्न सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं प्रतीकात्मक प्रकार के हैं। "मदारी", "जूनिया", "प्रतिमा", "नूरजहाँ", "नौजवान", "तारिका", "एक सूत्र", "अमिताभ", "मैत्रेय", "फॉरगेट मी नाट", "कागज के फूल", "चक्रकान्त" आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं। यमुनादत्त वैष्णव "अशोक" ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को उजागर करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लिया है। "दोपहर का अँधेरा", "शैलवधू", "मालूसाही", "भूत की वेदना", "नियोगिता नारी" आदि विशेष रूप से चर्चित हैं। इसी शृंखला के साहित्यकारों में दुर्गादत्त त्रिपाठी भी प्रमुख रूप से स्मरण किये जायेगें, जिन्होंने "अमरसत्य", मान्टो मिला था" उपन्यासों के अतिरिक्त शकुन्तला (खण्डकाव्य) एवं "गांधी संवत्सर" सरीखे महाकाव्य की रचना की थी।

इसके बाद स्थान आता है लोकप्रिय कथाकार शैलेश मटियानी का, जिन्होंने एक ओर "बोरीवली से बोरीबन्दर तक", "कबूतरखाना", "किस्सा नर्वदाबेन गंगूबाई" के माध्यम से बम्बइया जीवन में व्याप्त अनाचार, भ्रष्टाचार को प्रदर्शित किया है तो दूसरी ओर कुमाऊँ के जनजीवन की पृष्ठभूमि पर "चिट्टीरसेन", "हौलदार", "एक मूठ सरसों", "वेला हुई अबेर", "पुनर्जन्म" आदि आंचलिक उपन्यास लिखकर एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया। इसके बाद इस नव प्रचलित शैली में शिवानी, हिमांशु जोशी, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, बलवन्त मनराल, रमेशचन्द्र शाह, मनोहरश्याम जोशी आदि ने अपनी लेखनी के माध्यम से इस धारा को आगे बढ़ाया है।

यही नहीं शैलेश मटियानी ने अपने बाद के उपन्यासों में "मुठभेड़" तथा "आकाश कितना अनन्त है" में सामाजिक चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना को भी बड़ी कलात्मकता से सामने रखा है। इस श्रेणी के साहित्यकारों में प्रोफेसर देवेश ठाकुर की गणना विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने शिल्प एवं कथ्य दोनों में एक विशेष रचनाधर्मिता का प्रदर्शन किया है।

नाटक-साहित्य का सृजन कूर्माचल के साहित्यकारों ने अपेक्षाकृत कम सृजित किया है। इस क्षेत्र में गोविन्दवल्लभ पंत ने कई नाटकों की रचना की है। इनके नाटकों में "वरमाला", "राजमुकुट", "अन्त:पुर का छिद्र", ऐतिहासिक नाटक, "ययाति" "पौराणिक" और "कंजूस की खोपड़ी", "अंगूर की बेटी", "सुहाग बिन्दी", "सुजाता" सामाजिक नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हैं। पंत जी के नाटक रंगमंचीय गुणों

१. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगत सिंह, पृ. ७

से परिपूर्ण हैं। इनके संवाद छोटे-छोटे, सरल तथा आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होते हैं, जो कहीं भी सुविधा से मंचित हो जाते हैं।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने भी कुछ नाटक लिखे हैं। उन्होंने "ज्योत्स्ना" नाटक में बड़ी सुन्दरता से लोकमंगल के लिए स्वर्गीय आत्मा का अवतरण प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने कई रेडियो रूपक भी लिखे हैं, जिसमें रजतशिखर, शिली, सौवर्ण आदि लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध हैं। आधुनिक नाटककारों में वृजेन्द्रलाल शाह का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। उन्होंने "बलिदान", "कसौटी", "आबरू" "एकता", "सुहागदान", "चौराहे की आत्मा", "चौराहे का चिराग", "शिल्पी की बेटी", "पर्वत का स्वप्न", "रेशम की डोर", "ऋतुरेण", "खुशी के आँसू", "पहरेदार", "गीतिनाट्य "बन्या" आदि विशेष रुप से चर्चित एवं मंचित हुए हैं। इसी श्रृंखला के नाटककारों में ब्रजमोहन शाह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "निरंकुश" में उन्होंने समसामयिक समस्या बेकारी का प्रश्न सशक्त रूप से उभारा है। सरकारी अफसर, नेता, क्लर्क, ज्योतिषी, सिपाही, लड़की के बीच युवक त्रिशंकु सा टकराता रहता है। वह भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्षशील है। युवा पीढ़ी की कठिनाईयाँ, विवशताओं को युवक के माध्यम से लेखक ने उभारा है। उनकी अन्य नाट्य रचनाएं हैं "शह ये मात" एवं "युद्धमन"।

आलोचना क्षेत्र में प्रो. मोहनवल्लभ पंत का नाम अग्रणी रहा है। इन्होंने साहित्य को गुटबन्दी की पंकिलता से सदैव मुक्त रखा है। तुलसी का अलंकार विधान, रसविमर्श, भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, आलोचना शास्त्र, नहुष का स्वाध्याय, सूर पंचरत्न और दोहावली आदि गम्भीर एवं विद्वत्तापूर्ण कृतियों से हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की। इसके बाद डा. देवेश ठाकुर नयी कविता के सात अध्याय, "नदी के दीप" की रचनाप्रक्रिया, हिन्दी कहानी का विकास, साहित्य के मूल्य आदि अनेकों ग्रन्थों का प्रणयन कर आलोचना साहित्य को नवीन दिशा दी है। उनके डी. लिट्. के लिए लिखे शोध-प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ १९७५ में उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा तुलसी पुरस्कार से सम्मानित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त डॉ.डी. शर्मा एवं डॉ. ए.डी. पाण्डे का नाम चर्चित समालोचकों में गिना जाता है। डॉ. अम्बादत्त पाण्डे को उनके "आधुनिकता और आलोचना" पुस्तक पर १९८७ का सोवियत-लैंड नेहरू पुरस्कार दिया जा चुका है।[१] आपके अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों में "छायावादी काव्य में लोक मंगल की भावना" और "आधुनिकता" विशेष हैं। उनका एक शोधलेख "कबीर की क्रान्तिकारिता से तुलसी की परंपरावादिता तक" (आलोचना अंक ८०) सर्वाधिक चर्चित एवं नयी स्थापनाओं से युक्त है। आपके शोध लेख "आलोचना", "आजकल" एवं "मधुमती" में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। डॉ. रमेशचन्द शाह की छायावाद की प्रासंगिकता, समानान्तर, वागर्थ आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। उसके अतिरिक्त डॉ. वटरोही एवं डॉ. केशवदत्त रूवाली ने भी सराहनीय कार्य किया है।

---

१. व्यक्तिगत पत्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

अनुसंधानात्मक साहित्य में एवं भाषाविज्ञान के क्षेत्र में डॉ. हेमचन्दजोशी एवं डॉ. डी.डी. शर्मा, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे एवं केशवदत्त रुवाली का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। डॉ. देवीदत्त शर्मा जी का "लिंग्विस्टिक हिस्ट्री ऑफ उत्तराखण्ड", "द स्टडी ऑफ लोन बर्ड्स इन सेन्ट्रल पहाड़ी" आदि विशेष रूप से चर्चित हैं। वर्तमान समय में अनेक प्रतिभाएं इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

लोक-साहित्य में प्रारंभ में कुमाउँनी विद्वानों का ध्यान कम गया, जबकि लोक साहित्य भी वहाँ का गौरवशाली एवं प्राचीनकाल से चला आ रहा है। लिखित रूप में कविवर गुमानी से यह दिखाई देता है, किन्तु मौखिक परम्परा अत्यधिक प्राचीन है, जो आज भी मौखिक रूप से विद्यमान है।

कुमाउँनी बोली पर पाश्चात्य विद्वान केलाग एवं ग्रियर्सन आदि ने बड़ा कार्य किया है। भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम श्री गंगादत्त उप्रेती ने सर्वप्रथम इस तरफ दृष्टि डाली है। प्राचीन काल से कुमाउँनी में मौखिक रूप से वीरगाथाएँ, परियों की कहानियाँ, पशुपक्षियों की कहानियां, जादूटोना, धार्मिक, पौराणिक और वैदिक देवी-देवताओं की कहानियां, पर्वत-नदियों की कहानियां, जनश्रुति के रूप में चली आ रही थी। इस मौखिक साहित्य को शैलेश मटियानी ने "कुमाऊँ की लोक कथाओं" के बारह भागों में संग्रह कर स्तुत्य कार्य किया है। उनके उपन्यास "बेला हुई अबेर" और "मुख सरोवर के हंस" में देवी-देवताओं के अवतरण एवं पूजन तथा सांस्कृतिक गीतों को जगह-जगह पर ग्रहण किया है। कुमाउँनी लोक-संस्कृति सम्पन्न साहित्य को स्थायित्व देने का कार्य कर मटियानी जी ने एक महान् कार्य किया है। इस बीच कुमाऊँ विश्वविद्यालय से कुमाउँनी लोक-साहित्य पर शोधार्थियों ने अच्छा कार्य किया है। यथा—कुमाउँनी भाषा और उसका साहित्य डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, डॉ. रमेशपंत का कुमाउँनी लोक साहित्य में प्रेम का स्वरूप एवं गंगादत्त उप्रेती का कुमाउँनी लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. देवसिंह पोखरियाल का कुमाउँनी छन्द विधान एवं डॉ. केशवदत्त रूवाली का लोक-साहित्य पर सराहनीय कार्य रहा। इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य डॉ. रामसिंह का कुमाउँनी कृषि औद्योगिक शब्दावली पर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. हेतु लिखा गया शोधप्रबन्ध है।

कुमाउँनी में लिखित साहित्य की परम्परा १९ वीं शताब्दी से मिलती है और यह परम्परा गुमानी पंत से लेकर आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। जिस समय साहित्य में कविवर गुमानी का आविर्भाव हुआ, उस समय कुमाऊँ में अंग्रेजों का राज्य जड़ जमा रहा था। कवि ने अंग्रेजी राज्य की बुराइयों एवं त्रुटियों पर रोष व्यक्त किया। राष्ट्रीय भावना प्रबल रूप से स्पष्ट होने लगी। गुमानी ने कुमाऊँ की प्रकृति, वहाँ के जीवन और समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने "काफल" और "हिसालू" (किलमोढ़ा) एवं दाड़िम, केले की मिठास को कुमाउँनी साहित्य में समेटा। इसके अतिरिक्त उन्होंने नीति एवं उपदेश की बातें भी लिखी। उनकी कविताओं के संग्रह "गुमानी नीति" और "गुमानी विरचित काव्य संग्रह" नाम से प्रसिद्ध हैं। गुमानी

के समकालीन कवियों में कृष्ण पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है, जो व्यंग्य काव्य के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर कटु व्यंग्य प्रहार किया है। श्री भैरवदत्त जोशी ने दुर्गा (चण्डी) पाठसार नामक पुस्तक का कुमाउँनी में प्रणयन किया, जो दुर्गा-सप्तशती का कुमाउँनी रूपान्तर है। श्री गंगादत्त उप्रेती ने अनेक पुस्तकें लिखी और कुमाउँनी भाषा का वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं अध्ययन सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। ''फारस के महाराज की रानी अतसर का इतिहास'', ''प्रोवर्स एण्ड फॉकलोर आफ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल'' तथा ''हिल डाइलैक्ट्स आफ दि कुमाऊँ डिवीजन'' इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। श्री ज्वालादत्त जोशी ने दशकुमार चरित और श्री लीलाधर जोशी ने मेघदूत का पद्यानुवाद कुमाउँनी में किया। श्री गौरीदत्त पाण्डे की रचनाओं में हास्यरस का पुट अधिक रहता है। अल्मोड़ा अखबार एवं शक्ति में इनकी हास्यरस प्रधान अनेक कविताओं का प्रकाशन हुआ है। ये ''गोर्दा'' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके बाद कुमाऊँ में एक नया मोड़ आया। नयी चेतना, नया सामाजिक उत्थान तथा नवनिर्माण की भावना से ओतप्रोत रचनाएं आने लगी। इस काल के कवि शिवदत्त सती ने सरस और मार्मिक शैली में रचना की। बुद्धि-प्रवेश, घस्यारी नाटक और गोपीगीत इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में कुमाऊँ में राष्ट्रीय आन्दोलन बड़ी तेजी से फैला। वहाँ के साहित्यकारों ने भी राष्ट्रीय जागरण और स्वतंत्रता के गीत गाए। समाज में एक नयी स्फूर्ति और चेतना आई। साहित्य भी अछूता न रहा। राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति, नवनिर्माण और समाज-सुधार की भावनाएं काव्य के विषय बने। श्री बचीराम ने अपने काव्य-संग्रह ''विपत्ति का हाल'' में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने और समाज सुधार की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। श्री हीरावल्लभ शर्मा ने अपनी काव्यसाधना द्वारा कई पुस्तकें लिखकर कुमाउँनी साहित्य को समृद्ध किया।

वर्तमान काल के प्रमुख कवि चिन्तामणि पालीवाल हैं, जिन्होंने लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों का खण्डन किया है। पालीवाल जी ने सामाजिक बुराइयों की निर्भीकता से आलोचना कर आदर्श समाज की स्थापना का मार्ग बताया है। देशभक्ति, प्रकृति प्रेम और समाज सुधार, नवजागरण एवं राष्ट्रीय एकता के गीत लिखे हैं। ''दिल्ली की झलक'', ''बलिदान खण्ड'', ''कुमाऊँ के सम्राट'' इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इन्होंने कुमाऊँ के मौलिक महाकाव्य ''मालूसाई'' को काव्य का रूप दिया है। कविराज रामदत्त पन्त ने गीतमाला और गांधीगीत तथा अनेक छिटपुट रचनाओं से कुमाउँनी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। ऐतिहासिक प्रसंगों को काव्य का रूप देने में खीमानन्द शर्मा अग्रगण्य हैं इनकी ''हरूहीत'' रचना बड़ी लोकप्रिय रही है। कुलानन्द भारतीय सामाजिक समस्याओं को लेकर काव्य रचना करते हैं ''डोल्या'' इनकी प्रमुख रचना है। नवनिर्माण, नयी चेतना के दर्शन नरसिंह ''हीत'' की रचनाओं में मिलते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाजसुधार, ग्राम-सुधार की भावनां व्यक्त की है। उदाहरण के लिए ''कलियुग का हाल'' और ग्रामपंचायत

ली जा सकती है। आज अनेक साहित्यकार साहित्यसृजन में जुटे हुए हैं तथा अनेक विद्वान लोक-साहित्य पर विभिन्न विषयों को लेकर अध्ययन में जुटे हुए हैं। अन्त में हम डा. नारायणदत्त पालीवाल के शब्दों में कह सकते हैं—"कुमाऊँनी काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ के साहित्यकारों ने लतापादपों के अन्तर की वेदना को अनुभव किया, वन-उपवन के पुष्पों की हँसी को जीवन में समेटा, चाँद-सितारों के गीत गाए, पशु-पक्षियों की बोली को काव्य का जामा पहनाया, बसन्त की बहार और वर्षा की रिमझिम को काव्य में समेट कर प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों का सजीव चित्रण किया है। कुमाऊँ के जन-जीवन की झांकी, नवजागरण और राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति नवयुग और नव-निर्माण के गीत, भारतीय संस्कृति व धर्म का स्वरूप सब कुछ उसमें मिलता है।"[१]

१. हिन्दुस्तान-समाचार, डॉ. नारायणदत्त पालीवाल,

तृतीय अध्याय

साठोत्तर हिन्दी साहित्य एवं कूर्माचलीय साहित्यकार

साहित्यिक युग दशकों के अनुसार नहीं बदलते, किन्तु सन् १९६० के आसपास परिवर्तन के अनेक चिह्न प्रकट होने लगे फलत: हिन्दी साहित्य में संक्रान्ति उत्पन्न हो गई। इस दृष्टि से पिछले छब्बीस-सत्ताईस वर्षों के साहित्य को एक पृथक् इकाई मानकर उस पर विचार कर लेना अनुचित न होगा।

लम्बे संघर्ष के बाद सन् १९४७ ई. में देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति हमारे देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उत्तेजक घटना थी। इससे कुछ समय पूर्व ही द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका हिरोशिमा और नागासाकी में आग उड़ेल कर शान्त हुई थी। यह घटना विश्व के इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना थी।

संसार के अन्य साहित्यों की भाँति हिन्दी साहित्य में भी इस घटना के बाद कवियों, लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों की एक ऐसी पीढ़ी उभरकर सामने आई है, जिसकी यह धारणा है कि द्वितीय महायुद्ध द्वारा ध्वस्त मानवीय संस्कृति को अलीक बनाकर ही बचाया जा सकता है। यह पीढ़ी साहित्य के पुराने बन्धनों से मुक्त होने के लिए आकुल है। इस महायुद्ध ने संसार के बुद्धिजीवियों को कुछ सोचने के लिए विवश कर दिया। हिन्दी के साहित्यकारों में भी बौद्धिक एवं मानसिक उद्वेलन पैदा कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न मोहभंग ने, जीवन की अर्थहीनता और उलझनों ने उसे और अधिक गंभीर बना दिया है।

इस संक्रान्तिकाल में देश में दो तरह के साहित्यकारों की पीढ़ी थी। एक तो वे साहित्यकार, जिन्होंने परतंत्र एवं स्वतंत्र दोनों स्थितियों के दर्शन किये थे। जिसने गाँधीजी के रामराज्य का स्वप्न देखा था, जिसमें अनुशासन, त्याग, सेवा और बलिदान की भावना थी। स्वतंत्रता के बाद मानवता को विनाश के कगार पर देखकर उसका मोहभंग हुआ। उसमें संत्रास, कुण्ठा, भग्नाशा, नैराश्य आदि की भावना फैल गई। दूसरी पीढ़ी वह थी, जिसने स्वतन्त्र भारत में जन्म लिया, होश संभाला। इस पीढी ने अपने चारो ओर अभाव, कुण्ठा, संत्रास और यंत्रणा, जीवन की सारी विद्रूपताएं और कुरूपताएं देखीं। उसने भग्नाशायें और खण्डित जीवन देखा, जिससे वह भड़क उठी। स्वतंत्रता का भ्रष्ट रूप ही उसने देखा।

ध्वस्त होते जीवनमूल्य ही उसके आदर्श बन गये। फलत: वह मूर्तिभंजक बन बैठा। वह आगे बढ़ना चाहता है, पर परम्परा उसके मार्ग में अड़चन पैदा करती है, जिसे वह तोड़ देना चाहता है। फलत: वह विद्रोही हो गया है। पुरानी पीढ़ी उसे सहन

न कर सकी, यहीं से दो पीढ़ियों का संघर्ष प्रारंभ होता है। जो परिवार में, युनिवर्सिटी और कालेज कैम्पसों में, सड़कों पर यत्र-तत्र सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। यह परिवर्तन अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित की अपेक्षा साहित्यकार में अधिक दिखाई पड़ता है, क्योंकि वह सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकंजे से मुक्त होकर देश में उल्लास का वातावरण अधिक देर तक न टिक सका। देशविभाजन के फलस्वरूप भीषण रक्तपात, लूटमार, बलात्कार ने उसकी जड़ें हिला दी। रक्तपिपासा और प्रतिशोध की भावना से नवनिर्मित स्वतंत्रता खतरे में पड़ सकती थी। यशपालकृत "झूठा सच" तथा "तमस" (भीष्म साहनी) तथा अन्य उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में उस दुर्दान्त रूप का चित्रण हुआ है।

इससे बड़ी समस्या थी देशी रियासतों के एकीकरण, राष्ट्रीयकरण का कार्य, जिसे सरदार पटेल ने बड़ी ईमानदारी से पूर्ण किया। इस प्रकार देश में साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया।

इसके अतिरिक्त जिन बातों ने भारतीय जन-मानस को, साहित्यकारों को प्रभावित किया, उनमें भारतीय संस्कृति, धार्मिक स्वतंत्रता, अछूतोद्धार आदि था। संविधान में इन सब बातों को स्थान दिया गया। इसके बाद पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश को विकास के पथ पर ले जाने का प्रयास प्रारंभ हो गया। किन्तु केवल स्वतंत्र होने से ही सब कुछ नहीं प्राप्त हो जाता। देश में नैतिक, चारित्रिक पतन से देश की स्थिति जर्जर हो गई। ऋणभार से देश दबने लगा और जनसंख्या वृद्धि से महानगरों की समस्या और भी शोचनीय होती गई। औद्योगीकरण ने बेरोजगारी की समस्या खड़ी कर दी। इन सब बातों के कारण अनेक परम्परागत आचार संहिताएं बदल रहीं हैं। नैतिक मानदण्ड बदल रहे हैं और लोगों की दिनचर्या बदल रही है। पवित्र नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है, फलतः कवियों और लेखकों को इस बदलती परिस्थिति ने प्रभावित किया। मध्यवर्गीय साहित्यकार साधनविहीनता में अस्तित्वहीनता महसूसने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के सारे स्वप्न खण्डित होने लगे। आज भारतवासी के जीवन के चारों ओर जो उलझनपूर्ण परिस्थितियां है उनके बीच आज के लेखक और कवि का रचना संसार, उसका चिन्तन और बोध, उसकी सर्जनात्मकता आदि सभी कुछ तेजी के साथ परिवर्तित हो गये हैं और हो रहे हैं। वह समाज को बदलने, राजनीति को नया रूप देने, आर्थिक समृद्धि लाने, संक्षेप में मानवी क्रान्ति का आह्वान करता है, परन्तु जब उसने इन बातों को पूर्ण करने में अपने को असमर्थ पाया तो उसे कुण्ठा, संत्रास, विडम्बना, घुटन का एहसास हुआ।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर प्रत्येक भारतवासी आत्मसम्मान एवं गर्व का अनुभव करता है और पिछले चालीस वर्षों में विविध पंचवर्षीय योजनाओं, शिक्षा पद्धति, ग्राम सुधार योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन,

आदि के द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्नति की है। देश की औसत आय बढ़ी है। खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ा है, अनेक कल-कारखाने खुले हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भी उन्नति हुई है। भूगर्भ में अणु विस्फोट और आर्यभट्ट, रोहिणी आदि की उड़ान के बाद हम अंतरिक्ष में कदम बढ़ा रहे हैं तो भी स्वतंत्र भारत में जितनी उन्नति होनी चाहिए वह नहीं हुई। इतने वर्षों बाद भी आज लाखों प्राणी भूखे और अधनंगे सड़कों पर दिखाई देते हैं, झुग्गी झोपड़ियों से भारतभूमि अब भी कुरूपता धारण किए हुए है और भिक्षा वृत्ति का अन्त अभी तक नहीं हुआ।

साठोत्तरी साहित्य के बारे में श्रीकान्त शर्मा के शब्दों में—"मैं समझता हूँ साढोत्तरी पीढ़ी का अधिकांश साहित्य एक भिन्न स्तर का ही नहीं सर्वथा नये सन्दर्भ का साहित्य है। यह पूरा साहित्य उस पीढ़ी का है, जो अपराजेय विवशता की स्थिति में जन्मी है और आज भी उसी विवशता को भोग रही है।" उसके लिए "विवशता" या "विसंगति" या "विघटन" आतंक अनुभव नहीं, जीवित संस्कार है। उन्हें स्वप्नमोह कभी हुआ ही नहीं, इसलिए वे स्वप्नभंग की वेदना को भी नहीं जानते। वे विवशता को अपनी नियति का अनिवार्य अंश मानते हैं। इसलिए वे इतिहास के किसी खण्ड के प्रति विद्रोह करने के बजाय सम्पूर्ण इतिहास से विद्रोह करते हैं। किसी स्थिति विशेष के प्रति नहीं वरन् पूरी मानव सभ्यता को जो काठ जैसा बेडौलपन है उसे स्वीकार करके उसकी अनिवार्य परिणतियों को स्वीकार कर उसके नतीजे से कतराने के बजाय उसको उधेड़ कर राख कर देना चाहते हैं। युद्ध, शान्ति, सौन्दर्य, वर्जना, संस्कृति, समाज प्रतिबद्धता, गति अवरोध, विरोध, समर्थन, प्रेम, सहवास, रति, श्रृंगार ये सारे के सारे शब्द उनके निकट एक दबाव के रूप में आते हैं, क्योंकि युद्ध से उसके पिता की पीढ़ी सम्बद्ध थी। वे आज उनके परिणामों को केवल साठोत्तरी पीढ़ी का होने के नाते भोग रहे हैं। शान्ति का उनके निकट कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वे शीतयुद्ध के युग में जन्मे, पनपे और बड़े हुए हैं। यौन का सौन्दर्य उन्होंने एक नग्नता के सन्दर्भ में ही अनुभव किया है, क्योंकि नैतिकता केवल वर्जना के रूप में ही उन्हें मिली थी।

यह एक विसंगति की स्थिति है, किन्तु इस विसंगति का बोध या इसकी जागरूकता ही इस अवरुद्धता से निष्कृति पाने का मार्ग है। इस दृष्टि से देखने पर मुझे लगता है कि यह पूरा साहित्य एक भीड़ का साहित्य है। इसका पूरा भावबोध एक भीड़ के वृत्त में फँसे मानव की अकुलाहट है। इसकी सारी शब्द योजना इसी भीड़ के बीच से उभरती हुई चीख है जो अलग-अलग स्वरों में अपने आपको पहचानने की प्रक्रिया में उभरी है।[१]

कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि साठोत्तरी पीढ़ी का प्रयोगकारी या रचनाकार एक साथ अपने समय से भी लड़ रहा है। उसके सामने न तो अतीत है और न भविष्य। इसलिए साठोत्तरी पीढ़ी में जो चीज सबसे अधिक उभर कर आई है वह है आत्मदाह

---

१. तथाकथित साठोत्तरी पीढ़ी : एक ऐतिहासिक सन्दर्भ, श्रीकान्त वर्मा, आलोचना-पूर्णांक ४१, जनवरी-मार्च १९६२,

का अनुभव। श्रीकान्त वर्मा साठोत्तर साहित्य को ऐतिहासिक विवशता के रूप में देखते हुए लिखते हैं—

"इस सन्दर्भ में जब मैं साठोत्तरी पीढ़ी के पूरे साहित्य को देखता हूँ और उसकी कृत्रिम से कृत्रिम अभिव्यक्ति के माध्यम से उन चेहरों को देखने की कोशिश करता हूँ, जो ये रचनाएँ लिख रहे हैं तो मुझे सारी व्यंजना एक ऐतिहासिक विवशता और सामाजिक दस्तावेज के रूप में दिखलाई पड़ने लगती है।"

साहित्यिक दृष्टि से आलोच्य काल अनास्था और अस्वीकृति का काल है। १९५७ तक आते-आते छायावादी, रहस्यवादी धारा शुष्क हो चुकी थी। मात्र कुछ रोमानी कवि ही इस तरह का साहित्य लिख रहे थे। प्रगतिवादी धारा प्रारंभ से ही न तो सशक्त थी और न स्वतंत्र हो पाई। इस प्रकार काव्य में ही नहीं उपन्यास, कहानी, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं में एक अवरोध उत्पन्न हो गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जीवन और फलत: साहित्य भी चौराहे पर आकर खड़ा हो गया। वह दिशा खोजने लगा।

मानव मूल्यों की अवमानना और आदर्शों एवं नैतिकता के आडम्बर के बीच रहते हुए समकालीन हिन्दी साहित्यकार निर्माण एवं संहार के द्वन्द्व को लेकर चल रहा है। ग्रहण एवं त्याग का संघर्ष है। पुरानी मान्यताओं को खण्डित कर नये मानव मूल्यों के प्रति उसका झुकाव बढ़ रहा है, अपनी स्थापनाओं में कितना सफल होगा, यह तो इतिहास बतायेगा।

अब हम १९६० के पश्चात् लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत करेंगे। पहले गद्य साहित्य पर विचार करने के बाद काव्य कृतियों पर विचार किया जायेगा। गद्य साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, समीक्षा सभी का विवेचन किया जायेगा। अन्त में गत २५-२६ वर्षों की हिन्दी कविता पर विचार किया जायेगा।

उपन्यास

वर्तमान हिन्दी साहित्य में उपन्यास और कहानी का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। यूरोप में भी कथा-साहित्य मुख्य रूप से दो सौ वर्षों में ही विकसित हुआ है और निरन्तर नवीन रूप और विशेषताएं परिलक्षित करता आया है। सन् १९५० के बाद हिन्दी उपन्यास ने यथेष्ठ प्रगति की है, फलत: पिछले दशकों की अपेक्षा इसमें कहीं अधिक वैविध्य और समृद्धि के लक्षण दिखाई देते हैं। इन वर्षों में काफी बड़ी संख्या में ऐसे उपन्यास लिखे गये हैं, जिनका स्तर शैली और शिल्प की दृष्टि से ऊँचा है और जिनकी विषयवस्तु में नवीन आकर्षण है। आज के उपन्यास साहित्य में इतनी अधिक विविधता है और इतने नवीन प्रयोग किये गये हैं कि उसका श्रेणी विभाजन कठिन हो गया है। तब भी दो-तीन कोटियाँ प्रमुख रूप से देखी जा सकती हैं—(क) आंचलिक, (ख) मनोवैज्ञानिक, (ग) वैयक्तिक, (घ) पारिवारिक समस्याओं से संबंधित या सामाजिक।

इससे दो-तीन दशक पूर्व प्रमुखतया ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर ही अधिकांश रचनाएं लिखी गई थी। आज के नवीन युग में इन विषयों के प्रति पाठकों का आकर्षण घट गया है और कथा-साहित्य व्यक्तिनिष्ठ होता जा रहा है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्वों और अवसादों का विश्लेषण हुआ है और उपन्यास अहंवादी समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य प्रमुख रूप से दिखाई पड़ते हैं। इसके साथ ही इन रचनाओं में काम, वासना और यौन संबंधों का भी चित्रण खुलकर हुआ है। आधुनिक उपन्यास में शिल्प और शैली में अनेक नवीन प्रयोग हुए हैं। सिनेमा और नवीन मनोविज्ञान की उपलब्धियों को समेटा गया है। अत: फ्री एसोसियेशन, सिनेरियो टेकनीक, फ्लैशबैक टेकनीक आदि की चर्चा आज के उपन्यासों में प्रमुख रूप से देखी जा रही है। इस युग की एक नवीन कथा साहित्य की साहित्यिक धारा है—वैज्ञानिक कथा एवं उपन्यास साहित्य। वैज्ञानिक कथा साहित्य में वैज्ञानिक प्रमाणों को सामने रखते हुए पुरानी रूढ़ीवादी अन्धविश्वासों का पर्दाफाश करना है और नवीन संभावनाओं को सामने लाना है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की परम्परा पुरानी है। द्विवेदी युग में लिखे हुए मन्नन द्विवेदी के दोनों उपन्यास "रामलाल" तथा "कल्याणी" आञ्चलिक हैं।[१] उसमें पूर्वी उत्तर-प्रदेश के कतिपय जनपदों का जीवन अंकित है। आज से पचास वर्ष पूर्व के ग्रामीण जीवन का पूर्ण रूप से पता चल जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी आंचलिकता का पुट दिखाई पड़ता है। इसके बाद वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में यह झलक दिखाई पड़ती है। अद्यतन काल में आंचलिक उपन्यासों का उत्कृष्ट विकास हुआ है। इस दृष्टि से पहली रचना "बलचनवा" १९५२ में प्रकाशित हुई। इसमें नागार्जुन की समाजवादी दृष्टि आद्योपान्त प्रगट हुई है। इन्हीं की दूसरी कृति "बाबा बटेसर" में दरभंगा जिले के रूपउली ग्राम का इतिहास उद्‌घाटित होता है। शिल्प की दृष्टि से भी यह एक नया प्रयोग है। इसी वर्ष फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आंचल" लोकप्रिय आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इन कृतियों में उन समस्याओं पर प्रकाश डाला है जो सामान्य जनों के जीवन में अनिश्चित और संकटापन्न बना देती है। उच्च वर्ग के जमींदार और धनीमानी लोग अपनी अर्थ-लोलुपता और कामवासना की तृप्ति के लिए जघन्य कार्य करने में नहीं हिचकिचाते हैं। इसके बाद शिवप्रसाद मिश्र "रुद्र" का "बहती गंगा" उपन्यास अपने ढंग की अनोखी कृति है। सत्तरह कहानियों को सम्बद्ध करके काशी का दो सौ वर्षों का वास्तविक जीवन खड़ा कर दिया है। इसके बाद उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य" में समुद्रतट के मछुवारों का जीवन वर्णित है। इसी क्रम में शैलेश मटियानी का "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" उपन्यास आता है, जिसमें बम्बई के एक विशेष कस्बे तथा वहाँ रहने वाले निम्नवर्गीय जीवन का बड़ा यथार्थ चित्रण मिलता है।

वर्तमान समय में प्रयोगात्मकता हिन्दी उपन्यासों में पग-पग पर देखने को

---

१. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा, राम अवध द्विवेदी पृ. २०५,

मिलती है। मनोवैज्ञानिक एवं काम विषयक उपन्यासों की परम्परा जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि पूर्ववर्ती दशकों में प्रारम्भ कर चुके थे। साठोत्तर काल में मनोविज्ञान और कामवासना का महत्त्व और भी बढ़ गया है। स्वतंत्र प्रेम एवं यौन संबंध को प्रश्रय देने वाले मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अज्ञेय का "नदी के द्वीप" प्रमुख है। इसके बाद "अजय की डायरी" देवराज कृत सफल विचारात्मक उपन्यास है। इसमें शैली और शिल्प दोनों में नया प्रयोग हुआ है। वस्तु विन्यास की दृष्टि से धर्मवीर भारती का "सूरज का सातवाँ घोड़ा" विशेष महत्त्व रखता है। रघुवंश में "तंतुजल" नामक उपन्यास की सम्पूर्ण विवृत्ति "फ्लैश बैक" शैली में हुई है। गिरधर गोपाल के "चाँदनी के खण्डहर" और राजेन्द्र यादव के "उखड़े हुए लोग" में मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण मनोवैज्ञानिक भूमिका पर अंकित किया गया है। इस श्रेणी के उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत "चारुचन्द्रलेख" अपने ढंग की अनोखी कृति है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रचुर सामग्री को पाण्डित्य तथा भावुकता के साथ इस उपन्यास में सन्निविष्ट किया है। शिल्प विधान में नये प्रयोग किये हैं। दैनन्दिनी, वर्णनशैली तथा अन्य कई शैलियों का सम्मिश्रण किया गया है।

निष्कर्ष में उपन्यासकारों की जो पीढ़ी उभर कर सामने आई है, उसने परम्परागत कथा रूढ़ियाँ तोड़ी है। कथ्य एवं कथन के साथ शिल्प की दृष्टि से भी, उद्देश्यपूर्ण आदर्शवादी उपन्यासों का युग समाप्त हो गया। आज का उपन्यासकार व्यक्ति की स्वतंत्रता स्वीकार करता है और उसके मनोभावों एवं निजी आन्तरिक अनुभूतियों को सहज एवं स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है। पश्चिम के अन्धानुकरण पर चित्रित यथार्थ तो झूठा प्रतीत होता है किन्तु जिन लेखकों ने भारतीय परिवेश में परिवर्तित परिस्थितियों का चित्रण कर मानव मूल्यों को नया आयाम देने की चेष्टा की है उनकी रचनाएं प्रभावशाली बन पड़ी है। डॉ. रमेशचन्द्र शाह का "गोबर गणेश" इसका सुन्दर उदाहरण है। सामयिक उपन्यासों में जीवन की जो खोज है, उसमें सूक्ष्मता और गहराई के साथ जो विस्तार है, मोहभंग की जो अनुभूति है, जीवन की जटिलता और उससे उबरने का जो प्रयास है वह सब आधुनिकता के विभिन्न स्तरों के सन्दर्भ में है। सामयिक उपन्यास मनुष्य के टूटने और बनने की प्रक्रिया की गाथा है। "उपन्यासकार अब "किस्सागों" नहीं माना जाता। पाठक स्वयं सब कुछ देखना चाहता है न कि सुनना।"[१]

विवेच्य काल में सामाजिक उपन्यासों का प्रमुख स्थान है। व्यक्ति को प्रधान मानकर ये उपन्यासकार रचना करते रहे हैं, यथा— राजेन्द्र यादव कृत "अनदेखे अनजान पल" १९६३ में नायिका के रूप में एक व्यक्ति का सुन्दर मनोवैज्ञानिक

---

१. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, संस्करण १९८२, पृ. २३

चित्रण हुआ है। इसी प्रकार नरेश मेहता कृत ''दो एकान्त'' (१९६४) तथा ''प्रथम फाल्गुन'' (१९६८) में व्यक्ति को समाज से जोड़ने की कोशिश है। इनमें मध्यम वर्ग का संकट और आधुनिक बोध व्यक्त हुआ है। मोहन राकेश के ''अंधेरे बन्द कमरे'' में दाम्पत्य जीवन में पड़ी दीवारों, विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच टूटते सम्बन्धों का चित्रण हुआ है। स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों को लेकर बलवन्तसिंह कृत ''बासी फूल'', महेन्द्र भल्ला कृत ''एक पति के नोट्स'', कृष्णा सोवती कृत ''मित्रो मरजानी'' व्यक्ति केन्द्रित विषमताओं का चित्रण करते हैं। इसी वर्ग के उपन्यासों में शिवानी कृत ''कृष्णकली'' (१९६९) और ''भैरवी'' (१९६९) उपन्यासों का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार उनके ''चौदह फेरे'' (१९६५) और ''अपराधिनी'' (१९७१) में संस्कारों से ग्रस्त नारीजीवन की मुक्ति प्राप्त करने की छटपटाहट है। भीष्म साहनी के ''कड़िया'' (१९७०) नामक उपन्यास में वैवाहिक एवं पारिवारिक विघटन की कहानी है। देवेश ठाकुर के ''भ्रमभंग'' में व्यक्ति प्रधान होते हुए पारिवारिक टूटते सम्बन्धों की कहानी है।

सेक्स, परिवार-विघटन, पति-पत्नी संघर्ष, अर्थात् संक्षेप में व्यक्ति और स्त्री-पुरुष संबंधों के सीमित दायरे में लिखे गये उपन्यासों के अतिरिक्त विवेच्यकाल में कुछ उपन्यासकारों ने जीवन की व्यापकता, उसके फैलाव, समाज और राष्ट्र के प्रति बहुजन हिताय का दृष्टिकोण ग्रहण कर सामयिक हिन्दी उपन्यासों के एकांगी होने के दोष का परिहार किया है और इस बात को सिद्ध किया है कि सेक्स और व्यंग्य की तंग दुनिया से बाहर भी निकला जा सकता है। राजेन्द्र यादव का ''सारा आकाश'', मन्नु भण्डारी का ''एक इंच मुस्कान'', शह और मात, शिवप्रसाद सिंह 'अलग-अलग वैतरणी', देवेश ठाकुर, ''भ्रमभंग'', जगदीशचन्द्र पाण्डेय ''धरती और नींव'', शिवानी ''रतिविलाप'', ''विषकन्या'', और शैलेश मटियानी ''छोटे-छोटे पक्षी'', डॉ. रमेशचन्द्र शाह ''गोबर-गणेश'', ''किस्सा गुलाम'' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यमुनादत्त वैष्णव ''अशोक'' के नियोगिता नारी ''भूत की वेदना'' आदि वैज्ञानिक उपन्यास नये शिल्प एवं कथ्य को उजागर करते हें। सम्प्रति हिन्दी में उपन्यासों और कहानियों की अपार भीड़ है। इन सब की चर्चा करना असंभव है किन्तु सभी लेखकों ने अभावों, संघर्षो, विघटित होते हुए मूल्यों के बीच जिन्दगी की नब्ज पकड़ने की चेष्टा की है। सभी ने महानगरों, गाँवों और मध्यवर्गीय जीवन को अपना लक्ष्य बनाया है। नया शिल्प, नई संवेदनाओं, युगबोध और नई धारणाएं उभार कर जीवन के भीतर और बाहर निरखा-परखा है। व्यक्ति की नियति को पहचानने का प्रयास हो रहा है। आस्था और अनास्था के बीच द्वन्द्व चल रहा है। इस तरह बहुस्तरीय जीवन को टटोलने और उसकी परतें उखाड़ने की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास का उज्ज्वल भविष्य है।

इन प्रवृत्तियों के आधार पर कूर्माचल के उपन्यासकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक उपन्यासकारों में गोविन्दवल्लभ पंत, शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी, रमेशचन्द्र शाह, पानूखोलिया, शिवानी प्रमुख हैं। ''नीहारिका'', ''रूपगंधा'', ''उजाली''

(१९७२) ''संशय का आखेट'' (१९७५) ''अंधेरे में उजाला'' (१९७६), ''तीन दिन'' (१९७६), ''ज्वार'' (१९७७), ''परिचारिका'' (१९७८), श्री गोविन्दवल्लभ पंत के सामाजिक उपन्यास हैं। ''छायामत छूना मन'' (१९७४) में हिमांशु जोशी जी ने अनेक विसंगतियों एवं घटनाओं का चित्रण किया है। पानूखोलिया ने ''सत्तरपार के शिखर'' में सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है। ''दो बूँद जल'' (१९६६) व ''राम-कली'' (१९७८) में शैलेश मटियानी ने निम्नवर्ग के पुरुष समाज द्वारा नारी को मात्र भोग्या समझने की समस्या का चित्रण किया है। रमेशचन्द्र शाह के ''गोबर-गणेश'' में अध्यात्म के द्वारा सामाजिक चेतना को उकेरा है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इलाचन्द्र जोशी का ''ऋतुचक्र'' (१९६९) प्रमुख है। विवेच्य उपन्यास में उपन्यासकार का दृष्टिकोण आदर्शवादी है तथा पुरानी पीढ़ी के प्रति आस्था व्यक्त की है। गहन अनुभूतियों की दृष्टि से सशक्त रचना है। इसके बाद लेखक की ''कवि की प्रेयसी'', ''त्याग का भोग'' प्रेमानुभूति एवं अस्तित्व बोध उभरकर आया है। ''भूत का भविष्य'' हरिजन समस्या को लेकर लिखी गई रचना है।

कूर्माचल के आंचलिक उपन्यासकारों में शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी, जगदीशचन्द्र पाण्डेय तथा यमुनादत्त वैष्णव, मृणाल पाण्डेय, शिवानी आदि प्रमुख हैं। शैलेश मटियानी के अधिकांश उपन्यासों में कूर्माचल का सजीव चित्रण मिलता है। ''चिट्ठी रसेन'' (१९६१), ''हौलदार'' (१९६१) ''चौथी मुट्ठी'' (१९६१), ''एक मूँठ सरसों'' (१९६३), आदि पूर्ण आंचलिक हैं। इन रचनाओं के पात्रों के साथ तत्संबंधित परिवेश का सम्पूर्ण चित्र है। ''हौलदार '' कहानी में पात्रों के साथ में ही अपनी गोली से घायल वापस घर आये डुंगरसिंह के मन में उत्पन्न विभिन्न भावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। ''चिट्ठी रसेन'' में पीताम्बर व विधवा रमौली के अवैध संबंधों का चित्रण है। ''एक मूठ सरसों'' में कुमाऊँ अंचल में हुए अवैध प्रेम संबंधों को उठाया गया है।

भाषा की दृष्टि से मटियानी द्वारा प्रयुक्त आंचलिक शब्द भावबोध को सहज एवं स्वाभाविक बना देते हैं। कुमाऊँ के अत्यन्त सुन्दर शब्द-चित्र वहाँ की भाषा में लेखक ने उतारे हैं। जगदीश पाण्डेय का ''गगास के तट पर'' (१९६८) भी श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इस उपन्यास में अंचल की छोटी-छोटी घटनाओं, आचार-विचारों, रीति-रिवाजों तथा पारस्परिक सम्बन्धों आदि के सजीव चित्र मिलते हैं। हिमांशु जोशी के आंचलिक उपन्यास ''बुँरास फूलते तो हैं'' (१९६५) में सरकार की ओर से न्याय के लिए नियुक्त कारिन्दों के क्रूर कर्मों का दस्तावेज है। इसके बाद लेखक का ''कगार की आग'' (१९७६) सशक्त आंचलिक उपन्यास है। इसमें निरीह ग्रामीणों का शोषण एवं ईमानदार, परिश्रमी नारियों पर हो रहे अनाचार, अत्याचार के विरूद्ध प्रबल आक्रोश की व्यंजना हुई है।

शिवानी के उपन्यास कुमाऊँ आञ्चल से संबंधित है। आंचलिकता के साथ-साथ

इनके उपन्यासों में विभिन्न नगरों एवं क्षेत्रों के दर्शन भी हो जाते हैं। "इनके कुछ उपन्यास अर्द्धआंचलिक की श्रेणी में रखे जा सकते हैं "चौदह फेरे", "कैंजा" आदि उक्त कोटि के उपन्यासों में आते हैं।"[१]

यमुनादत्त वैष्णव "अशोक" के उपन्यास भी आंचलिकता की श्रेणी में आते हैं। "ये पहाड़ी लोग" (१९७१) में उन नेपाली मजदूरों की कहानी है, जो नेपाल से कूर्माचल के पर्वतीय क्षेत्रों में मजदूरी की तलाश में भटकते हैं। उनके रीति-रिवाज, धर्म-संस्कृति आदि का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार लेखक का "राजुली मालूसाही" (१९७३) लोकगाथा पर आधारित आंचलिक उपन्यास है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में गोविन्दवल्लभ पंत का नाम उल्लेखनीय है— "कोहनूर का हरण" (१९६५), "ध्वंस और निर्माण" (१९७५) "रजिया" (१९७६) प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है। वैज्ञानिक उपन्यासकारों में देवेन्द्र मेवाड़ी, यमुनादत्त वैष्णव एवं कैलाश साह प्रमुख हैं। नये उभरते उपन्यासकारों में गोपाल उपाध्याय, प्रदीप पंत, शीतांशु भारद्वाज, पंकज विष्ट, बलवन्त मनराल आदि का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

कहानी

उपन्यास की भांति सामयिक कहानी में भी परिवेश के बोध की संवेदना, बाह्य एवं आन्तरिक विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, कटुताओं, पारिवारिक विघटन, मूल्य-संक्रमण, स्त्री-पुरुष संबंधों आदि को लेकर नये मानवीय क्षितिज की खोज हो रही है और साहित्यकार अपने व्यक्ति और समाज के बीच समीकरण एवं संतुलन स्थापित करने की चेष्टा में संलग्न है।

आलोच्य काल में यशपाल, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, भैरवप्रसाद गुप्त आदि प्रगतिवादी दृष्टिकोण से कहानियाँ लिख रहे थे। जैनेन्द्र, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि व्यक्ति की स्थापना करने में लगे हुए थे। राम अवध द्विवेदी के शब्दों में "वर्तमान दशक में हिन्दी कहानी में फिर से गति दिखाई देने लगी है। कितने ही श्रेष्ठ नये कहानी लेखक इस दशक में हिन्दी को उपलब्ध हुए हैं। मोहन राकेश, अमृतराय, रामकुमार, भीष्म साहनी, कृष्णबलदेव वैद, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोवती, कमलेश्वर, शेखर जोशी आदि। इन नये लेखकों से हिन्दी कहानी को निस्सन्देह नया बल मिला है।"[२]

साठोत्तरी कहानियों ने एकदम तो नहीं, धीरे-धीरे पिछले रोमानी जीवन बोध से मुक्ति पाने की सफल चेष्टा की है। इन कहानियों में सन् ६० के पहले की मानसिकता अब दृष्टिगोचर नहीं होती। परम्परागत बातों के प्रति अब उन्हें कोई मोह नहीं है। "सन् साठ के आस-पास और उसके बाद एक ऐसी पीढ़ी सामने आई है, जिसने द्वितीय

---

१. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. कफल्टिया, पृ. २६२ (शोध-प्रबन्ध)

२. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा, पृ. २०९

महायुद्ध और स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद ही होश संभाला है और जिसका व्यक्तित्व नये युग के नितान्त अनुकूल है। उन्हें किसी से मुक्ति प्राप्त नहीं करनी। वे "स्थापना" की ओर उन्मुख है, जिसके लिए उन्हें अपने से उतना नहीं, जितना अपने चारों ओर के माहौल से संघर्ष करना पड़ रहा है।"[१] इसके अतिरिक्त साठोत्तर कहानी पर विचार करते हुए वार्ष्णेय जी का कथन इस प्रकार है—"सन् साठ के आस-पास और उसके बाद की कहानी में जीवन्तता है और खण्डित मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों और मर्यादाओं की स्थापना का आग्रह है। उसमें किताबीपन और जबरदस्ती ओढ़ा हुआ बोध बहुत कम है। वह आधुनिक मनुष्य के जीवन के प्रति करुणा और व्यंग्य की अवतारणा करती है। निराशा, अनास्था, बौद्धिक तटस्थता, मृत्युभय आदि के स्थान पर उसमें जिजीविषा और संघर्षरत होने की इच्छा है।"[२]

कुछ लोगों ने "अ-कहानी" आन्दोलन में कहानी के पिछले स्वरूप को नकारने की चेष्टा की है। नई कहानी की प्रतिक्रिया के रूप में "अ-कहानी" और सचेतन कहानी आन्दोलन का जन्म हुआ। "अ-कहानी" के संबंध में डॉ. गंगाप्रसाद विमल के विचार—"वस्तुत: एक अलग आधार पर यदि निष्पक्ष होकर विश्लेषण किया जाय तो हमें ज्ञात होगा कि लगभग सभी समकालीन रचनाएं पूर्व रचनाओं का विकास या विरोध न होकर एक नई तरह की कथा-रचनाएं भी हैं, उन्हें सामान्य शब्दों में कथा-रचनाएं भी नहीं कहा जाना चाहिए। इसलिए उन्हें अ-कहानी कहा जाता है—वस्तुत: समकालीन कथा-धारा अथवा सन् ६० के बाद की कहानी मानव-विश्वास की आदर्श कहानी नहीं है, अपितु वह मनुष्य मस्तिष्क के भीषण संकटबोध की यथार्थ प्रतीति की कहानी है, जो मानव पीड़न को इसलिए व्यक्त नहीं करती कि वह कोई प्रदर्शनीय प्रसंग है, अपितु वह यथार्थ का भोग है।[३]

इस आन्दोलन के अतिरिक्त इस समय सचेतन कहानी का आन्दोलन भी चला, जिसके प्रतिनिधि लेखक डॉ. महीपसिंह है। उनके शब्दों में—"सचेतन एक दृष्टि है, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।" सचेतन कहानी जीवन के टूटते मूल्यों के साथ चिरन्तन आस्थाओं को वाणी प्रदान करती है, उसमें जीवन के यथार्थ, परिवेश और जीवन सत्य के प्रति चेतना और जिजीविषा रहती है।

इस आन्दोलन के प्रवर्त्तक नई कहानी को रूढ़ मानते हैं। उसके स्थान पर सचेतन कहानी को अधिक स्वाभाविक और जीवन के अधिक निकट पाते हैं। साठोत्तर कहानी में विचार के स्थान पर यथार्थ का ही अधिक चित्रण हुआ है। फलत: साठोत्तरी कहानी के शिल्प और पैटर्न और भाषा में पहले की अपेक्षा बहुत अन्तर आ गया है। यद्यपि साठोत्तरी कहानी पूर्णत: स्वस्थ नहीं कही जा सकती तो भी आज कहानी की

---

१. द्वितीय महायुद्धोत्तर: हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. ५६,

२. वही, पृ. ५७,

३. द्वितीय महायुद्धोत्तर: हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. ५७

संभावनाएं काफी उभर चुकी है और वह गतिरोध तोड़ रही है, जीवन के प्रति आस्था एवं नये आयाम ढूँढ़ने का प्रयास कर रही है और समन्वय की आकांक्षी है। हालांकि इसमें भी सेक्स, देहवाद और सेक्सिका नारी के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है। सुदर्शन चोपड़ा—''क्रिच', राजेन्द्र यादव ''जहाँ लक्ष्मी कैद है'', शैलेश मटियानी ''तीसरा सुख'', मनू भण्डारी ''आकाश के आइने में'' और ''यही सच है'', इस प्रकार की कहानियाँ हैं। चाहे अ-कहानी, सचेतन कहानी, स्वस्थ कहानी, समानान्तर कहानी, या समान्तर कहानी हो, यौन भाव सब में नियामक तत्त्व के रूप में परिव्याप्त है।

मनोविश्लेषणवादी कहानियों का भी प्रचलन बढ़ रहा है। जैनेन्द्र एवं इलाचन्द्र जोशी ने ऐसी कहानियों की शुरूआत की थी। शैलेश मटियानी ''रेणु'', मार्कण्डेय आदि लेखक आंचलिक कहानियां लिख रहे हैं।

जहाँ एक ओर सन् साठ के बाद लेखकों को हम मानव मूल्यहीनता, कुण्ठा, यंत्रणा आदि के प्रति मोह में पड़ा देखते हैं। वहीं दूसरी तरफ कुछ-कुछ रचनाकारों ने समाज के उज्ज्वल पक्ष को लेकर सशक्त रचनाएं प्रस्तुत की हैं। कहानी आन्दोलनों के विवाद पर ''उस पर तरह-तरह के लेबिल लगाने से कोई लाभ नहीं, यही नहीं, यह लेबिल लगाने की प्रवृत्ति मनोवैज्ञनिक भी है। साहित्य में पिछले कल, आज और आगे आने वाले कल के बीच विभाजन रेखाएं नहीं खींची जा सकती। कहानी यदि कहानी है तो उसमें ''आदमी'' तो रहेगा ही वह चाहे ''आम आदमी'' हो या ''काम का आदमी''।[१]

कुमाऊँ के कहानीकारों में शेखर जोशी तथा शैलेश मटियानी, रमेशचन्द्र शाह, दिनेश पाठक, मृणाल पाण्डेय, शिवानी, देवेश ठाकुर, बटरोही, पंकज विष्ट एवं शीतांशु भारद्वाज तथा नित्यानन्द प्रमुख रूप से नयी पीढ़ी के कहानीकारों में गिने जाते हैं। शेखर जोशी की कहानी ''कोसी का घटवार'' में झूठे सम्बन्धों के बीच नये मूल्यों की खोज तथा संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हुई है। ''मेण्टल'' में सामाजिक यथार्थ का सफल चित्रण हुआ है। शैलेश मटियानी की कहानियों में आधुनिक नयी कहानी का यथार्थवाद स्पष्टतया झलकता है। इस दृष्टि से ''दो दुःखों का एक सुख'', ''कपिला'', ''तीसरा सुख'' ''अहिंसा'' आदि कहानियां प्रमुख हैं। शिवानी की कहानियों में नारी मनोविज्ञान, पारिवारिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण, अपूर्व प्रवाह तथा सरलता के साथ अभिव्यंजित हुआ है। ''दो बहनें'', उपहार, ''जिलाधीश'', ''पुष्पहार'' आदि कहानियां इस दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। सचेतन कहानीकारों में हिमांशु जोशी का नाम प्रमुख है। ''आदमी जमाने का'' कहानी में घुघ्घू बाबू का चरित्र राजनीतिक संक्रमण को व्यक्त करता है।

समकालीन कहानीकारों में मनोहरश्याम जोशी, पानूखोलिया, बटरोही, मृणाल पाण्डेय आदि प्रमुख है। इस तरह की कहानियों में—''एक दुर्लभ व्यक्तित्व'' (मनोहरश्याम जोशी), ''रिश्ते'' (पानूखोलिया), ''हस्तान्तरण'' (बटरोही), ''चिमगादड़े'' (मृणाल पाण्डेय) की कहानियां प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ''किं पुरुष'' (बटरोही), ''कायर'' आदि कहानियों

१. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. वार्ष्णेय, पृ. १००,

में फेन्टेसी का प्रभाव भी देखा जा सकता है । इस वर्ग के कहानीकारों में नवोदित कहानीकार पंकज विष्ट, नित्यानन्द, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, अकुलेश परिहार, दिनेश पाठक, बलवन्त मनराल उल्लेखनीय हैं । अ-कहानीकारों में पानूखोलिया प्रमुख हैं ।

कूर्माचल के सभी कहानीकारों ने आंचलिक कहानियों के माध्यम से कुमाऊँ के उपेक्षित जनजीवन का स्वाभाविक चित्रण किया है । हिमांशु जोशी (अभाव), पानूखोलिया (एक ही चाहना), शैलेश मटियानी (अर्द्धांगिनी), शेखर जोशी (बोझ), पंकज विष्ट (हल), बटरोही (युक्ति), देवेन्द्र मेवाड़ी (दाड़िम के फूल) आदि कहानियाँ उदाहरणार्थ ली जा सकती हैं । वैज्ञानिक कथाकारों में यमुनादत्त वैष्णव ''अशोक'', कैलाश शाह एवं देवेन्द्र मेवाड़ी प्रमुख हैं ।

इस प्रकार साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में कूर्माचली कथाकारों ने अपनी सशक्त लेखनी से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

नाटक

हिन्दी नाट्यरचना की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अंग्रेजी साहित्य से सम्पर्क होने पर भारतीय पुनरूत्थान की भावना से हिन्दी साहित्यकारों ने नाट्य रचना की ओर ध्यान दिया, जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रमुख थे । इसके बाद हिन्दी नाटक उत्तरोत्तर प्रगति करता गया । भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाट्य-साहित्य को समृद्ध किया । प्रसाद के नाटकों में शिल्प, अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी नाटकों को विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया ।

बीसवीं शताब्दी में जगन्नाथप्रसाद ''मिलिन्द'', लक्ष्मी नारायण मिश्र, गोविन्दवल्लभ पंत, रांगेय राघव, वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा आदि ने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और समस्यापूर्ण या एकांकी नाटकों की रचना की, किन्तु इतना सब होने पर भी उपन्यास, कहानी की अपेक्षा नाटकों का प्रणयन कम हुआ और धीरे-धीरे पूर्ण नाटकों का स्थान एकांकी नाटकों ने ले लिया । फिर भी लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, गोविन्दवल्लभ पंत, बृजेन्द्र शाह, ब्रजमोहन साह आदि पुरानी पीढ़ी के अनेक नाटककारों ने महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना की है । भारत-सरकार ने भी संगीत-नाटक अकादमी की स्थापना कर नाट्यकला को प्रोत्साहन प्रदान करने का प्रयास किया है । कलकत्ता, प्रयाग, दिल्ली और बम्बई में अनेक रंगमंच, नाटकों के मंचीकरण द्वारा नाट्यकला प्रेमियों का एक वर्ग संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं । रेडियो, टेलिविजन के माध्यम से भी इस विधा का काफी विकास हो रहा है । इस दिशा में मनोहरश्याम जोशी द्वारा लिखित ''हमलोग'' और ''बुनियाद'' नाटकों ने काफी लोकप्रियता अर्जित की है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक परिवेश का प्रभाव अन्य साहित्य विधाओं के समान नाट्य साहित्य पर भी पड़ा है । बुद्धि, तर्क और यथार्थ का

आश्रय ग्रहण कर सामयिक नाटककारों एवं एकांकीकारों ने व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता आदि अनेक विषयों पर नाटक लिखकर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया।

चारों ओर के विघटन के बीच स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम-संवेदना भी बिखर गई, जिसका मनोवैज्ञानिक विवेचन नाटककारों ने किया है। अ-शरीरी प्रेम का कोई महत्त्व नहीं रहा, जीवन में नैतिकता का ह्रास होने लगा। सरलता, सहजता का स्थान मानसिक तनाव ने ले लिया। स्वच्छन्द एवं स्वतंत्र विचारधाराओं के फलस्वरूप सम्बन्धों में दरार पड़ने लगी। मन्नू भण्डारी के "बिना दीवारों के घर" (१९६५) परिवार में घुटन पैदा हो गई। (मोहन राकेश "आधे-अधूरे" १९६९) एक दूसरे को यातना पहुँचाने का प्रयत्न (लक्ष्मीनारायण लाल "अन्धा कुआँ" १९५५) आदि में संबंधों का विघटन व्यक्त हुआ है।

स्वतंत्र विचाराधारा मोहनराकेश के "आधे-अधूरे" में परिलक्षित होती है। इसी तरह "रातरानी" (लक्ष्मीनारायण लाल), "बिना दीवारों के घर" (मन्नू भण्डारी) आदि में देखने को मिलता है।

जगदीशचन्द्र माथुर कृत "कोणार्क" इतिहास पर आधारित नाटक है। मोहन राकेश का "आषाढ़ का एक दिन" में स्त्री-पुरुष के उदात्त प्रेम एवं भौतिक प्रेम के बीच संघर्ष को चित्रित किया गया है। इसी तरह "लहरों के राजहंस" में प्रेम और वासना, भोग और त्याग, आसक्ति और पलायन के बीच संघर्ष, मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघात दृष्टिगोचर होता है। लक्ष्मीनारायण लाल के "अन्धा कुआँ" में पति द्वारा पत्नी के प्रति किये गये पाशविक व्यवहार और प्रेम की भूख के बीच संघर्ष के चित्रण से प्रेम का अत्यन्त कारूणिक रूप प्रस्तुत हो जाता है।

सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए गीति-नाटकों और प्रतीकात्मक नाटकों की रचना भी हुई है। धर्मवीर भारती का "अन्धा युग" इसका उदाहरण है। सामयिक नाटकों की एक और विशेषता है—सम्पूर्ण नाटकों के स्थान पर एकांकी और रेडियो रूपकों की रचना। जीवन की व्यस्तता और समयाभाव के कारण इन रचनाओं की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश आदि लेखकों ने अपने एकांकियों में वर्तमान जीवन के बीच व्यक्ति की पीड़ा का अच्छा चित्रण किया है। इसमें कथावस्तु और शिल्प की विविधता है। लेखकों ने यथार्थवादी दृष्टिकोण ग्रहण कर, नागरिक जीवन की विसंगतियों को मध्यनजर रखते हुए अनेक नवीन प्रयोग किये हैं और रूढ़ियाँ तोड़ी हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं की भांति नाट्य-साहित्य में भी परम्परा के प्रति मोहभंग, अस्तित्ववाद का प्रभाव लक्ष्मीनारायण कृत "तीन आँखों वाली मछली", "अंधाकुआँ", "रातरानी", "धर्मवीर भारती कृत "नदी प्यासी थी" जीवन की विषम परिस्थिति के फलस्वरूप अनास्था, इसके साथ ही मानव-धर्म की भावना भी दिखलाई पड़ती है।

पौराणिक, ऐतिहासिक विषयों को लेकर लिखे गये नाटकों पर विचार करें तो उनमें नाट्यकारों ने मानव को नई बुद्धिवादी जीवन दृष्टि प्रदान की है। पौराणिक कथ्य को उन्होंने तर्क और विवेक की कसौटी पर कसा है। जगदीशचन्द्र माथुर के शब्दों में—"मुख्य पात्र और प्रसंग मैंने वैदिक और पौराणिक साहित्य से लिए हैं, लेकिन इसीलिए यह नाटक पौराणिक नहीं कहा जा सकता। पृष्ठभूमि के कुछ अंश और कुछ सूत्र मोहनजोदड़ो-हड़प्पा की सभ्यता की खुदाइयों से सम्बद्ध है। इस दृष्टि से यह नाटक ऐतिहासिक नहीं हो जाता। कुछ संवाद बोलचाल की भाषा में है। गीतों पर लोकशैली की छाप है, पर केवल इसीलिए नाटक को यथार्थवादी रचना नहीं ठहराया जा सकता।[१] लेखक उसे पौराणिक नाटक न कहकर आधुनिक अन्योक्ति कहना चाहता है— "वे समस्याएं सर्वथा आधुनिक हैं। वे उलझनें मेरा भोगा हुआ यथार्थ है।[१]

सामाजिक नाटकों में मोहन राकेश कृत "आधे-अधूरे" का गौरवपूर्ण स्थान है। वह आज का यथार्थ प्रस्तुत करने वाला सामाजिक परिवेश प्रस्तुत करता है। यह एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। नाटक पारिवारिक विघटन एवं उससे उत्पन्न कड़वाहट की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्ति स्वयं अधूरा है किन्तु दूसरे का अधूरापन सहन नहीं कर पाता है।

"निरंकुश" में बृजमोहन शाह ने बेकारी का प्रश्न सशक्त रूप में उभारा है। सरकारी अफसर, नेता, क्लर्क, ज्योतिषी, सिपाही, लड़की के बीच युवक त्रिशंकु सा टकराता रहता है। वह उनके भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्षशील है। युवा पीढ़ी की कठिनाइयाँ, विवशता, पीड़ा को युवक के माध्यम से लेखक ने उभारा है। उनकी अन्य नाट्य रचनाएं हैं "शह ये मात" और "युद्धमन"। मन्नू भण्डारी कृत "दीवारों के घर में" मध्यवर्गीय परिवार के पति-पत्नी के संबंधों की तनावपूर्ण स्थिति व्यक्त हुई है। अमृत राय ने "चिंदियों की एक झालर" में माँ-बाप और बेटे के वार्तालाप और कार्यों के माध्यम से युवा पीढ़ी की समस्या को पुरानी पीढ़ी की समस्या की पृष्ठभूमि में उभारा है। इसमें पीढ़ी अन्तराल का संघर्ष है। सुरेन्द्र शर्मा कृत "आठवां सर्ग" (१९७७), "सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक" "नींद क्यों रात भर नहीं आती" (१९७८), निर्मला वर्मा कृत "तीन एकान्त" (१९७८) में भी आधुनिक जीवन का सजीव चित्रण हुआ है।

युवा लेखकों में नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि करने वालों में लक्ष्मीनारायण लाल प्रमुख हैं। उनका "अंधा कुआं" प्रतीकात्मक और सामाजिक नाटक है। लेखक ने इसमें जीवन की विद्रूपताओं, असंगतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसी तरह उनके "मादा कैक्टस" और "सुन्दर-रस" नाटक भी प्रतीकात्मक है। "रातरानी" में श्रम एवं पूँजी के संघर्ष को उभारा है। "मिस्टर अभिमन्यु" में आदर्शहीन राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया गया है। "करफ्यू" नाटक एक नवीन प्रयोग है। यही नहीं लक्ष्मीनारायण लाल जी ने बाल-नाटकों की भी रचना की है। "जादू की छड़ी" एवं मस्तराम कपूर के

---

१. पहला राजा, भूमिका, जगदीशचन्द्र माथुर

"पाँच बाल नाटकों" एवं रामनिरंजन शर्मा कृत "कल के नागरिक" आदि लेखकों ने भी बाल-नाटकों की रचना की है।

कूर्माचली साहित्यकारों ने नाट्य-साहित्य में कम लिखा है। फिर भी साठोत्तरी नाट्यकारों में गोविन्दवल्लभ पंत, बृजमोहन शाह, बृजेन्द्रलाल शाह, डॉ. रमेश शाह एवं देवेशठाकुर प्रमुख रूप से नाट्य लेखन से जुड़े हैं।

पं. गोविन्दवल्लभ पंत परंपरित नाट्य लेखन में सक्रिय रहे हैं। इन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटकों में समकालीन युग जीवन की विभिन्न समस्याओं को उठाया है। "अधूरी मूर्ति" (१९६९), "अँधेरी बस्तियाँ" (१९७०), आत्मदीप" (१९७१), "तुलसीदास" (१९७४), "पन्ना" (१९७७), तथा "अहंकार" (१९७७) पंत के साठोत्तरी नाटक हैं। भाषा, शिल्प एवं रंगमंच से संबंधित नवीन प्रयोग आपकी रचनाओं में कम दिखाई पड़ता है।

इसके बाद नये प्रयोगधर्मी कथ्य एवं शिल्प में प्रयोगधर्मिता को लाने वाले कुशल रंगमंची लेखक बृजमोहन शाह हैं। प्रथम नाटक "त्रिशंकु" नाटक समसामयिक ज्वलन्त समस्या बेरोजगारी पर आधारित है। इसके साथ ही इस नाटक में क्लासिकी और परम्परागत नाट्य शैलियों का समन्वय है। "शह ये मात" में असफल इच्छाओं का संत्रास है। इसमें "मुर्गा", "सूखावृक्ष और "शतरंज का खेल" सार्थक प्रतीक के रूप में परिलक्षित हुए हैं। "युद्धमन" (१९७६) में युद्ध की भयानक विभीषिका के फलस्वरूप उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व को चित्रित करता है।

बृजेन्द्र शाह के "महाभारत", "अष्टावक्र" एवं "अजूबा बफौल" "जीतूबगड़वाल" "मालूसाही" एवं गीति नाटिका "हीलजात्रा" भी बहुत चर्चित हैं, जिनमें समसामयिक प्रश्नों को उजागर किया है। इनके अतिरिक्त भी कुमाऊँ में अनेक प्रतिभाएं नाट्य-लेखन से जुड़ रही है। यह अच्छा संकेत है।

एकांकी नाटक

साठोत्तरी एकांकीकारों में एक ओर क्रान्ति और समाज के प्रति विद्रोह तथा दलित एवं पीड़ित वर्ग की मन:स्थिति उभारी गई है, तो दूसरी ओर मनोविश्लेषण और अस्तित्ववाद जैसी पाश्चात्य विचारधाराओं का प्रभाव पाया जाता है। इसके साथ ही इनमें यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता का चित्रण मिलता है। भावना के स्थान पर बुद्धि का प्राधान्य दिखलाई पड़ता है। एकांकी नाटकों द्वारा कुछ हद तक जनता की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

एकांकीकारों में जयनाथ मलिन सर्वप्रमुख याद किये जाते हैं। उनके एकांकी हास्य-व्यंग्य प्रधान हैं। समाज में व्याप्त विकृतियों पर व्यंग्य रहता है तथा पात्र "टाईप" एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। प्रमुख एकांकी "लस्सी का गिलास" (१९६२) में सभ्य समाज की बिना बात झगड़ने की प्रवृत्ति। "बड़े आदमी" में खुशामद की आदत, "वर् निर्वाचन" में धन का लोभ, "मेल-मिलाप" में सहज

भाईचारे की भावना को अभिव्यक्ति मिली है। संवाद, भाषा, पात्रों को चित्रित करने में सक्षम हैं।

जगदीशचन्द्र माथुर भी एकांकी साहित्य में महत्त्वपूर्ण रचनाएँ दे चुके हैं। स्वाधीनता के बाद उनका महत्त्वपूर्ण एकांकी संग्रह "ओ मेरे सपने", "मेरे श्रेष्ठ एकांकी" में ऐसे एकांकी है, जिनमें स्वयं लेखक को आस्था है। "खिड़की की राहें" रेडियो नाटक है, जो घर से विवाह न करने के प्रयोजन से भागे संगीतकार का चरित्र प्रस्तुत करता है।

धर्मवीर भारती ने भी कुछ एकांकी नाटक लिखे हैं "नदी प्यासी थी" उनका प्रसिद्ध एकांकी संग्रह है। प्रभाकर माचवे के सभी एकांकी मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। साथ ही वर्तमान युग की राजनीति, सामाजिक, आर्थिक आदि के साथ कला और साहित्य को भी एकांकियों का विषय चुना है। उनके प्रमुख एकांकी "गली के मोड़ पर", "पागलखाने में", "पंचकन्या", "पर्वत श्री", "वधू चाहिए", "गाँधी की राह पर" आदि हैं। इनमें शिल्प की दृष्टि से बौद्धिकता पूर्ण एवं हास्य-व्यंग्य का पुट लिए हुए तर्कपूर्ण कथोपकथन हैं।

एकांकीकारों में प्रसिद्ध नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का शिल्प एवं वस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने नगरीय एवं ग्रामीण विषयों पर समान रूप से नाटक लिखे हैं। महत्त्वपूर्ण एकांकी संग्रह "पर्वत के पीछे", "ताजमहल के आँसू", "बहुरंगी" एवं "मेरे श्रेष्ठ एकांकी" प्रसिद्ध हैं। जीवन की असंगतियों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

सामयिक एकांकीकारों में विनोद रस्तोगी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने सामाजिक एवं ऐतिहासिक एकांकी नाटकों की रचना की है। प्रमुख ऐतिहासिक एकांकी नाटकों में "पुरूष का पाप", "पत्नी परित्याग", "साम्राज्य और सुहागरात" आदि प्रमुख है। सामाजिक एकांकी "पाप का पुण्य" में बेरोजगार शिक्षित युवक का पतन, "सोना और मिट्टी" में अमीरों का गरीबों को बेईमान देखना, "रथ के पहिये" में पति-पत्नी का संबंध, "पैसा पत्नी और बच्चों में नारी का प्रतिशोध और कामपूर्ति एवं "मुन्ना मर गया" में एक आदर्श कर्मचारी की विवशतावश रिश्वत लेने की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। सभी नाटक सफल एवं अभिनेय हैं।

उपर्युक्त नाटककारों के अतिरिक्त राजपूजन मलिक ने निम्न मध्यवर्गीय चरित्र और जीवन की समस्याओं को विषय बनाया है तथा गरीबी, बेकारी और असन्तोष तथा जीवन में जीने के लिए किये जाने वाला संघर्ष चित्रित है। "आंधी का दिया", "मिटती परछाइयां", "जमीन आसमान", "रोज की बात" प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त दयाप्रकाश सिन्हा कृत "हास्य एकांकी संग्रह" में हास्य एवं व्यंग्य की अच्छी अवतारणा हुई है। इनके अलावा नयी पीढ़ी में सत्येन्द्र शरत, श्रीमती लूथरा आदि ने अच्छे एकांकी नाटकों की रचना कर नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

चिरंजीत उच्च कोटि के रेडियो नाटक तथा रंगमंचीय नाटक के रचनाकार हैं। "दादी मां जागी" और "रंगारंग" उनके दो महत्त्वपूर्ण एकांकी हैं। देवराज दिनेश भी रेडियो एकांकी की रचना करते हैं। रामचन्द्र तिवारी मूलतः समस्याप्रधान एकांकीकार हैं, किन्तु रूपात्मक फैंटेसी में "भारत और महिमा", "कन्या का कोप" आदि प्रसिद्ध है। कहानीकार मार्कण्डेय का "पत्थर और परछाई" अच्छे एकांकी नाटकों का संग्रह है।

मोहन राकेश ने भी कुछ अच्छे एकांकी "रात बीतने तक" "अण्डे के छिलके" तथा अन्य एकांकी नाटक लिखे हैं। अमृतलाल नागर कृत "बात की बात", विष्णु प्रभाकर कृत" नये एकांकी आदि संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

हिन्दी रंगमंच की सृष्टि के लिए अनेक स्थानों पर अनेक कुशल कलाकारों द्वारा प्रयास हो रहा है। सन् १९८० तक आते-आते एकांकी नाटकों का प्रणयन कुछ शिथिल हो गया है। लेखकों की रूचि अनेकांकी नाटकों की ओर पुनः जाने लगी है। इसके साथ ही काफी रूपान्तर एवं अनुवाद भी हो रहे हैं। शैली, शिल्प और कथ्य की दृष्टि से भी उनमें बदलाव आ रहा है। इनमें नई दृष्टि समाविष्ट हो रही है।

कूर्मांचल के साहित्यकारों में एकांकी नाटककारों के रूप में कोई प्रतिभा अभी तक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने नहीं आयी, जबकि रेडियो रूपकों का प्रणयन कविवर सुमित्रानन्दन पंत से ही प्रारंभ हो जाता है।

आलोचना साहित्य

नाट्य-साहित्य की भांति आलोचना-साहित्य भी आलोच्य युग का दुर्बल अंग है और उसका कोई निश्चित रूप नहीं उभर पाया। सामयिक आलोचना का प्रादुर्भाव कवि और कलात्मक समग्रता का कलानुभव, समकालीनता बोध, साधारणीकरण, रसानुभूति, आधुनिकता, जीवन मूल्य, सृजन प्रक्रिया, श्लीलता-अश्लीलता, सौन्दर्यबोध, आनन्द-तत्त्व, भाषा-शिल्प, साहित्यकार और पाठक आदि प्रश्नों को लेकर हुआ। ये प्रश्न जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों और साहित्याभिरूचि में परिवर्तन उपस्थित होने के कारण उठ खड़े हुए थे। उसने नवलेखन के प्रति अपने दायित्त्व का निर्वाह करने की चेष्टा की है। रचनाशीलता के बदलाव से आलोचना के मानदण्डों और पद्धतियों में भी परिवर्तन हुआ। प्रयोगवादी कविता को लेकर और टी. एस. इलियट के विचारों से प्रभावित होकर "अज्ञेय" ने "प्रयोग", "साधारणीकरण" आदि से संबंधित अनेक प्रश्न उठाए और नई काव्य-रचना के अनुरूप नये काव्य सिद्धान्तों की ओर संकेत किया। इस प्रकार आलोचना के क्षेत्र में अनेक नवीन दृष्टिकोण सामने आये।

डॉ. देवराज ने अपनी आलोचनात्मक कृति "छायावाद का पतन" के प्रकाशन द्वारा आलोचना के क्षेत्र में नयी दिशा खोल दी। सन् १९५० के आसपास साहित्यिक रचनाशीलता का नवोन्मेष हुआ। "स्मात्र", "प्रतीक", "आलोचना", "कल्पना", "ज्ञानोदय", "निकष", "नई कविता" आदि पत्र-पत्रिकाओं में छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद पर विचाराभिव्यक्ति होने लगी। अनेक भाषा-शिल्प सम्बन्धी

समस्याओं पर विचार-विनिमय हुआ और रचनात्मक कृतियों की भूमिकाओं द्वारा सामयिक साहित्य को समझने-समझाने की चेष्टा होने लगी। आलोचना के रूप में परिवर्तन के साथ-साथ नई भाषा और नई शब्दावली भी सामने आई।

आलोचना साहित्य का मूल स्वर पहचानने की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है, चाहे मूल स्वर कविता का हो या गद्य अथवा नाटक आदि का। इसके साथ ही पुराने साहित्य का पुनर्मूल्यांकन भी होता रहता है। साहित्यिक मानदण्डों, सिद्धान्तों का कालानुसार व्याख्या एवं परीक्षण विश्लेषण होता है। कहीं शिल्पपक्ष, कहीं कथ्य एवं कहीं कलापक्ष तो कहीं भावपक्ष पर विचार किया जाता है। साहित्य के समान आलोचना में भी मूल्यमर्यादाओं की खोज, टकराव, भटकाव, उलझाव आदि पाया जाता है। आलोचना का मुख्य लक्ष्य है कृति का आन्तरिक सत्य उद्‌घाटित करना, अनुभूति की प्रामाणिकता एवं आधुनिक संवेदना के स्तर की खोज करना। आज का आलोचक अत्यधिक तर्कशील एवं बौद्धिक है। ''अज्ञेय'' ने प्रयोगवाद की व्याख्या अपनी भूमिकाओं और लेखों द्वारा की। उनका अनुगमन अन्य कवियों ने भी किया। बिहार के नकेनवादियों ने प्रपद्यवाद के सिद्धान्तों का निरूपण करने में तत्परता दिखाई। ''आत्मनेपद'' में अज्ञेय ने अहं, व्यक्ति-सत्य, व्यापक-सत्य, क्षणवाद आदि पर विचार व्यक्त किये। ''तारसप्तकों'' की भूमिकाओं के माध्यम से प्रयोगशीलता, साधारणीकरण, मूल्यमर्यादा, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि पर विस्तार से विचार व्यक्त किए हैं।

पिछले पच्चीस वर्षों में या तो प्राचीन एवं नवीन कृतियों का मूल्यांकन हुआ है या पुस्तक समीक्षाओं और स्वतंत्र ग्रन्थों के रूप में आलोचना को नई दिशा देने का प्रयत्न चल रहा है। सामयिक साहित्य पर अनेक शोध-परक ग्रन्थों का निर्माण भी हुआ है। सबसे अधिक विचार भाव एवं शिल्प के संबंध में हुआ है। नये साहित्य का मूल्यांकन एवं उसमें जीवन दृष्टि को पहचानने का प्रयास हो रहा है। इस काल की प्रमुख आलोचनात्मक कृतियां—दिनकर कृत ''शुद्ध कविता की खोज'' (१९६६), डॉ. देशराज कृत ''छायावाद का पतन'', ''रोमाण्टिक साहित्य-शास्त्र'', ''मुक्तिबोध कृत— ''नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (१९७१), ''नई कविता का आत्म संघर्ष एवं अन्य निबंध'', डॉ. इन्द्रनाथ मदान कृत 'कहानी और कहानी' आज का 'हिन्दी उपन्यास' 'गिरजा कुमार माथुर कृत, ''नई कविता सीमाएँ और संभावनाएं'', धर्मवीर भारती कृत ''मानव मूल्य और साहित्य'', डॉ. जगदीश गुप्त कृत ''नई कविता : स्वरूप और समस्याएं, डॉ. नामवर सिंह कृत ''कविता के नये प्रतिमान'' (१९६८), शम्भुनाथ सिंह ''प्रयोगवाद और नई कविता'', रामदरस मिश्र, सुरेश सिन्हा आदि की पुस्तकों, भूमिकाओं और लेखों में मिलेगी।

साठोत्तरी कूर्माचली आलोचकों में डॉ. देवेश ठाकुर का नाम प्रमुख है। आपकी ''नयी कविता के सात अध्याय'', ''नदी के द्वीप की रचनाप्रक्रिया'', ''हिन्दी कहानी का विकास'', ''साहित्य के मूल्य'', ''साहित्य की सामाजिक भूमिका'', ''मैला आंचल की रचना-प्रक्रिया'' अत्यन्त सशक्त रचनाएँ हैं। इसके अलावा आपके डी. लिट्. का शोध

प्रबंध आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ आदि निबंध विशेष चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसके बाद डॉ. डी. डी. शर्मा ने भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। डॉ. ए. डी. पाण्डे ने समसामयिक साहित्य पर बड़ी सशक्त रचनाएँ लिखी हैं। उनके आधुनिकता और आलोचना पर सोवियत-लैण्ड (१९८७) नेहरू एवार्ड दिया जा चुका है। डॉ. रमेशचन्द्र शाह का छायावाद की प्रासंगिकता, जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। डॉ. लक्ष्मण सिंह बटरोही कृत "कहानी : रचना-प्रक्रिया और स्वरूप" महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं।

कविता

"साठोत्तरी हिन्दी कविता से आशय युवा कवियों द्वारा रचित उस खास किस्म की परम्परागत युक्त हिन्दी कविता से है जो सन् ६० के बाद लिखी गई है जो वस्तु और शिल्प की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती काव्यान्दोलनों छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता से सर्वथा भिन्न है।[१] डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में— "सन् ६० के बाद की कविता उस कविता के बाद की कविता है जो ५० से ६० के बीच सूक्ष्म मानसिक एवं रागात्मक स्थितियों के उद्देश्य से लिखी जा रही थी।[२] डॉ. गौतम के विचार में सन् ६० के पहले कविता में समकालीन परिवेश के प्रति तटस्थता और जीवन के प्रति एक ठंडापन सा मिलता है जबकि इसके विपरीत युवा कवियों द्वारा लिखी गई कविताओं के तेवर गुस्सैल हैं। "इनकी बहुत सी रचनाओं में आधुनिक मध्यवर्गीय शहरी संस्कृति की संवेदना, समकालीन विसंगतिबोध, वर्तमान विसंगतियों पर व्यंग्य, वैज्ञानिक चेतना, मूल्य और उनके साथ यंत्रणामयी विवशता, अस्तित्त्व संकट की अनुभूति, संशय, मृत्युबोध, आत्महत्या, आत्मनिषेध, भय, तनाव, अकेलेपन और विक्षोभ के स्वर हैं।[३] केदारसिंह ने अपने निबंध में संकेत किया था कि सन् ६० के बाद की कविता का विकास दो दिशाओं में हुआ है—"कविता से अकविता की ओर एवं शुद्ध कविता से एक खास किस्म की प्रतिबद्ध कविता की ओर।[४]

हिन्दी कविता में सन् १९५० के आसपास जो नया स्वर व्यक्त हुआ, उस पर मार्क्स एवं फ्रायड का प्रभाव था और संक्रमणकालीन इतिहास की छाप थी। सन् १९४० से ५३ तक की प्रक्रिया में परिवेश के प्रति जागरूकता, सामाजिक सचेतना, इतिहास बोध, युद्धजनित स्थिति में मानवीय संचेतना नये मूल्यों की टकराहट आदि बातें प्रमुख थी। सन् १९५० में प्रयोगवादी कवि अपनी कविताओं को नई कविता के नाम से संज्ञा देने लगे। संभवत: पाश्चात्य के "न्यू पोयट्री" के समानान्तर यह नाम दिया गया। सन् ५४ में नयी कविता के प्रकाशन से यह बात स्पष्ट सामने आ गई। अज्ञेय का प्रयोगवाद भिन्न माना जाने लगा और वे स्वयं नये कवियों पर व्यंग्य कसने लगे—

---

१. साठोत्तर हिन्दी कविता की वस्तु चेतना, डॉ. बादामसिंह रावत, पृ. १२
२. नई कविता का परिप्रेक्ष्य, डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, पृ. १२१
३. चिन्तन, डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम, पृ. १२१
४. धर्मयुग जुलाई १९६५ (लेख सन् ६० के बाद की हिन्दी कविता)

आ, तू आ।
हां आ,
मेरे पैरों की छाप-छाप पर रखता पैर,
मिटाता उसे,
मुझे मुँह भर गाली देता—
आ, तू आ।
जयी युग-नेता, पथ-प्रवर्तक,
आ, तू आ,
ओ गतानुगामी।[१]

नयी कविता में अनुभूति का बड़ा जोर था, ये कवि अज्ञेय को छोड़कर भिन्न राहों में निकल पड़े। सन् १९५८ में नरेश मेहता और श्रीकान्त वर्मा के संपादकत्व में ''कृति'' से ''नवलेखन'' आन्दोलन चल पड़ा। सन् १९६१ में नयी कविता का पतन प्रारम्भ हो गया और सन् ६७ के बाद उसकी मृत्यु ही हो गई। यह वर्ग विभाजन ''वाद'' का झगड़ा वास्तव में असंगत जान पड़ता है। सामयिक कविता के समग्र विकास को दृष्टि में रखना चाहिए। इन वादों के बीच विभाजन रेखा खींचना संभव नहीं, जबकि स्वयं कवि भी पूर्ण निर्णय की स्थिति में न हो, कभी वह प्रयोगवादी, कभी नयी कविता तो कभी नवलेखन और कभी प्रगतिवादी बन जाता है।

सन् १९६० के बाद रोमांस या रंगीनी के स्थान पर व्यंग्य और विडम्बना की काव्याभिव्यक्ति का माध्यम रही है कविता। वैज्ञानिक विवेकशीलता, वस्तुसत्ता, अनुभूति की अतिरंजना और आरोपित सहानुभूति पर उन्होंने काव्य का मूल तत्त्व ही खो दिया। अब नई कविता रूढ़ हो गई मानी जाने लगी। उनकी शब्दावली, उपमान, प्रतीक, विम्बशैली आदि को यथार्थ से अलग, परम्परा से अलग माना जाने लगा। बौद्धिक अनुभूति भी आरोपित लगने लगी। यह आन्दोलन युग की मांग को पूरा करने मे असफल माना गया। फलतः अज्ञेय के ''आंगन के पार द्वार'' के बाद इसका युग समाप्त हो गया।

इसके बाद नवगीत एवं अ-कविता का जन्म हुआ। अ-कविता कविता नहीं संरचना मानी जाती है। यह अर्थ-निरपेक्ष और मूल्य-निरपेक्ष कविता मानी जाती है। इसीलिए साठोत्तरी कविता में आक्रोश, विरोध, विद्रोह और क्षोभ की प्रधानता है। राजकमल चौधरी का ''मुक्ति-प्रसंग'' उल्लेखनीय कृति है। इसी तरह श्री श्रीकान्त वर्मा एवं कैलाश बाजपेयी की रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। आधुनिक कविता का नाम सामयिक काव्यप्रवृत्ति कहना ही आलोचकों को अच्छा लगता है। आज का आलोचक व्यर्थ में किसी वाद से न जुड़कर स्वयं ही सबका साक्षात्कार करना चाहता है—

''मैंने कब कहा कि मेरा धर्म है
मर्म सहला कर सुला देना,

यदि दुर्बलता दर्प में बदल जाए।
व्यथा अन्तर्दृष्टि दे,
खण्डित आत्माएं
संचित कर सकें शक्ति की समिधाएं
जो जलकर अग्नि को भी गन्ध ज्वार बना दे,
तो मैंने अपना कवि धर्म पूरा किया.—''[१]

अपने बनाये मार्ग से कवि को अटूट श्रद्धा और विश्वास है। नवीन मानव मूल्यों की उसे तलाश है। मानव चेतना के नये पार्श्वों का अन्वेषण इसकी विशेषता है। विघटन-बिखराव की पीड़ा, नैतिक मान्यताओं की विकृति और मानव मूल्यों के बीच संवेदनशील कविहृदय की आवाज ही सामयिक कविता है।

भवानीप्रसाद मिश्र की ''चकित है दुःख'', ''अँधेरी कविताएं'' ''बुनी हुई रस्सी'', ''व्यक्तिगत'' आदि कविताओं में मानवतावादी स्वर मुखर हुआ है। नई कविता का कवि आस्थावान है। केदारनाथ सिंह के शब्दों में—

''कल उगूंगा में
आज तो कुछ भी नहीं हूँ...
एक नन्हा बीज में अज्ञात नवयुग का
समूचा विश्व होना चाहता हूँ...[२]

जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में भी वह हारा नहीं है, भले ही उसके विश्वास की जड़ें हिल गई हों, किन्तु जीवन के प्रति आस्था समाप्त नहीं हुई। सामयिक साहित्य मानवतावादी दृष्टिकोण का पथपोषक है। प्रयोगवाद भी इसी उद्देश्य को लेकर चला था किन्तु वह स्वयं अपने ही जाल में भटककर रह गया। प्रयोगवादोत्तर साहित्य में जनजीवन को गहराई से देखा और परखा गया। इसके साथ ही उसमें युद्ध की भयंकरता, उसका विवाद, अंधविश्वास, नवीन मानवमूल्यों की तलाश एवं नई दृष्टि और नये वस्तु एवं शिल्प का सृजन किया है। भाषा, शब्दचयन, मुहावरों, उपमानों, प्रतीकों, बिम्बों, छन्दयोजना, लय अलंकार सब में नवीनता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने राजनीतिक और शासन-व्यवस्था की परतें उघारी हैं। बेईमानी, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद,सामाजिक चोरी आदि का उसने कटूक्तियों और व्यंग्य प्रयोग द्वारा पर्दाफास किया है। भ्रष्टाचारी लोगों को नंगा करके खड़ा कर देना आज के कवि का ही कार्य है।

कुण्ठा और संत्रास में जीते हुए भी आज के कवि का स्वर सशक्त है। उसकी दृष्टि सामयिक बोध की यथार्थता और युग-बोध की ओर है। वह वर्तमान पर जीता है क्योंकि उसकी मान्यता है कि सुन्दर वर्तमान में ही अच्छे भविष्य का महल खड़ा होगा

---

१. काठ की घंटियाँ, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।
२. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. १४४

और आज का अच्छा भविष्य कल का सुन्दर अतीत बन जायेगा। इसलिए वह वर्तमान में जीता है। इसलिए वह क्षण के प्रति आस्थावान है।

शिल्प की दृष्टि से भी इन कवियों ने कथ्य के अनुरूप अभिव्यक्ति के साधन भी जुटाये। नई भाषा, नये विम्बों एवं प्रतीकों, नये प्रतिमानों, नये शब्दों और छन्दों की अवतारणा हुई। छन्द, लय और तुक के माध्यम से भी ''नई कविता'' ने नवीनता प्रस्तुत की है। सहज अभिव्यक्ति की चाहना होने के कारण वह छन्द की अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करती है। अत: छन्दमुक्त कविता की रचना हो रही है। कविता गद्यात्मक होती जा रही है। गेयता समाप्त हो रही है। छन्द की क्षतिपूर्ति इसमें अर्थ की लय द्वारा होना आज का कवि मानता है। सामयिक कवियों में गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, भारत भूषण अग्रवाल, कैलाश बाजपेयी आदि उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त कीर्ति चौधरी, केदारनाथ अग्रवाल, दुष्यन्त कुमार, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि कवि भी सामयिक कविता को समृद्ध करते रहते हैं। आधुनिकतम कविता १९७० से १९८१ तक की कविता यथार्थ की कविता है। इसका नामकरण ''समकालीन कविता'' के नाम से हो चुका है। इसमें संत्रास, यंत्रणा और कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति का वास्तविक चित्रण हुआ है। विसंगतिपूर्ण यथार्थ, सपाटबयानी, यथार्थता, तनाव, पूँजीवादी व्यवस्था पर आघात, प्रतिशोध एवं शिल्पगत नवीनता इसकी विशेषता है। धूमिल इस आन्दोलन के मसीहा माने जाते हैं। वैसे राजकमल चौधरी, लीलाधर जगूड़ी, अशोक बाजपेयी, वेणुगोपाल, जगदीश चतुर्वेदी, मुक्तिबोध आदि भी इस आन्दोलन से संबद्ध हैं। धूमिल की भाषा में कितनी सपाट बयानी है—

''दर असल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।''[१]

कूर्माचल में हिन्दी काव्य परम्परा के प्रमुख कवि पंत हैं। आलोच्य काल में अपनी प्राचीन परम्परा में काव्य प्रणयन के साथ नयी कविता की ओर भी अग्रसर होते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। ''लोकायतन'' महाकाव्य एवं ''सत्यकाम'' में मानवतावादी स्वर लिए हुए, ''पतझर : एक भावक्रान्ति'' में विद्रोही स्वर एवं शंखध्वनि में विसंगतियों के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश का स्वर लिए समकालीन साहित्य में छाये रहे। इस युग में महिला गीतकारों में श्रीमती तारा पाण्डेय प्रमुख है। इसके बाद समकालीन साहित्य में विनोदचन्द्र पाण्डेय, जीवनप्रकाश जोशी, हिमांशु जोशी, डॉ. मधुरादत्त पाण्डेय आदि प्रमुख रूप से चर्चित कवि हैं।

❖

१. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ. ११५

चतुर्थ अध्याय

कूर्माचल के साठोत्तरी उपन्यासकार तथा उनकी मानक कृतियाँ

इलाचन्द्र जोशी

"देवात्मा हिमालय ने बहुत कुछ दिया है, बड़ी प्रेरणा दी हर कवि को, हर लेखक को, परन्तु उसने भगीरथ भी अपने दिये हैं और भगीरथों ने उसे हर मोड़ पर एक नयी दिशा दी। जोशी जी ऐसे ही भगीरथ हैं उनको देखकर मुझे निरन्तर हिम-कमल याद आता है, जो बर्फ पर खिलता है।"[१]

१३ दिसम्बर, १९०२ में अल्मोड़ा में जन्मे जोशी जी सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. हेमचन्द्र जोशी जी के कनिष्ठ भ्राता हैं। आप आरंभ से ही अध्ययनशील प्रवृत्ति तथा तीव्र स्मरणशक्ति सम्पन्न थे। जोशी जी ने स्कूली शिक्षा के साथ ही घर पर संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी व बंगला का विशद अध्ययन किया, साथ ही अपने ज्येष्ठ भ्राता से फ्रेंच व जर्मन सीखी। सातवीं कक्षा में ही उन्होंने एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली, जिसमें सुमित्रानन्दन पंत, गोविन्दवल्लभ पंत एवं हेमचन्द्र जोशी जी लिखते थे। सोलह वर्ष की अवस्था में शरच्चन्द्र से भेंट की और लेखन की दिशा खोजी। २६ जून, १९७९ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्त्वावधान में आपको साहित्य-वाचस्पति की गरिमामय तथा सर्वोच्च सम्मानित उपाधि से विभूषित किया गया। इस अवसर पर— "इस सुदीर्घ साहित्ययात्रा की समर्चना के उपलक्ष्य में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी जगत् की सर्वोच्च उपाधि साहित्य-वाचस्पति में अपने तेजोद्दीप्त, यशोमण्डित मूर्धन्य साहित्यकार श्री जोशी जी को विभूषित करके स्वयं को गौरव का अनुभव करता है"।[२] अध्यक्षीय भाषण में सुश्री महादेवी वर्मा के विचार—"सरस्वती के एक वरद पुत्र का सम्मान स्वयं सरस्वती का सम्मान है और आज हम उसी मनीषी का सम्मान कर रहे हैं। वास्तव में उपासक का वर्चस्व ही उसका सम्मान है।"[३]

इलाचन्द्र जोशी मुख्य रूप से उपन्यासकार हैं। कथा-साहित्य में उनका प्रथम स्थान है। जोशी जी ने कविता भी लिखी है। "विजनवती" उनका एकमात्र कविता संग्रह है। यह समय छायावाद के यौवन का काल था, अतः इनकी रचनाओं में भी छायावादी प्रभाव परिलक्षित होता है। स्वयं जोशी जी के शब्दों में—"मैं अब अपने

---

१. राष्ट्रभाषा सन्देश, १५ जुलाई १९७९, अध्यक्षीय भाषण—महादेवी वर्मा

२. प्रशस्ति-पत्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आदाता—श्री जगदीश स्वरूप

३. अध्यक्षीय भाषण—महादेवी वर्मा, विशेष उपाधि प्रदान समारोह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २६ जून, १९७९

सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि मेरी अधिकांश कविताओं में भी कल्पना के इन्द्रजाल की झूठी चमक-दमक, निष्प्राण, आत्मविलास तथा नि:शक्त अहम्मन्यता का पोलापन विद्यमान है, जो अन्य छायावादी कवियों की कविता में।''[१]

इलाचन्द्र जोशी को अमरता देनेवाला और हिन्दी साहित्य में एक अलग स्थान बनाने का श्रेय है उनकी उपन्यास लेखन शैली में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का मूल केन्द्र चरित्र होता है और कथानक के प्रति लेखक का दृष्टिकोण विवरणात्मक नहीं रह जाता। पात्र ही साध्य है कथानक आदि मात्र साधन। मनोविश्लेषणात्मक भूमि को आधार बनाकर चलने वाले उपन्यासकारों में जोशी का बहुत ऊँचा स्थान है। उनके प्रमुख उपन्यास निम्न हैं—

(क) साठोत्तरपूर्व के उपन्यास (सन् १९६० से पहले लिखे गये उपन्यास)—

(१) 'लज्जा' (घृणामयी) यह उपन्यास जोशी जी ने सन् १९२९ में 'घृणामयी' नाम से लिखा था, जिसको किंचित् संशोधन के रूप में 'लज्जा' नाम से सन् १९४७ में पुन: प्रकाशित किया। हिन्दी कथा-साहित्य में मनोविश्लेषण प्रधान यह प्रथम उपन्यास है। (२) सन्यासी, (३) प्रेत और छाया, (४) पर्दे की रानी, (५) निर्वासित, (६) मुक्तिपथ, (७) सुबह के भूले, (८) जिप्सी, (९) जहाज का पंछी।

(खं) साठोत्तर के उपन्यास—

(१) ऋतुचक्र, (२) कवि की प्रेयसी, (३) त्याग का भोग, (४) भूत का भविष्य।

१. ऋतुचक्र (१९६९)

'ऋतुचक्र' उपन्यास कुमाऊँ की पर्वतीय पृष्ठभूमि में लिखा गया है। उपन्यास के आरम्भ में पर्वत श्रेणियों के बीच पक्षियों तथा दो प्रणयी युगलों की टकराती गूंजती आवाजों को सुनाते हुए दादा जी को दिखाया गया है। दादाजी जीवन की आपाधापी से ऊबकर शान्ति की खोज में पर्वतीय अँचल के एक होटल में रहने लगते हैं। अशान्त मन को पर्वतों के बीच की अनुगूंज, भावभीनी आवाजें मन्त्रमुग्ध कर देती हैं। उसी होटल में एक युगल दम्पत्ति नकुलेश तथा चित्रा भी रहने लगते हैं। उन दोनों का दादा से परिचय होता है। दादा उन दोनों के मध्य अस्तित्ववादी तनाव प्रथम परिचय में ही नजरअन्दाज कर जाते हैं। इस बीच दादा की एक छात्रा प्रतिभा भी वहाँ आ जाती हैं। वह भी एकान्त जीवन जीना चाहती है।

दादा एवं प्रतिभा नकुलेश एवं चित्रा के विचारों में समन्वय लाने का प्रयास करते हैं किन्तु नकुलेश का अहंवादी स्वभाव जो स्त्री को किंचित् भी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता, इस सामन्जस्य को नहीं होने देता। चित्रा मणिकलाल एवं गिडवानी से बोलचाल रखती है इसी द्वेष से नकुलेश दिल्ली की ओर पलायन करता है।

१. विवेचना, पृ. ५

मणिकलाल को भी यही अहं खा जाता है। वह कामाग्नि में जलता गिडवानी की हत्या कर देता है। दूसरे दिन चित्रा भी आत्महत्या कर लेती है। मणिकलाल आत्मसमर्पण करता है। चित्रा का एक पत्र इस सारे रहस्य को स्पष्ट करता है।

दादा एवं प्रतिमा एक दूसरे की तरफ झुकते जाते हैं दोनो रूमानी चेतनाओं में खो जाते हैं। इस बीच लीला का आगमन होता है। लीला मणिकलाल के जाल में फँसकर गर्भवती हो चुकी है किन्तु उसके कुकृत्य हत्याकाण्ड से उससे घृणा करती है। दादा उसे समझाते हैं, लीला को दादा जी की बातों का बड़ा असर होता है—'भीतर के भी भीतर की आँखें पूरी तरह खोलकर देखो, तब तुम पाओगी कि मनुष्य का वर्तमान जीवन भूत और भविष्य से तनिक भी कटा हुआ नहीं है। उस चिरविकासोन्मुख और चिरगतिशील जीवन के आगे पीछे अनंत रंग-बिरंगी कड़िया जुड़ी हुई है और एक भी कड़ी निष्प्रयोजन और निरर्थक नहीं है।''[१] प्रतिमा का अवकाश समाप्त हो जाता है, वह मेरठ चली जाती है। होटल में रहते हैं केवल दादा। दादा अपने मित्र होटल मालिक रामबाबू से अपनी जीवनगाथा की उपमा ऋतुचक्र से देते हुए (कहते हैं) बातें करते हैं।

'ऋतुचक्र' उपन्यास का कथानायक वैयक्तिक सम-सामयिक, शाश्वत समस्याओं तथा युगीन चेतना का प्रतीक है। ''इसमें एक ओर छोटी-छोटी वैयक्तिक समस्याओं को लिया गया है और दूसरी ओर शाश्वत् समस्याओं को लेकर नई पीढ़ी और प्राचीन पीढ़ी में किस प्रकार तनाव, संघर्ष और अन्तर्विरोध विद्यमान है।''[२] 'ऋतुचक्र' उपन्यास समसामयिक घटनाओं पर आधारित है। आधुनिक युग में नई पीढ़ी का असन्तोष, कुण्ठा एक परिवर्तन चाहता है। ईर्ष्यालु और शंकालु प्रवृत्ति से जीवन में विकृतियां उत्पन्न हो गई हैं।

'परमाणु विस्फोट केवल भौतिक जगत् में ही नहीं हुआ है। मनुष्य की सामूहिक अवचेतना का केन्द्रीय परमाणु भी विघटित हो चुका है और उनके सभी संयोजकत्व चारों ओर छितराकर बिखर चुके हैं। चारों ओर अविचार और अव्यवस्था का बोलबाला है। सब कुछ उलट-पुलट रहा है। कोई भी मूल्य स्थिर और स्पष्ट नहीं हो पाता।[३] इस टूटन, बिखराव तथा समस्याओं का कारण लेखक अस्तित्त्ववाद को भी मानता है। उपन्यास का मूल स्वर रोमाण्टिक चेतना का पुनर्जागरण है। ''जो काम कामायनी और लोकायतन मिलकर नहीं कर सके वह अकेले 'ऋतुचक्र' द्वारा संभव हुआ है। अपने युग की जटिल समस्याओं का जैसा समाधान ऋतुचक्र में पाया जाता है ऐसा न किसी आधुनिक नाटक या उपन्यास में है और न किसी महाकाव्य में।''[४]

---

१. ऋतुचक्र, पृ. ४९२
२. इलाचन्द्र जोशी के कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. श्रीमती मुकुल पंत, पृ. १०१
३. ऋतुचक्र, पृ. १७२
४. इलाचन्द्र जोशी के कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. श्रीमती मुकुल पंत (शोध-प्रबन्ध)

कवि की प्रेयसी

'कवि की प्रेयसी' के सन्दर्भ में स्वयं लेखक का वक्तव्य—'कवि की प्रेयसी' न तो ऐतिहासिक चित्र है न फैन्टेसी। यह मेरे पूर्व जन्म से परिचित एक कवि मित्र के जीवन की सीधी-सादी कहानी है, जिसे सीधी-सादी भाषा में ही मैंने लिखना चाहा है।[१]

'यह उपन्यास उन कथानकों से सर्वथा भिन्न है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय मिलता है। 'कवि की प्रेयसी' इस वर्ग का प्रतिनिधि उपन्यास है।'[२] सौमित्रिक के पितामह उज्जयिनी के विख्यात श्रेष्ठी समुद्र यात्रा से लौटने पर एक यवन कन्या को अपने साथ ले आते हैं। सौमित्रिक ने उसे अपनी मां स्वरूप माना और वह उसके प्रति श्रद्धावान हो उठी। वह भी सौमित्रिक को अधिक स्नेह करने लगी। आचार्य जीवदत्त के एक साथी से शिक्षा प्राप्त कर सौमित्रिक देशाटन के लिए निकलता है। इस यात्रा में सौमित्रिक का परिचय एक युवती शिरीषा से होता है। वह उसकी मौसेरी बहन मदनसेना के पास जाता है। दोनों बहनें सौमित्रिक से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। शिरीषा की इच्छानुसार, जो एक कुशल अभिनेत्री बनना चाहती है, सौमित्रिक उज्जयिनी भाग जाता है। उज्जयिनी में अपने मित्र प्रचेत व उसकी बहन रत्नप्रिया की सहायता से शिरीषा नाट्य अभिनय में प्रवीण हो जाती है। ''चीरहरण'' नाटक की नायिका के रूप में शिरीषा अभिनय करती है। इस अभिनय को देखने उसकी मां भी आती है। मां की सहायता से दोनों परिणय बन्धन में बँध जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का मूल आधार प्रेम है। इसी के आधार पर लेखक ने तत्कालीन, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दशा का चित्रण किया है। तत्कालीन नारियों की दशा का भी चित्रण आलोच्य उपन्यास में मिलता है। उपन्यास के नारी पात्रों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में नारियों को उचित स्थान नहीं मिलता था। पात्रों के मनोजगत् की अन्तर्प्रवृत्तियों एवं वाह्य जगत् के विभिन्न चित्रणों का सुन्दर समन्वय उपन्यास को रोचक बनाने के साथ ही स्थान, पात्र, घटनाओं आदि के बनते हुए सजीव चित्र पाठक को प्रेम में आप्लावित करते रहते हैं। 'वास्तव में उपन्यास जीवन का चित्रण है तो प्रेम जीवन का आधार है। प्रेम का मार्ग ही व्यक्ति को जीवन के समीप ले जाता है। प्रेमानुभूति के बिना जीवन मशीन है। इस प्रेम के अनेक रूप जोशी जी के उपन्यासों में मिलते हैं।[३]

प्रेम की वास्तविक गहराई पाठक को एक आनन्द की अनुभूति कराता है। जोशी जी में मौलिक प्रतिभा है। घटना वैविध्य है। पाठक के साथ आत्मीयता स्थापित करने की शक्ति है। भाव, भाषा, विचार आदि सभी दृष्टियों से वे अनुपम है। इतना अवश्य है कि एक निम्न मानसिक स्तर का व्यक्ति उसमें आनन्द नहीं पा सकता, गहराई की अपेक्षा रखने वाला पाठक उसमें विशेष आनन्द और तृप्ति प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

---

१. कवि की प्रेयसी, प्रस्तावना, पृ. १३

२. इलाचन्द्र जोशी के कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन, (शोध-प्रबन्ध), पृ. १६०

३. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन, शान्ति भारद्वाज, पृ. १६६

त्याग का भोग

यह आत्म कथ्यात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। लेखक को मसूरी के एक होटल में नृपेन्द्र रंजन मिलते हैं। नृपेन्द्र रंजन प्रतिदिन निरर्थक रूप से चाकू, कैंची आदि एक जिप्सी लड़की से खरीदते हैं और खरीदने का कारण भी स्वयं लेखक को बताते हैं—

जिस लड़की से समान खरीदता हूँ उसी स्थान पर एक लड़की मनिया विशाती की दुकान खोलती थी। उसके व्यवहार से प्रभावित होकर मैं प्रतिदिन कुछ न कुछ समान खरीद लाता था किन्तु एक दिन उसकी दुकान का सारा सामान खरीदवा कर मैंने उसे होटल में रखवा दिया। तभी से अनाथ मनियां मेरे साथ रहने लगी। कुछ समय बाद होटल मैनेजर के दुराग्रह पर होटल छोड़ना पड़ा। दोनों रालन्सन के बंगले में रहने लगे। रालन्सन की पुत्री सिल्विया के संसर्ग से मनिया ने ईसाई धर्म अपना लिया जबकि वह तिब्बती बाप और पहाड़िन की पुत्री थी। मनिया के साथ नृपेन्द्र भी ईसाई बना। अन्ततः फादर ने दोनों का विवाह कर दिया। नृपेन्द्र को पता चलता है कि फादर सिल्विया से प्रेम करते हैं। नृपेन्द्र जाड़ों में कलकत्ता मनिया के साथ जाता है। वहाँ उसे अपना पुराना सहपाठी वीरेन्द्र मिलता है। वह उसी की कोठी में रहने लगता है। वीरेन्द्र सामन्त वर्ग का होते हुए भी उदार विचारों वाला है—"सामन्त वर्ग में मेरा जन्म हुआ है यह ठीक है पर मेरे भीतर के संस्कार जैसे जन्म से ही है। ऐश्वर्य के बीच में पलने पर भी मैंने कभी ऐश्वर्य का उपभोग विलासिता की दृष्टि से नहीं किया। अपनी सांसारिक स्थिति को और सांस्कृतिक सत्ता को कभी मैंने जनसाधारण की सत्ता से अलग महसूस किया। यह ठीक है कि मेरे पास ऐश्वर्य भोग के सारे उपकरण विद्यमान है और बाहरी रूप से मैं उनका उपयोग भी किसी हद तक करता ही हूँ पर यह उपयोग मेरे भीतरी व्यक्तित्व को कभी छू तक नहीं पाता। किसी भी क्षण मैं अपने उस बाहरी मुखड़े को उतार कर फेंक सकता हूँ, बिना लेशमात्र के भेद या ग्लानि के।[१]

वीरेन्द्र दिन भर बाहर रहने लगा। मनियां पुस्तकों में खोई रहती थी। अतः नृपेन्द्र भाभी शोभना के साथ घूमने जाता। एक दिन अचानक घूमते मनियां को एक तेजाब भरा बल्ब लगा। उससे उसका चेहरा भी बिगड़ गया। उसके मन में शोभना व नृपेन्द्र के संबंधों से विकृति उत्पन्न हो गई। जिन विद्रोहियों के कारण मनियां को चोट आयी। वे दोनों युवक मनियां से क्षमा मांगने आये। उनसे वह प्रभावित होती है। इसी बीच उसका पुत्र पैदा होता है और उसके दिवंगत हो जाने से मनियां का जीवन बदल जाता है। वह कन्हाईलाल द्वारा स्थापित संस्था जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र की स्थाई सदस्या बन गई और एक दिन वह नृपेन्द्र से गृहकलह कर चली गई। इसी बीच दंगे में वीरेन्द्र का देहावसान हो जाता है।

कलकत्ता में अकाल पड़ गया। लोग भूख से मरने लगे, किन्तु इधर शोभना

१. त्याग का भोग, पृ. २७३-७४

अपनी ऐशो-आराम में व्यस्त थी। नृपेन्द्र अकाल पीड़ितों की सहायता में लगा रहता। शशांक बाबू तथा मणिकलाल की संस्था जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र की सहायता से नृपेन्द्र अकाल पीड़ितों की सेवा करता। मंजुला ने नृपेन्द्र को आकृष्ट कर सारी सम्पत्ति संस्था के नाम करवा दी। उसे पता चला कि कुछ दिन कन्हाई बाबू के आश्रम में रहकर मनियां मंसूरी चली गई। फादर सिल्विया से शादी कर अमेरिका चले गये। उनके साथ वह भी अमेरिका चली गई। प्लास्टिक सर्जरी से उसका रूप ठीक हो जाता है। वह वापस आकर कन्हाई बाबू की संस्था में प्रमुख सदस्या के रूप में मनिया ही मंजुला के नाम से कार्य करने लगी। इस विवरण को सुनकर नृपेन्द्र के मन में प्रतिक्रिया हुई और वे सामान्य जीवन बिताने के उद्देश्य से देहरादून में जमीन खरीदकर वहाँ एक सहकारी कार्य की स्थापना का निश्चय करता है, जो मनिया के विचारों के अनुकूल था।

"त्याग का भोग" एक वृहद उपन्यास है, जो विश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया है। कहीं-कहीं पर विश्लेषणात्मक शैली से रोचकता में बाधा होती है। विषमताओं से व्यथित व्यक्ति को मानवता का सन्देश देने के लिए विभिन्न वादों का चित्रण करता हुआ समाधान प्रस्तुत करता है। पात्र सीमित हैं। नृपेन्द्र दुर्बल स्वभाव का धनी व्यक्ति है। उपन्यास के अन्त में वह व्यापक मानवतावादी विचारों से परिपूर्ण व्यक्ति नजर आता है। वह क्रान्ति, त्याग से परिपूर्ण व्यक्तित्व का दृष्टिगत होता है। वह वैभवशाली होने के साथ ही आत्मकेन्द्रित नहीं रहता है। जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र का मुख्य कार्यकर्त्ता है। मनिया निम्न वर्ग की प्रतिनिधि है, जो नृपेन्द्र से विवाह करने के बाद धनी होने पर भी अपनी पूर्व स्वतंत्रता के प्रति मोहग्रस्त है।

कन्हाईलाल की संस्था में रहकर सेवा करना इसका पुष्ट प्रमाण है। कन्हाईलाल उपन्यास का सबल पात्र है, जो धनवानों को निर्बलों की सहायतार्थ सेवा के लिए प्रेरित करता है। शोभना विलासिता के पंक में जकड़ी निर्बल पात्रा है। "त्याग का भोग" उपन्यास वृहत्तर भारतीय मानवजीवन में व्याप्त विषमता पर आधारित है। आधुनिक जीवन में व्याप्त वर्गभेद की खाई को समाप्त करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

'जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र' जो लेखक की कल्पना का साकार रूप है, उसका उद्देश्य यह है कि—'दूसरी संस्कृतियां शताब्दियों से मानवीय सभ्यता के विकेन्द्रीकरण की ओर प्रयत्नशील रही है। केवल जन-संस्कृति ही ऐसी है, जो जीवन से सीधा संबंध रखने के कारण आज भी बिखरी हुई मानवता को एक सूत्र में बांधकर एक केन्द्र में बटोर सकती है। सारे संसार में जन-संस्कृति का मूल रूप एक ही है। केवल थोड़ा बहुत अन्तर बाहरी रूपों में पाया जाता है। उस बाहरी विभिन्नता को मिटाकर विश्व में जन-संस्कृति को एक समन्वयात्मक रूप देने और साथ ही भारतीय जन-जीवन में एक नई सांस्कृतिक चेतना जमाने के उद्देश्य से जन-संस्कृति समन्वय केन्द्र की स्थापना की गई है।'[१]

---

१. त्याग का भोग, पृ. ५६३

'त्याग का भोग' उपन्यास साम्यवादी चिन्तन से प्रभावित है। इसमें समाज के सर्वतोमुखी उत्थान की व्यग्रता है। शोषित वर्ग के उत्थान के लिए प्रबल आवाज उठाई गई है। प्रत्येक समस्या का समाधान विभिन्न वादों, मार्क्सवाद, कम्युनिस्ट, गाँधीवाद आदि विशद विश्लेषण के साथ किया गया है।

भूत का भविष्य

कवि राकेश एवं नन्दा एक दूसरे से प्रेम करते हैं अन्ततः प्रेम में आबद्ध होकर मथुरा से प्रयाग भाग जाते हैं। प्रयाग में बड़ी कठिनता से उन्हें एक भूतहा मकान रहने को मिलता है। इस मकान में कई किरायेदार भूत के भय से भाग गये थे। किन्तु नन्दा ने वह भूत देखा तो साहस बटोरकर उसे पास बुलाया किन्तु वह भूत न होकर राकेश का सहपाठी कैलाश निकला, जो अब भूतनाथ के नाम से जाना जाता था। राकेश एवं नन्दा के आर्थिक संकट से द्रवित होकर भूतनाथ उनको दो हजार रूपये देकर आर्थिक सहायता करता है। राकेश उस मकान से मुक्ति चाहता है किन्तु उन्हें दूसरा मकान मिल नहीं पाता। भूतनाथ उसे अपनी कहानी बताता है—"वह हरिजन परिवार में जन्मा डाकुओं के सरदार के हाथ जा पहुँचा। उसने एक भंगिन से विवाह किया और जीविकोपार्जन के लिए चमड़े का कार्य करने लगा। अपनी कथाव्यथा के बीच ही उसने हरिजनों पर हो रहे शोषण, अत्याचार का भी वर्णन बड़ी मार्मिकता से कर दिया।" कथानक के अन्त में भूतनाथ को पकड़वाने के लिए राकेश चार पुलिस कांस्टेबलों को बुलवाता है किन्तु भूतनाथ गायब हो जाता है। उसके एक माह बाद पुलिस राकेश को इस आरोप में गिरफ्तार कर लेती है कि उसने मुजरिम भूतनाथ को फरार करवा दिया है, निराश एवं असहाय नन्दा अपनी गलती पर पश्चाताप करते हुए मथुरा की ओर चली जाती है।

'भूत का भविष्य' में हरिजन समस्या एवं सवर्णों के अत्याचारों की कहानी है। कैलाश हरिजन तथा निम्न वर्ग का होने के कारण भूत समझ लिया जाता है क्योंकि वह अपना जीवन स्तर ऊँचा नहीं रख सकता। समाज में व्याप्त अस्पृश्यता तथा छूआछूत के कारण जीवित व्यक्ति को उसकी छाया मान लिया जाता है। दूसरी ओर राकेश एवं नन्दा सदृश वायवीय जगत् में जीने वाले प्रेमिकाओं की अव्यावहारिकता जीवन से पलायन एवं आर्थिक विषमता का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस प्रकार के अपरिपक्व विचारों के नवयुवक वास्तविक धरातल से दूर रहकर मृगमरीचिका में पड़कर भटकते हैं। इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण भी विशद रूप में किया गया है।

हज़ारों वर्ष पहले भारतीय समाज में जिस असवर्ण सम्प्रदाय की सृष्टि की थी और उसे निम्नतर जीवन जीने के लिए बाध्य किये जाने की जो परम्परा स्थापित की थी, वह आज के प्रगतिशील युग में भी वैसी ही मजबूती से कायम है और देश के बड़े-बड़े ज्ञानियों, सन्तों, महात्माओं के निरन्तर प्रयत्नों के बावजूद उस प्रथा में तनिक भी परिवर्तन नहीं हो रहा है। जीवन के इन दुःखात्मक अनुभवों का वर्णन करते हुए भूतनाथ कहता है— 'यदि तुम इस संसार में पूर्ण रूप से सुखी रहकर जीना चाहते हो

तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि अपनेपन की अनुभूति को चारों ओर से लपेटकर बिस्तर की तरह बांध लो और पाप की उस गठरी को एक तेजधारा वाली नदी में फेंककर बहा दो। वह फिर भी बहेगी नहीं, तनिक मौका पाते ही नीचे डूब जायेगी और वहीं से नदी के सारे पानी को गन्दा करती रहेगी'[१]

गोविन्दवल्लभ पन्त

कुमाऊँ की कथा-परम्परा के अन्तर्गत सशक्त समर्थ कथाकार श्री गोविन्दवल्लभ पंत जी साहित्य जगत् में विशेषतया नाटककार के रूप में सुपरिचित हैं; किन्तु कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने साठोत्तर पूर्व व साठोत्तरी हिन्दी कथा-साहित्य को इतनी विविध उत्कृष्ट रचनाएं दी हैं कि इनको बहुमुखी प्रतिभा का धनी ही कहना होगा। कथा-परम्परा के इतिहास की दृष्टि से इनकी गणना विकास काल की भावमूलक आदर्शवादी परम्परा के पोषक जयशंकर प्रसाद, राधिकारमण प्रसाद सिंह, राय कृष्णदास प्रभृति विद्वज्जनों में होती है। आत्मविज्ञान से कोसों दूर, अन्तर्मुखी तथा सौम्य शान्त प्रकृति वाले पंत जी जीवन-पर्यन्त किसी सन्त मनीषी के रूप में अनवरत साहित्य-साधना करते रहे। उनका संक्षिप्त जीवनवृत्त स्वयं ही उनके शब्दों में—"मध्यवर्ती कुटुम्ब में सन् १८९८ में जन्म हुआ। पूर्वज ग्रामवासी थे, पिता सरकारी नौकरी में होने से नगर में आ गये। अभिभावकों ने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, बनारस पढ़ने भेज दिया। वहाँ सन् १९२० में पढ़ना-लिखना छोड़कर मेरठ की "व्याकुल भारत" नाटक कम्पनी में भर्ती हो गया। तब नाटक में बहुत साधारण लोग ही जाते थे। तब नाटक की सांस्कृतिक महिमा लोगों में व्याप्त नहीं थी। पहाड़ पर भी रामलीला तथा देश के घूमने वाले रासधारियों की लीला देखने से नाटक से प्रेम हो गया। फिर सिनेमा ने जब नाटक की जगह ले ली तो आजीविका के लिए उपन्यास लिखने आरंभ किये।[२]

अपनी छात्रावस्था से ही उनके रचनाक्रम का सूत्रपात हो गया था। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना "कला की विजय" शीर्षक कहानी "आज" (वाराणसी) में जुलाई, १९२२ में प्रकाशित हुई थी।

पंत जी की कलाकृतियों की भावभूमि, धार्मिक, ऐतिहासिक, तथा सामाजिक विविध विषयों पर आधारित है। आरंभ में उनके दो कहानी संग्रह "एकादशी" (१९२४) तथा "संध्यादीप" (१९३१) शीर्षक से प्रकाशित हुए। विवेच्य कालावधि में उनके लगभग दो दर्जन उपन्यास प्रकाशित एवं कुछ प्रेस में प्रकाशनाधीन हैं। उनकी असंख्य कहानियां, सरस्वती, संगम, धर्मयुग, आज, हिन्दुस्तान आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहने के अतिरिक्त विभिन्न कथा संकलनों में संगृहीत की जा चुकी हैं।

---

१. भूत का भविष्य, पृ. ६९

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में कुमाऊँ का योगदान, श्रीमती माया वात्स्यायन, पृ. ४१ (शोध-प्रबन्ध)

साठोत्तर पूर्व के उपन्यास

१. प्रतिमा, २. मदारी, ३. जूनिया, ४. तारिका, ५. अनुरागिनी, ६. एक सूत्र, ७. अमिताभ, ८. नूरजहाँ, ९. चक्रकान्त, १०. मुक्ति के बन्धन, ११. प्रगति की राह, १२. यामिनी, १३. नौजवान, १४. जलसमाधि, १५. फारगेट मी नाट, १६. पर्णा, १७. मैत्रेण, १८. तारों के सपने, १९. कागज की नाव।

साठोत्तर के उपन्यास

१. कोहनूर का हरण (१९६५), २. निहारिका (१९६७), ३. रूपगंगा(१९६९), ४. उजाली (१९७५), ५. ध्वंस और निर्माण (१९७५), ६. संशय का आखेट (१९७५), ७. रजिया (१९७६), ८. तीन दिन (१९७६), ९. ज्वार (१९७७), १०. अंधेरे में उजाला (१९७६), ११. परिचारिका (१९७८), १२. कनक कमल (१९८१), १३. प्रगति के चार रूप, १४. धर्मचक्र (१९७८), १५. सोने के देवता (१९८०), १६. कश्मीर की क्लियोपेट्रा (१९८१), १७. वाला बंजारा (१९८६)

कोहनूर का हरण

यह उपन्यास सन् १९६० के बाद प्रकाशित होने वाला प्रथम उपन्यास है। लेखक का "कोहनूर का लुटेरा" बहुत लोकप्रिय हुआ। अनेकों नाट्य तथा शिक्षा संस्थाओं द्वारा उसे मंचित किया जाता रहा है। प्रस्तुत उपन्यास इतिहास के इसी प्रसंग पर आधारित है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण, उसके द्वारा किया गया भीषण नरसंहार तथा लूट की अन्य सामग्री के साथ विख्यात कोहनूर हीरे का हरण करके ले जाना आदि ऐतिहासिक सन्दर्भों का समावेश इसके अन्तर्गत किया गया है। मात्र ऐतिहासिक प्रसंग की आवृत्ति ही नहीं, वरन् हमारी पारस्परिक एकता, संगठन तथा सहयोग की कमी को दर्शाया है—मुहम्मद शाह रंगीले के शासन काल में वजीरों एवं सरदारों की परस्पर फूट एवं विद्रोह को चित्रित करने वाला ऐतिहासिक उपन्यास तत्कालीन युद्धों आदि से समाज में होने वाली मार-काट, व्याप्त भय तथा दुष्परिणामों को अपने में समेटे हुए हैं।

तत्कालीन दिल्ली सम्राट् मुहम्मद शाह रंगीले की अदूरदर्शिता,कायरता के कारण नादिरशाह दिल्ली पर आक्रमण करता है। बहुमूल्य सामान लूट कर ले जाता है। नादिरशाह से भयभीत सम्राट् भयभीत होकर सिन्धु पार के समस्त प्रदेश भी भेंट कर देता है। उपन्यास में प्रमुख कथा के साथ आधिकारिक कथा के रूप में संगतरमा मनजीत की कथा को तत्कालीन युद्धों आदि से होने वाली पारिवारिक खून-खराबों तथा दयनीयता को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रासंगिक रूप से उपन्यास में स्थान दिया है। उपन्यासकार ने ऐतिहासिक एवं सत्य घटनाओं में कल्पना का अनुरंजन कर कौतूहल, रोचकता एवं नाटकीयता की सुन्दर सृष्टि की है।

विवेच्य उपन्यास में सम्पूर्ण घटनाएं इतिहास सम्मत नहीं है। युद्ध की तिथि एवं

धन देना आदि भिन्न परिस्थितियों में होता है। नादिरशाह का दिल्ली पहुँचना, वहाँ उसकी मृत्यु की झूठी अफवाह, कत्लेआम का आदेश आदि घटनाएं इतिहास सम्मत है। ऐतिहासिक पात्रों के साथ कतिपय काल्पनिक पात्रों की कल्पना भी की गई है, जो पाठक के मन में विश्वास बनाये रखते हैं। ऐतिहासिक पात्रों में ईरान का बादशाह नादिरशाह प्रमुख है, जो अपनी पराक्रम वीरता के बल पर मुहम्मदशाह को पराजित कर देता है। मुहम्मदशाह जो अत्यन्त विलासी, अदूरदर्शी एवं कायर है। इन अवगुणों के कारण वह अपमानित एवं पराजित होता है तथा मुगल साम्राज्य के दृढ़ नींव पर टिके हुए भवन को ध्वस्त होने से नहीं बचा पाता।

पंत जी की प्रमुख विशेषता है घटनाक्रमों में नाटकीय मोड़ लाना तथा संवादों की उत्कृष्टता, नीरस प्रसंगों को भी सुगठित एवं राष्ट्रीय संवादों से उपन्यास रोमांचक हो जाता है। पंत जी की भाषा पात्रानुकूल, मुहावरेदार एवं उर्दू भाषा के शब्दों की बहुलता प्रधान है यथा—"शाहंशाह को जरा भी मायूस होने की जरूरत नहीं है। मैं इस तलवार और हिन्दुस्तान की कसम खाकर अहद करता हूँ, जब तक नादिरशाह और उसकी फौज को नेस्तनाबूद न कर लूंगा, तब तक चैन की सांस न लूंगा।"[१]

लेखक ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चित्रंण के साथ-साथ विलासिता एवं फूट के कारणों को दिखाकर वह सिद्ध किया है कि—"अगर मुसलमानों की मुहम्मद, राजपूतों की बहादुरी, मराठों का साहस, सिखों की कुर्बानी, जाटों की जाँवाजी, बुंदेलों की ताकत और पहाड़ियों की वफादारी एक होती तो दुनियां में किसी की मजाल नहीं थी कि हिन्दुस्तान को टेढ़ी नजरों से भी देख सकता।"[२]

अन्त में लेखक देश को एकता के सूत्र में बाँधने की लालसा व्यक्त करता हुआ कहता है—'इतिहास अपने को दुहराता है। आज फिर वही स्थिति है। सीमा पर शत्रु हमारी फूट से अपनी शक्ति बढ़ा लेना चाहता है, लेकिन अब हम अपनी भूल को दुहराकर संसार के सामने अपमानित नहीं होंगे। हम सब एक होकर दुश्मनों के तमाम मनसूबे तोड़ देगें। अब अपनी भूमि, अपने भाईयों और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा में सब कुछ निछावर करने को तैयार हैं। हम एक हैं।"[३]

निहारिका (१९६७)

इस उपन्यास में स्वतंत्रता से पूर्व विभिन्न आन्दोलनों एवं अंग्रेजी शासकों के पक्षधर किन्तु सुसम्पन्न परिवारों के नवयुवकों के अन्तरतम में अंकुरित क्रान्तिकारी विचारों की कहानी है। डॉ. वीरबहादुर का पुत्र शशिकान्त निरन्तर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में रहता है। एक ओर पिता की प्रतिष्ठा एवं गोरों के प्रति वफादारी है तो दूसरी ओर देश के लिए कुछ न कर पाने की विवशता तथा सहपाठियों द्वारा लगाये गये देशद्रोही

१. कोहिनूर का हरण, भारतीय साहित्य मन्दिर, प्रथम संस्करण, १९६५, पृ. १५०
२. वही, पृ. १५०
३. वही, पृ. २६२

का लाञ्छन। अन्ततः पिता द्वारा रोके जाने पर भी देशसेवा के आन्दोलन में कूद जाता है। यह प्रेरणा उसे उसकी पत्नी निहारिका द्वारा मिलती है। निहारिका सच्ची देश प्रेमी नारी है। उसका पति क्रान्ति मार्ग में असफल होने पर बुरे व्यसनों में पड़ जाता है। निहारिका मायके जाकर श्वसुर की आकांक्षाओं के अनुरूप पति के बदले स्वयं चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन करती है।

विवाह से पूर्व शशिकान्त द्वारा लिखा गया पत्र निहारिका को मिलता है जो अन्त में स्पष्ट होता है। फिर दोनों साथ-साथ रहकर अपना-अपना साध्य प्राप्त कर लेते हैं। हरजी वकील एवं उनके पुत्र विकास के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन चाटुकार, स्वार्थी लोगों का सजीव चित्रण किया है। नायिका निहारिका उपन्यास की केन्द्र बिन्दु है। उसके विचार में—'पढ़ना लिखना तो व्यक्ति की केवल एक सजावट है। बहुत से पढ़े-लिखे भी बहके हुए हैं और अनेक अनपढ़ लोग अपने विचार और कर्मों से साफ और सुलझे हुए हैं।''[१]

आलोच्य उपन्यास विचारप्रधान है। कहीं-कहीं पर लेखक ने सुन्दर आदर्श स्थापित किए हैं। उदारचेता व्यक्ति सन्तोष को बड़ा धन समझते हैं। रोटी के लिए रोना तुच्छ मनोवृत्ति है। संसार में जितने भी बड़े समाज सुधारक हुए हैं, उन्होंने भौतिकता को महत्त्व नहीं दिया, उसका तिरस्कार भी नहीं किया। अध्यात्म के लिए भी रोटी की आवश्यकता अवश्य है, किन्तु वह साधन है साध्य नहीं। सादा जीवन एवं उच्च विचार का आदर्श लेखक रखना चाहता है।

संवाद नाटकीय सुसंगठित एवं रोचक हैं। कहीं-कहीं संवाद विस्तृत होते हुए भी अस्पष्ट नहीं है, बोझिल नहीं हैं। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की भांति इसमें भी लेखक ने स्वतंत्रता, भौतिकता, आध्यात्मिकता तथा विरोधी व्यक्तियों के साथ चित्रित कर समस्याएँ पैदा कर उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

रूपगंगा (१९६९)

'रूपगंगा, प्रकाशन की दृष्टि से पंत का तेईसवां उपन्यास है। इसमें विज्ञान एवं कला का सुन्दर सामञ्जस्य किया है।'[२] साधना और अजय मातृविहीन भाई बहिन हैं। पिता के अत्यधिक स्नेह के कारण पिता साधना की इच्छानुसार 'साधना परफ्यूमरी वर्क्स' नामक सुगन्धि की एक कम्पनी खोलते हैं। 'लक्ष्य था कीचड़ में कमल उगाना।' अरूण इस कम्पनी में रसायनज्ञ के पद पर नियुक्त हुआ। धीरे-धीर साधना और अरूण में प्रेम हो जाता है। एक दिन साधना ने अरूण के राईटिंग पैड पर निम्न वाक्य लिख दिया—'जिसको देखने की आँख नहीं वह गंध का रहस्य नहीं जान सकता'। गोबर से सुगन्धि बनाने वाले फार्मूले को २००० रूपये में साधना के पिता को बेचकर वेल्डन भाग निकला। वेल्डन के प्रति सन्देह होने से अरूण ने गुप्त फार्मूले को साधना के

---

१. निहारिका, पृ. १०१

२. हिन्दी साहित्य में कुमाऊँ की देन, नवीनचन्द्र कफल्टिया, पृ. ३९

माध्यम से प्राप्त कर लिया। एक दिन उसकी जांच करते समय दीपक की असावधानी से विस्फोट को गया। दीपक की आँखें खराब हो जाती है। सेठ घटनास्थल पर अरूण के पास गुप्तसूत्र की पुस्तक देख कर कुपित होकर अरूण को नौकरी से निकाल देता है। पुत्र एवं पुत्री के आग्रह पर सेठ जी बसन्ती से अजय का विवाह कर देते हैं। दीपक अपने अंधेपन से निराश होकर रेल की क्रासिंग में आत्महत्या करने चला जाता है किन्तु बसन्ती उसे बचा लेती है। दीपक को दस हजार का चेक देकर अरूण को अपनी मां के पास छोड़ देती है। अरूण भी तुम्हारे पास रहेगा, यह कहकर वह मां से विदा लेती है।

आलोच्य उपन्यास में लेखक ने रासायनिक तत्त्वों द्वारा अनुपयोगी वस्तुओं को उपयोग में लाने का वैज्ञानिक सुझाव दिया है। युगानुकूल वैज्ञानिक युग में अनुपयोगी वस्तुओं के प्रयोग में लाने का वैज्ञानिक तर्क एवं दूसरी ओर उत्कृष्ट कलाप्रदर्शन का लोभ संवरण न होने से कथानक शिथिल सा पड़ गया है। पात्र स्वाभाविक गुणों से ओतप्रोत हैं। साथ ही उनमें संवेदनशीलता, विवेकबुद्धि, दार्शनिकता एवं मानवीयता के गुण भी विद्यमान हैं। उपन्यास में रोचकता लाने के लिए लेखक ने आकस्मिक घटनाओं का समावेश तो किया है किन्तु उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

विवेच्य उपन्यास में अंग्रेजी, उर्दू एवं फारसी भाषा के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। अपनी बात पुष्ट करने के लिए वह प्रकृति एवं तर्कशक्ति का प्रयोग करता है किन्तु पाठक पूर्णतया सराबोर नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए—'प्रकृति भी क्या स्वयं एक बनावट नहीं है। गुलाब का पेड़ भी क्या संश्लेषण विधि से बना हुआ एक अस्तित्त्व नहीं है। मिट्टी, खाद, पानी, धूप के मेल ने ही क्या उस पेड़ में एक कली की बनावट नही कर दी ? वह कली जब फूल बन गई तब उसकी सुमधुर सुगन्ध क्या खाद और कीचड़ की दुर्गन्ध से उत्पन्न नहीं हुई।'[१] इसी तर्क के आधार पर वह गोबर से, कीचड़ से सुगन्धि का विस्तार करने की, उसे स्वयं पैदा करने की कल्पना करने लगता है।

उजाली (१९७५)

'उजाली' उपन्यास मद्यपान के दुष्परिणाम और आज के मुखौटेधारी समाज-सुधारकों का नग्न यथार्थ प्रस्तुत करता है। निम्न मध्यवर्गीय समाज में नशेबाजी का दुष्परिणाम उपन्यासकार ने स्पष्ट दर्शाया है। सुन्दर अपनी नवनियुक्ति से प्रसन्न था किन्तु शराब के नशे में झूमता हुआ उसी मेनहोल में गिर पड़ता है, जिसका ढक्कन स्वयं उसी ने नशे को शान्त करने हेतु बेच दिया था। उसका वीभत्स रूप दिखाकर लेखक नशेबाजों को सबक देना चाहता है।

राजपंडित और सरदार खाँ समाज-सुधारक के रूप में चित्रित हैं जो नशाबन्दी संघ की स्थापना करते हैं, किन्तु बिना शराब के एक कदम भी नहीं चल पाते। ऐसे समाजसुधारकों से समाज में कितना परिवर्तन हो सकता है, यह स्वयं विचारणीय है। मध्यमवर्गीय ऐसे दिग्भ्रान्त लोगों से लेखक को सहानुभूति है। उजाली आलोच्य

---

१. रूपगंगा, पृ. ९

उपन्यास की नायिका है। उसकी कथा-व्यथा को लेखक ने बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। ऐसी नारियों के प्रति लेखक अत्यन्त संवेदनशील है।

भाषा पात्रानुकूल है एवं सुसंगठित संवाद योजना से उपन्यास में रोचकता आ गई है। उपन्यास समसामयिक समस्या को लेकर लिख गया है, किन्तु शिल्पगत वैशिष्ट्य प्राचीन ढर्रे का होने के कारण उद्देश्य अत्यन्त प्रभावी एवं सफल नहीं हो पाया है।

ध्वंश और निर्माण (१९७५)

यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में गिना जाता है। महाराज शंकर देव द्वारा निर्मित महेश्वर गिरि के मन्दिर का पुजारी रूद्रक द्वारा अपने पुत्र आर्यदेव का चिरकुमारी देवदासी किन्नरी की पालित पुत्री के साथ खेलने एवं मिलने न देने के विरोध में आर्यदेव और देवदासी पुत्री में प्रेम की भावना और प्रगाढ़ हो जाती है। इससे रूष्ट होकर रूद्रक ने आर्यदेव को अकेले श्रीपर्वत में नागार्जुन और प्रज्ञाचक्षु बौद्धभिक्षु के पास संस्कृत अध्ययनार्थ भेज दिया। अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं परिश्रम से आर्यदेव ने गुरूओं का मन जीत लिया। इससे वहाँ एक ओर वह गुरूजनों का प्रिय हो गया, वहीं दूसरी ओर सहपाठियों का ईर्ष्याभाजन बन बैठा। श्रीपर्वत के समीप आयी रन्ती (देवदासी पुत्री) को आर्यदेव से मिलाकर सहपाठियों ने गुरू नागार्जुन को सूचना दे दी। परिणामस्वरूप आश्रम की आज्ञा की अवहेलना करने के दोष में उसे निर्वस्त्र कर निकाल दिया गया। सहपाठियों से आगे निकलने का संकल्प लेकर वह पिता के पास चला जाता है। वहाँ रन्ती के साथ दाम्पत्य सूत्र में बंधने की याचना करता है किन्तु रूद्रक अस्वीकार कर ठुकरा देता है। रन्ती का व्यवहार भी उसके प्रति बदल जाता है। वह अपने को विवाहिता बता देती है। महेश्वर में अविश्वास कर वह मूर्ति की एक आँख निकाल देता है और पुनः श्रीपर्वत चला जाता है। रूद्रक मूर्ति की दुर्दशा देखकर उसे पकड़ने की आज्ञा देता है किन्तु तब तक आर्यदेव नागार्जुन के साथ अमरावती चला जाता है। एक मजदूर पुरस्कार लेने के लोभ में आर्यदेव को पकड़ने का प्रयास करता है किन्तु दुःखी आर्यदेव मूर्ति के स्वरूप को ठीक कर प्रायश्चित स्वरूप अपनी एक आँख चढ़ा देता है। महेश्वर की मूर्ति की आँख चुराने का दोष रन्ती एवं उसकी मां को अपशकुन समझकर सीमा से बाहर निकाल दिया जाता है। दोनों मां बेटी अमरावती में स्तूप निर्माण में मजदूरी करती हैं। महेश्वर की आँख मिल जाने पर रन्ती एवं उसकी माँ को पूर्ववत् सम्मान देने हेतु रूद्रक अमरावती जाते हैं, वहीं आर्यदेव, रंती एवं उसकी मां से भेंट हो जाती है। रंती विवाह का प्रस्ताव रखती है किन्तु आर्यदेव उसे ठुकरा देते हैं। इस प्रधान कथा के अतिरिक्त पुरन्धर की प्रासंगिक कथा भी कथानक के विकास में सहायक हुई है। अब तक की रचनाओं में यह सर्वथा नवीन रचना है। लेखक ने स्वयं इसे ऐतिहासिक कल्पनापरक उपन्यास माना है।

सम्पूर्ण उपन्यास में १२ पात्र हैं, जो विभिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं। विवेच्य उपन्यास में सुसंगठित, संक्षिप्त एवं मर्मस्पर्शी वार्तालापों के साथ संस्कृतनिष्ठ एवं परिष्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर काव्यमयी भाषा प्रयुक्त हुई है।

संशय का आखेट (१९७५)

विवेच्य उपन्यास में पुरूष के शंकालु स्वभाव का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। सुमन नामक गणिताध्यापक इसी मनोवृत्ति से ग्रस्त होने के कारण अपनी पत्नी सोहनी को विद्यालय जाते समय कमरे में बंद कर जाता है। उसके पड़ोसी डॉ. मनोज सुमन के इस शंकालु चरित्र पर आश्चर्य एवं उसकी पत्नी की दशा देखकर अत्यन्त दुःखी रहते हैं। वह सोहनी की इस यातना से मुक्ति हेतु उसके पिता की अस्वस्थता का समाचार बताकर उसे बाहर ले आता है किन्तु मोटरसाईकिल का ब्रेक अचानक लगाने पर वह गिर पड़ती है, जिससे डॉ. मनोज के पैर में चोट लग जाती है। वह अपने गहनों को एक पोटली में बांध कर चली जाती है। गहने चोरी चले जाते हैं, जिससे सोहनी बेहोश हो जाती है। कुछ दिन अस्पताल में रहकर अपने पीहर चली जाती है।

उसका पति इधर यह अफवाह फैला देता है कि उसकी पत्नी स्टोव से जलकर मर चुकी है और एक पुतला बनवा कर उसे जला देता है। इस तरह वह अपनी दूसरी शादी करने में सफल हो जाता है। सोहनी के घर पहुँचने पर उसके पिता उसे भूत समझकर घर में प्रवेश नहीं करने देते। विवश होकर वह पति के घर में चली जाती है किन्तु वहाँ सुमन उसे दुत्कार कर निकाल देता है। उसकी दयनीय दशा पर उसकी सौत को तरस आ जाता है और वह उसे घर के अवगुंठन में सेविका के रूप में रख लेती है। सोहनी को उसका अधिकार दिलाने के लिए मैत्रेयी (सौत) उसे अपने विवाह के समय वस्त्र पहनाकर सुहागरात में सेजशय्या पर लिटा देती है और स्वयं उसके वस्त्र पहिन लेती है। अंत में सोहनी के पांव में विषधर डंक मार लेता है और वह बेहोश हो जाती है। डॉ. मनोज अपनी जान की बाजी लगाकर उसका विष निकाल कर होश में ले आते हैं किन्तु स्वयं बेहोश हो जाते हैं।

विवेच्य उपन्यास में मुख्य कथा पुरूष का पत्नी पर संदेह करना और निरर्थक संदेह से उत्पन्न नारी की विवशता को व्यंजित करना है। इस मुख्य कथ्य के साथ ही लेखक ने जगत् और सुधिया के माध्यम से समाज में व्याप्त संकीर्ण एवं कट्टरपंथी विचारों का दुष्परिणाम भी प्रदर्शित किया है। यह उपन्यास प्रेमचन्द की तरह यथार्थोन्मुख आदर्शवादी भावभूमि पर स्थित परिलक्षित होता है। इसमें कुल १५ पात्र हैं, जिसमें सुमन एक निर्दय-हृदयहीन स्वार्थी पुरुष के रूप में चित्रित है तो डॉ. मनोज सात्विक एवं विनम्र आदर्श चरित्र प्रस्तुत करता है। एक पत्नी को घर से निकालकर पुतला जला कर प्रसन्नता का अनुभव करता है तो दूसरा प्राणों का उत्सर्ग कर जान बचाकर सन्तोष पाता है। सोहनी स्वयं अत्याचारों को सहती चली जाती है किन्तु मैत्रेयी नारी स्वतंत्रता और समान अधिकारों की भावना को जागृत कर सशक्त नारी पात्रों में आती है। सोहनी की स्थिति जानकर उसे अधिकार दिलाने हेतु कटिबद्ध ही नहीं होती, वरन् अपना सब कुछ लुटाकर भी उसका अधिकार उसे सौंपती है।

आलोच्य उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। उर्दू शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक

रूप से हुआ है। नाटकीय शैली के साथ-साथ प्रतीकात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। मास्टर सुमन विषधर के रूप में डॉ. मनोज औषधी एवं मैत्रेयी स्वतंत्रता की प्रतीक है और सोहनी निरीह विवश नारी की प्रतीक है, जिस पर युगों-युगों से अत्याचार होता चला आ रहा है।

रजिया (१९७६)

भारतीय इतिहास में गुलामवंश की एकमात्र शासिका रजिया सुल्तान एक चर्चित एवं साहसी नारी रही है। उसके शासन के पूर्व की गतिविधियों को पृष्ठभूमि में लेकर उपन्यासकार ने रजिया के शासन सम्बन्धी विशेषताओं के साथ उसके वैयक्तिक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर प्रेरणा दी है कि गुलाम होते हुए भी नारी अपने गुणों के कारण शासन की बागडोर संभाल सकती है। सम्पूर्ण उपन्यास रजिया के शासनतंत्र, मार्ग में आने वाली बाधाओं, युद्धों, हत्याकाण्डों आदि से परिपूर्ण है। सभी घटनाएं इतिहास सम्मत हैं। कुछ छोटी-छोटी घटनाओं एवं गौण पात्रों की कल्पना से मुख्य कथाधारा के प्रवाह में सहायता ली गई है। भाषा उर्दू प्रधान है। मुस्लिम पात्रों के मुख से परिष्कृत हिन्दी का प्रयोग सफल पात्रानुकूल प्रयोग भी नहीं हो सकता है।

विवेच्य उपन्यास में राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशा का सजीव चित्रण करने के साथ-साथ तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य को दर्शाया गया है। उपन्यास मार्मिक नहीं बन पाया है।

तीन दिन (१९७६)

विवेच्य उपन्यास के विषय में—'पंडित गोविन्दवल्लभ पंत' ने कई वर्ष पूर्व 'कठघर' नामक रंगमंचीय नाटक परिवार नियोजन के प्रचार प्रसार हेतु लिखा था। केन्द्रीय सरकार के गीत एवं नाट्य दलों ने अनेक प्रदेशों में उसका कई बार मंचन किया। रंगमंच के लिए इसका अनुवाद गुजराती, तेलुगू, और उड़िया भाषाओं में भी किया गया। उसी 'कठघर' नाटक को 'तीन दिन' उपन्यास के रूप में लिखा गया है।'[१] प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने जनसंख्या विस्फोट, पारिवारिक संबंधों की विषमता एवं पुरुष की शंकालु मनोवृत्ति का चित्रण हास्य-व्यंग्य शैली में बड़ी सजीवता से किया है।

कथानक बसन्त और छाया के विवाह से संबंधित होते हुए गंगाधर के विशाल परिवार, बाल-विवाह, जनसंख्या के नियमन हेतु उपाय से संबंधित है। बसन्त बचत-बैंक में अधिकारी है, जो गंगाधर के मकान में रहता है। वह गंगाधर की पुत्री से प्रेम करता है, यह बात किसी से छुपी नहीं थी। किन्तु एक दिन छाया की पुस्तक में एक चिट देखकर बसन्त का शंकालु मन छाया से घृणा करने लगता है। छाया इस दोष को बसन्त के मित्र की बहन रेणुका पर मढ़ती है। उसने बसन्त को बहका दिया है किन्तु रेणुका वस्तुस्थिति का पता लगाकर छाया की सहायता करती है। छाया आत्महत्या के

---

१. हिन्दी साहित्य को कुमाऊँ की देन, डॉ. कफल्टिया, पृ. ४३, (शोध-प्रबंध)

लिए नदी में कूद पड़ती है। एक दिन अचानक वह रेणुका के घर आ जाती है। अन्ततः छाया को मृत मानकर बसन्त रेणुका से शादी को तैयार हो जाता है। रेणुका विवाह तथा अवगुंठन की शर्त रख लेती है। उसका लाभ उठाकर छाया को विवाह-मण्डप में बैठा देती है। विवाह होने पर गंगाधर यह रहस्य खोल देता है। बसन्त किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो जाता है। पुनः उसके त्याग देने की बात कहने लगता है किन्तु गंगाधर कहते हैं—'उससे तुम अपनी मूर्खता ही सिद्ध करोगे, इसके पाप का नहीं।'[१] बसंत दलील देते हुए कहता है मैंने इसकी किताब में एक चिट पाई, जिसमें सन्तान निरोध की दवाई लिखी थी। सहसा मंजरी बीच में बोली—'यह दवा वह मेरे लिए लाई थी क्योंकि मेरे श्वसुर मुझे पर्दे के भीतर नहीं जाने देते थे और मैं अपने पति को इस झूठे ब्रह्मचर्य के कारागार से मुक्त करा देना चाहती थी।'[२]

उपन्यास में रोचकता एवं गतिशीलता आद्योपान्त बनी रहती है। मनोहर के माध्यम से अधिक सन्तान के कष्ट भी कह दिये हैं। उपन्यास की सारी घटनाएं मात्र तीन दिन में ही घटित होती हैं। उपन्यास में आठ पात्र हैं। बसन्त को नायक एवं छाया को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। गंगाधर जनसंख्या वृद्धि की समस्या समझकर शादीशुदा पुत्र तक को ब्रह्मचर्य का पालन करने की सलाह देते हैं। इस बात को उपन्यासकार बसन्त के शब्दों में निम्न प्रकार व्यक्त करता है—

'कैसा आबादी का भयानक विस्फोट हो गया है। आदमी को रहने की जगह नहीं, पहनने का कपड़ा दुष्प्राप्य। कमाने को नौकरी नहीं, चारों ओर अभाव, दुर्भाव, हाहाकार। मैं शादी करके क्यों धरती माता का भार बढ़ाऊँ।'[३] इन शब्दों के साथ उपन्यासकार ने प्रारंभ में ही समसामयिक समस्याओं को उठाकर उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है।

अंधेरे में उजाला (१९७६)

प्रस्तुत उपन्यास सन् १९५६ में 'जल-समाधि' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यत् किंचित् परिवर्तन के साथ "अंधेरे में उजाला" शीर्षक से १९७६ में प्रकाशित किया गया। इसमें शेरूवा नामक एक नये गूँगे पात्र की सर्जना की गई है, जो स्थान-स्थान पर हास्य का पुट छोड़ता रहता है। जल-समाधि में नायिका अपने पुत्र सहित आत्महत्या कर लेती है किन्तु 'अंधेरे में उजाला' में जयकिशन आत्महत्या कर लेता है। यह कुमाऊँ की भूमि में लिखा गया सामाजिक उपन्यास है।

यह एक ऐसी स्त्री की कथा-व्यथा है, जो विधवा गर्भवती होने के कारण विषम परिस्थितियों से जूझती है। इसके अतिरिक्त उपन्यासकार ने जाति-पाँति के भेदभाव को भी उजागर किया है।

---

१. तीन-दिन, पृ. १७६
२. तीन-दिन, पृ. १७६
३. तीन-दिन, पृ. ५

ज्वार (१९७७)

'ज्वार' उपन्यास आधुनिक नारी जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक दस्तावेज है, जो नारी स्वातंत्र्य को स्पष्ट नकारता हुआ भी उसे पुरुष के अधीन स्वीकार करता है। मनोविज्ञान की छात्रा प्रतिभा पड़ोसी इंजीनियर शर्मा के अर्द्धविक्षिप्त पुत्र दयाल का ध्यान चित्रकला की ओर आकृष्ट कर उसे सामान्य बनाने का हर सम्भव प्रयास करती है, किन्तु वह प्रतिभा को वासना की दृष्टि से देखता है। उसके गाल पर दन्तक्षत कर देता है। इसी प्रकार प्रतिभा के जीवन में मुनीम का पुत्र मदन आदि भी परिचित मित्र की तरह आते हैं, किन्तु सभी उसके रूप यौवन को देखकर उसे वासना की दृष्टि का साधन मानते हैं। इस प्रकार अपने ही विश्वासपात्रों से छलावे के कारण दुर्भाग्य की मारी दर-दर भटकती हुई अमृतसर आ जाती है। प्रतिभा पुरुष के छलावे में आकर उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने का प्रयास करती है, किन्तु हमेशा हताश होना ही उनकी नियति है। उपन्यासकार ने नारी को दुर्बल चित्रित किया है।

कथानक को गति देने के लिए आकस्मिक घटनाएँ, परामनोविज्ञान से मृत आत्माओं से वार्तालाप, माडर्न आर्ट पर चर्चा आदि का समायोजन किया गया है। 'ज्वार' उपन्यास चारों ओर के गली-मुहल्लों का संसार है। इसमें महानगरीय संत्रास और उसके अभाव और उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों की काम-पिपासा का खुला चित्रण किया गया है।

परिचारिका (१९७८)

विवेच्य उपन्यास में लेखक ने आदर्श का जामा पहनकर समाज में पूज्य बने रहने वाले व्यक्तियों की काली करतूतों का पर्दाफाश किया है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरणों से क्षुब्ध होकर स्वयं को समाज सुधारक बनाने वाले कुछ व्यक्ति भ्रष्टाचारभंजक मण्डली की स्थापना करते हैं, जिसके अध्यक्ष त्रिलोचन शर्मा नियुक्त किये जाते हैं।

त्रिलोचन शर्मा के पैर में चोट लगती है, उन्हें चिकित्सालय में भरती कर देते हैं। उसकी परिचर्या उसी परिचारिका की देखरेख में होती है, जिसकी मार वे अपनी धृष्टता के परिणामस्वरूप पहले ही खा चुके होते हैं। उनके चिकित्सालय में भर्ती होते ही भ्रष्टाचार भंजक मण्डली समाप्त हो जाती है।

उपन्यास में लेखक ने तथाकथित मंडलियों के थोथे कार्य-कलापों के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था के मूल में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि पर तीव्र प्रहार किया है। भ्रष्टाचार का उन्मूलन ही उपन्यास का उद्देश्य है। उद्देश्य की प्राप्ति हेतु लेखक कहता है—

'हमें निरपेक्ष होकर रहना है, कर्म का खड्ग बड़ा तेज और वज्र की कठोरता लिए हुए हैं। वह राजा-रंक, गोरे-काले, पंडित-मूर्ख, मालिक-मजदूर और ऊँच-नीच किसी को भी नहीं छोड़ता जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा।'[१]

---

१. परिचारिका, पृ. २४८-४९

कनक कमल (१९८१)

प्रस्तुत उपन्यास कुमाऊँ के जनजीवन पर आधारित है। इसमें कूर्माचल की ग्रामांचल में नारी की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है। नशेबाज व अकर्मण्य पति के प्रति आस्थावान होकर उत्थान के लिए प्राणों की बाजी लगाकर उत्सर्ग करना कुमाऊँनी नारी के लिए सामान्य बात है। उसी त्याग, सहनशीलता पर आधारित कनक-कमल उपन्यास बहुत ही रोचक एवं मार्मिक है।

शिवानी

'हिन्दी की अधुनातन लेखिकाओं में शिवानी अग्रगण्य हैं। वे अत्यन्त सुरूचि सम्पन्न एवं सहृदय लेखिका हैं। बहुज्ञ एवं बहुश्रुत भी वे हैं। अपने उपन्यासों के कथ्य शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण वे आभिजात्य वर्ग के पाठकों में विशेष लोकप्रिय हैं। उनके उपन्यासों में शरच्चन्द्रीय भावुकता और प्रेमचन्दीय यथार्थवादिता का गंगा-जमुनी समन्वय प्रबद्ध पाठकों को एक साथ समुपलब्ध हो जाता है। फिर उनके उपन्यासों में आधुनिकता का जो बोध है वह नयी पीढ़ी को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करता है।'[१]

एक ओर 'शिवानी' नाम से उनके पर्वतपुत्री होने की चरितार्थता है वहीं दूसरी ओर उनकी रचनाओं में कुमाऊँनी परिवेश समग्र रूप से समाया हुआ है और वैसा ही उनका व्यक्तित्व शरदीय धूप सा स्निग्ध गौरवर्ण, सन्तुलित काया, जीवनानुभवों की प्रतिकृति सा चेहरा, प्रखर कण्ठस्वर कुमाऊँ की शाश्वत ताजगी लिए हुए है। शिवानी को कुमाऊँ प्रदेश से अत्यधिक लगाव है। उनका जन्म कुमाऊँ की सुरम्य क्रोड़ में न होकर सौराष्ट्र में हुआ, जिसका लेखिका को बड़ा दुःख है स्वयं उनके शब्दों में—'कुमाऊँनी होने पर भी विधाता ने मुझे कुमाऊँ में जन्म लेने के सौभाग्य से वंचित रखा।'[२]

आधुनिक लेखिकाओं में गोरापन्त 'शिवानी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साठोत्तर हिन्दी साहित्य की वे एक सशक्त लेखिका है। हिन्दी उपन्यास, कहानी और संस्मरण साहित्य को उनका प्रादान्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

शिवानी का जन्म अत्यन्त समृद्ध, सुसंस्कृत एवं उच्चवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री अश्विनीकुमार पाण्डेय राजकोट के राजकुमार कालेज में प्रोफेसर थे। शिवानी का जन्म राजकोट (सौराष्ट्र) में १७ अक्टूबर, १९२३ को प्रातः काल के समय हुआ था। राजकोट के पश्चात् शिवानी के पिता जूनागढ़, मैसूर, माणविदर, रामपुर, जसदन, ओरछा, दतिया आदि राजघरानों में राजकुमारों के पारिवारिक विद्या गुरू रहे। शिवानी की माँ लीलावती पाण्डे बहुत पढ़ी-लिखी,महान विदुषी थी। उनके घर में ही हिन्दी, गुजराती, संस्कृत पुस्तकों का अत्यन्त समृद्ध पुस्तकालय था। महिलाओं में शिक्षा के प्रति उनका बड़ा उत्साह था। लखनऊ का कालिज उन्हीं के योगदान से बना था। शिवानी के नाना डॉ. हरदत्त पंत लखनऊ के तत्कालीन

१. शिवानी के उपन्यासों का रचना-विधान, आमुख, डॉ. अम्बाशंकर नागर
२. मेरी प्रिय कहानियां, भूमिका, शिवानी,

ख्यातिप्राप्त सिविल सर्जन थे। उन्होंने एक छोटी-सी झोपड़ी को अस्पताल का रूप दे दिया। आज का बलरामपुर अस्पताल उन्हीं की डाली नींव पर बना है। शिवानी के पितामह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्म-प्रचारक के पद पर थे। साथ ही संस्कृत के धुरन्धर विद्वान एवं दबंग वकील भी थे।

शिवानी एवं उनके भाई-बहिनों की शिक्षा भी बड़े सोच-विचार के साथ हुई थी। उनके बड़े भाई त्रिभुवन की शिक्षा अंग्रेज गवर्नेस मिस ममपर्ड की देखरेख में हुई। बाद में उन्हें भी बड़ी बहन जयन्ती के पास शान्ति निकेतन में भेजा गया था। जयन्ती के अनुकरणीय आदर्श से स्वयं गुरूदेव भी बहुत प्रभावित थे। शिवानी की शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। शिवानी के छोटे भाई राजा भी एक सफल पत्रकार हैं। इस प्रकार शिवानी का जन्म एक विद्यान्यास परिवार में हुआ और उनका विकास भी विद्यालयी वातावरण में हुआ। कुछ ही समय में शिवानी ने अपनी काव्य प्रतिभा की धाक न केवल शान्ति-निकेतन के छात्रों पर, अध्यापकों और स्वयं गुरूदेव पर भी जमा दी।

शान्ति निकेतन में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे शीर्षस्थ सहृदय विद्वानों से उन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य की शिक्षा प्राप्त की। शान्ति निकेतन में ही उन्होंने रवीन्द्र और हिन्दुस्तानी संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। उनके पति श्रीयुत पंत एक उच्च पदाधिकारी थे। वे बड़े जादूगर भी थे। उनके दो पुत्रियां तथा एक पुत्र है। उनकी पुत्री मृणाल पाण्डेय आधुनिक काल की उभरती हुई लेखिका है।

शिवानी नवीं-दशवीं कक्षा से ही 'विश्वभारती' पत्रिका में लिखने लगी थी। ग्यारह वर्ष की उम्र में पहली कहानी ''सिन्दूरी' बंगला-पत्रिका 'नटखट' में छपी। पहली हिन्दी कहानी 'जमींदार की मृत्यु' १९५१ में 'धर्मयुग' में छपी थी। भारत-सरकार ने उनके संस्मरण 'वातायन' को गत वर्ष 'रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार' से सम्मानित किया है। शिवानी ने संस्कृति, भाषा, कला, अभिनय, यात्रा, सामाजिक समस्या आदि पर जमकर लिखा है। 'वातायन', 'गवाक्ष', 'जालक' आदि इसके प्रमाण है।

शिवानी की लेखन क्षमता एवं लोकप्रियता का रहस्य उनका बहुभाषा ज्ञान है। वे गुजराती, बँगला, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाएँ पढ़ती-लिखती और बोलती हैं। स्वयं उनके शब्दों में— 'मैंने बँगला के अनेक सुहावने मुहावरों से अपनी कहानियों को संवारा है। गुजराती की पाणेतर, बुन्देलखण्ड की कंकरेजी, कुमायूँ की मक्खीवेल तथा सोलहपाटों का लहराता लहंगा, बंगाल की लालपाड़ की गरद, सबकी विभिन्न छटाओं से अपने पाठकों को मोहने की चेष्टा मैंने की है।'[१]

शिवानी की प्रशंसा में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'गौरा शान्ति निकेतन की छोटी सी मुन्नी, मेरी परम प्रिय बहिन और छात्रा, बचपन में ही बड़ी सूक्ष्म बुद्धि की थी। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी।—मेरे परम पारखी मित्र और गौरा के दूसरे अध्यापक पण्डित निताई विनोद रस्तोगी कहा करते थे कि यह लड़की अवसर मिलने

१. जालक, शिवानी, पृ. १५१

पर बहुत प्रतिभाशालिनी सिद्ध होगी। गौरा की भाषा और प्रकाशन भंगिमा की सभी बहुत दाद देते थे।'[१]

शिवानी ने लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई है। इनकी कृतियों का विभाजन हम सुविधा के लिए निम्न प्रकार कर सकते हैं—

(क) उपन्यास

बड़े उपन्यास	**छोटे उपन्यास**
१. मायापुरी-१९३७	१. कैंजा-१९७५
२. चौदह फेरे-१९६०	२. विषकन्या-१९७७
३. कृष्णकली-१९६२	३. रतिविलाप-१९७७
४. भैरवी-१९६९	४. माणिक-१९७७
५. श्मशान-चम्पा-१९७२	५. रथ्या-१९७७
६. सुरंगमा-१९७९	६. गैंडा-१९७८
७. अतिथि-१९८७	७. किशनुली का ढाँट-१९७९
	८. कृष्णवेणी
	९. कस्तूरी मृग-१९८७

(ख) रिपोर्ताज : अपराधिनी

(ग) संस्मरण : १. चार दिन की, २. आमादेर शान्ति-निकेतन, ३. बिन्नू

(घ) कहानी-संग्रह : १. लाल हवेली, २. पुष्पहार, ३. मेरी प्रिय कहानियाँ, ४. उपहार, ५. स्वयंसिद्धा, ६. गैंडा

(ङ) निबंध-संग्रह : १. वातायन, २. गवाक्ष, ३. दरीबा, ४. झरोखा, ५. जालक, ६. झूला।

(च) बाल साहित्य : १. अलविदा हर-हर गंगे, २. राधिका रानी, ३. स्वामीभक्त चूहा।

(छ) संस्कृति : हे दत्तात्रेय।

'शिवानी के व्यक्तित्व और कृतित्त्व को देखकर हम कह सकते हैं कि उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व दोनों ही महान हैं। उनकी कृतियों में स्त्री-पुरुषों का प्रेम, रोमांस और नारी जीवन की विभिन्न समस्याएँ उद्‌घाटित होती हैं। उपन्यास उनके कृतित्त्व की कीर्ति पताका है।'[२] स्वयं लेखिका के स्वर में—'मेरी कथायात्रा कितनी सफल रही, यह मूल्यांकन मेरे लिए क्या, किसी भी लेखक के लिए संभव नहीं है। यह मूल्यांकन कर सकता है केवल समय। किन्तु इतना अवश्य सिर उठाकर कह सकती हूँ कि जितना लिखा है, ईमानदारी से लिखा। यथार्थ को धकेल केवल कल्पना के मसिपात्र में लेखनी नहीं डुबाई। मेरी रचनाएं कितनी लोकप्रिय हुई या मेरे कथा-साहित्य ने इस वर्ष कितनी

१. मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

२. शिवानी के उपन्यासों के रचना विधान, कु. शशिबाला पंजाबी, पृ. ७

रायल्टी बटोरी या मेरा कौन-सा उपन्यास फिल्म बनकर चमक सकता है, इन व्यर्थ की चिन्ताओं ने मुझे कभी विचलित नहीं किया।'[१]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिवानी अपने समय की एक ईमानदार और सफल तथा सर्वाधिक लोकप्रिय कथा लेखिका है। नारी जीवन के गूढ़तम को चित्रित करने में और महानगरीय जीवन की विषमताओं को स्थापित करने में शिवानी का योगदान आधुनिक साहित्य में अप्रतिम है। सस्ती लोकप्रियता के लिए वे कभी प्रयत्नशील नहीं रहीं। उनके उपन्यासों में कुमाऊँ की सुकुमारता, बंगाल की भावुकता, गुजरात की शालीनता और लखनऊ की कुलीनता झलकती है। इनकी साहित्यिक सेवा से प्रभावित होकर इनको सन् १९७९ में पद्मश्री से अलंकृत किया गया। इसके अतिरिक्त कई साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

मायापुरी

कुमाऊँ के आभिजात्य वर्गीय परिवार पर आधारित कथानक वाले इस उपन्यास को आंचलिक संस्पर्श की कोटि में रखा जा सकता है। इस उपन्यास के कथानक में लखनऊ के कोलाहलपूर्ण वातावरण का अधिक प्रभाव है। नायिका शोभा दुर्भाग्य को झेलती संघर्षरत आगे बढ़ती जाती है। संघर्ष करते-करते वह कुन्दन सदृश चमक उठती है। उसकी अडिगता ही उसके चरित्र का आदर्श है। विवेच्य कथानक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को उजागर करता है।

चौदह फेरे

शिवानी का प्रस्तुत उपन्यास निस्सन्देह आंचलिक उपन्यास है। इसका कथानक अल्मोड़ा से प्रारंभ होकर कलकत्ता, नाहन, उटकमण्ड व दिल्ली की परिक्रमा करता अन्त में अल्मोड़ा में ही समाप्त होता है। कूर्माचली ब्राह्मणवर्ग के रीति-रिवाजों पर केन्द्रित यह उपन्यास पूर्ण सशक्तता से कुमाऊँ के सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पक्षों पर बड़ा सजीव एवं आकर्षक उद्घाटन करता है। 'निस्सन्देह यह उपन्यास कुमाऊँ की संस्कृति के सन्दर्भ में वहाँ की पुरानी तथा नई सामाजिक मान्यताओं एवं संस्कृति के संक्रमण काल की एक अनूठी कृति है, जिसमें वहाँ के एक वर्ग विशेष के सांस्कृतिक तथा सामाजिक विचारों का चित्रण मिलता है।'[२] सम्पूर्ण कथावृत्त के अन्तर्गत कर्नल पाण्डे, शिवदत्त पाण्डे, शोभा, ताई-ताऊ, नन्दी, धरणीधर, सर्वेश्वर, बसन्ती आदि पात्रों द्वारा कुमाऊँ की नई तथा पुरानी संस्कृतियों तथा सामाजिक आस्थाओं का प्रतिनिधित्व सा होता प्रतीत होता है।

कृष्णकली

यह उपन्यास शिवानी का बहुचर्चित उपन्यास है। यह रचनाकृति सीमित कलेवर में शिवानी के कथ्य-शिल्प की समस्त विशिष्टताओं से सम्पन्न है। कृष्णकली अपने

१. जालक, शिवानी, पृ. २३४

२. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगतसिंह, पृ. ४०८

चरित्र में, व्यक्तित्व में कुमाऊँनी सौन्दर्य, पठानी कद व दर्प, बंगाली लावण्य व हिप्पियों की सी यायावर अलमस्त प्रवृत्ति के लिए एक साथ ही पाठकों के कौतूहल, स्तुति, निन्दा, सराहना, तिरस्कार, सहानुभूति सब की ही केन्द्र बन उठती है। उतना ही विचित्र विडम्बनापूर्ण था उसका जीवनक्रम। उसके विषय में स्वयं लेखिका का वक्तव्य'.... और फिर कुछ वर्षों पश्चात मिली थी मुझे मेरी नायिका। खच्चरों पर पत्थर लादने वाले पठान जनक का ऊँचा कद, कुमाऊँनी जननी की अपूर्व देहकान्ति एवं विदेशी उच्च समाज के सहवास ने उस खान के खरे हीरे को अब कितने कैरेट का बना दिया होगा यह मैं अनुमान लगा सकती हूँ। यही कोहनूर मेरी कृष्णकली है।'[१]

आल्मोड़ा का संस्पर्श लेकर कथानक प्रारंभ होता है। फिर हल्द्वानी के मार्ग से निकल कलकत्ता, पटना, लखनऊ होते हुए प्रयाग में विराम लेता है। सम्पूर्ण उपन्यास में यत्र-तत्र कुमाऊँ के प्रति लेखिका की मोहनी झलक स्पष्ट परिलक्षित होती रहती है। प्रवीर की अम्मा का यह कथन लेखिका की स्वानुभूति ही लगती है—'स्वदेश से इतनी दूर थी, इसी से पहाड़ की चिड़िया भी उन्हें प्यारी लगती'।[२]

पात्रानुकूल भाषा, प्रत्येक स्थान, वर्ग व समाज का सजीव अंकल, वैविध्यपूर्ण चरित्र-चित्रण सभी विशेषताएँ पाठकों को आद्यान्त सम्मोहित किये रहती हैं। कृष्णकली का व्यक्तित्व ही विलक्षण है, यही कारण है कि 'कृष्णकली की कुछ किश्तें' 'धर्मयुग' में छपते ही पाठकों के रंग-बिरंगे पत्रों के अबीर-गुलाल ने मुझे रंग दिया था। ....कृष्णकली कौन है ? क्या वह कुँआरी है ? क्या वह मेरी कल्पना की ही उपज है ? यदि नहीं तो क्या मैं उसका पता भेज सकती हूँ।'[३] वैविध्य चाहे वह स्थलों की दृष्टि से हो अथवा घटनाक्रम का अपने स्वरूप में इतना सटीक एवं सजीव उतरा है कि इस कृति का प्राण बन गया है। वीरांगनाओं की कोठी का चित्र हो, ईसाइयों के मुहल्लों का परिवेश हो, या तीर्थराज प्रयाग का संगम स्थल अथवा किसी मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार का घर कहीं भी कृत्रिमता का अंश नहीं, सर्वत्र स्वाभाविक वर्णन लगता है।

भैरवी

श्मशान साधक अघोरी गुरू के आश्रम में उनकी सन्यासिनी माया तथा सेविका के मध्य अप्रत्याशित रूप से पहुँची चन्दन भैरवी बना ली जाती है, किन्तु चरणदासी के खेपा से परिणय-सूत्र जोड़कर भाग जाने, माया के कालकवलित हो जाने से गुरू के अपने प्रति आकर्षण देखकर वह बड़ी चतुरता से मुक्त होकर दुर्घटना में बिछड़े अपने पति विक्रम के निवास पर आशाओं का अम्बार बाँधे पहुँचती है, किन्तु तब तक समय रुका नहीं रहता है अतः उसे निराशा ही हाथ लगती है। कथा का प्रारंभ अरण्य में स्थित अघोरी साधक के आश्रम में चन्दन का 'भैरवी' नाम पाकर कुछ अवधि तक इसी नाम

---

१. मेरी प्रिय कहानियाँ, शिवानी, भूमिका
२. कृष्णकली, शिवानी, पृ. ५
३. मेरी प्रिय कहानियाँ, शिवानी, पृ. भूमिका

से रहने पर आधारित है। पूर्व कथा पुरादीप्तिशैली (फ्लेशबैक टेकनीक) के रूप में है तथा अन्त परिगृह में अपने स्थान पर दूसरी को देखकर 'वह मुक्त वन्दिनी भी यही सोच रही थी—वह कहाँ जाये ? कहाँ ?'[१]

विवेच्य उपन्यास के सन्दर्भ में लेखिका का वक्तव्य है—'भैरवी की प्रेरणा भी मुझे बहुत कुछ अंशों में कुमायूँ से ही मिली है। वैसे वहाँ धर्म-व्यवस्था की दृष्टि से हिन्दू धर्म ही प्रमुख है। बौद्धधर्म आठवीं शताब्दी तक रहा, इस धर्म के कुछ-कुछ अनुयायी आज भी कूर्मांचल के उत्तरी भाग जोहार, दारमा में मिलते हैं। गणनाथ, श्रीनाथ आदि नामों से स्पष्ट है कि कुमायूँ में नाथों की तपस्या भूमि भी रही है। शिवोपासना के कारण परी, भूत, प्रेत, जादू, टोने आदि का भी प्रचलन है—इसकी कितनी ही कहानियाँ बचपन में सुनी थी। शायद वही स्मृति भैरवी में भी उभर उठी है।'[२] रूप वर्णन में शिवानी सिद्धहस्त हैं—'नानी का मायका था नैनीताल की नई बाजार में। प्रसूति के लिए नानी वहीं अपनी मां के पास रहने चली गई थी। नित्य आसमान की छत-मुँडेरों पर चढ़ती-उतरती गर्भस्थ पुत्री को छू गई थी। शाहनियों जैसा दुधिया रंग, तीखी नाक, ऐसे दमकते चिकने कपोल कि लगता छूते ही लहू टपक पड़ेगा।'[३]

श्मशान-चम्पा

'श्मशान चम्पा' उपन्यास में एक आभिजात्य कुलीन ब्राह्मण परिवार की युवती की कथा है। 'मायापुरी' एवं 'चौदहफेरे' की अपेक्षा इसमें आंचलिकता का पुट कम है। छोटी बहिन का मुस्लिम पति से विवाह का पारिवारिक कलंक ढोती लेडी डॉ. चम्पा जोशी अपने अभिशप्त जीवन की छाया से मुक्ति पाने नये वातावरण में जीने के लिए जहाँ भी जाती, वह अभिशाप छाया की तरह वहीं पहुंच जाता है। सगाई टूट जाती है। डॉक्टर के रूप में नियुक्त होने पर सेनगुप्त के घर-परिवार में फँस जाती है, वहाँ बहन जूही से अप्रत्याशित भेंट होने पर बम्बई चली जाती है किन्तु एक सुखद स्वप्न भग्न होकर उसी रूप में प्रत्यावर्तन करा देता है। रावदत्त जी उसे अपने पुत्र को वशीभूत करने के दोष में एक शाप दे देते हैं—'श्मशान की उपजी चम्पा है, कोई तेरे पास नहीं आना चाहेगा। चंपा नहीं, श्मशान चम्पा है तू लड़की....'[४] सम्पूर्ण कृति चम्पा को कभी सुखद स्वप्न दिखाते, कभी क्षण में ही भू-लुण्ठित करने के दुर्भाग्य की मार्मिक कथा है। पर्वतीय समाज की रूढ़िवादिता कुँआरी कन्याओं के लिए कितना अभिशाप बन जाती है, चम्पा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

---

१. भैरवी, शिवानी, पृ. १६०
२. मेरी प्रिय कहानियां, शिवानी, भूमिका
३. भैरवी, शिवानी, पृ. ५०-५१
४. श्मशान चम्पा, पृ. १४५

सुरंगमा

यह उपन्यास राजनैतिक व्यंग्यप्रधान है। इसके मुख्यपात्र मंत्री जी (दिनकर पाण्डे) नामक पात्र का वर्णन राजनायिकों की रस लोलुपता पर व्यंग्य करते हुए जनता में उसके वास्तविक रूप को स्पष्ट करता है। इस सन्दर्भ में यहाँ तक खोजा जाने लगा कि मंत्री जी के पात्र की जगह अमुक व्यक्ति पर व्यंग्य है। कथा नायिका सुरंगमा जोशी के चारों ओर केन्द्रित घटनाचक्र कहीं पूर्व स्मृति की वीथिकाओं में भटकता है तो कहीं वर्तमान के प्रशस्त राजपथ पर बढ़ता हुआ निरन्तर कौतूहल, करूणा तथा रोचकता मन को बाँधता चला जाता है। सुरंगमा, राजलक्ष्मी के पिता, मीरा मिनी, गजानन जोशी जैसे पात्र पुरानी परम्परा के लिए हुए है तो राबर्ट जैसे नूतन व्यक्तित्ववाले पात्रों की उद्भावना की गई है। मंत्री पत्नी विनीता जी के चित्रण में नारी मनोविज्ञान का अच्छा प्रयोग हुआ। वैभव, विलास तथा प्रणय-प्रसंगों, रसमयता से भीगा, सपाट, अभिशप्त जीवन के रूप में गतिशील कथानक बड़ा रोचक एवं मार्मिक बन पड़ा है। सम्पूर्ण कथानक लखनऊ तथा कलकत्ता के मध्य घटित होते हुए भी नैनीताल तथा अल्मोड़ा का प्रसंग आंचलिकता का पुट छोड़ता हुआ लेखिका का कूर्माचल प्रेम प्रदर्शित करता है। अवैध संतान को न स्वीकारने की विडम्बना को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है।

रति-विलाप

नारी मन के अनछुए मार्मिक पक्षों का चित्रण बड़ी सजीवता एवं सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है—'किसी शापभ्रष्ट गंधर्व कन्या की ही देवदत्त प्रतिमा' वाली अनुसूया का' 'किसी ग्रीक देवता से ही सुदर्शन तरूण' किन्तु उन्मत्त पति से विवाह तथा कुछ ही समय पश्चात् अकाल वैधव्य जेल से मुक्त हुई पतिहन्ता हीरा का अपनी स्वामिनी के वृद्ध श्वसुर को वश में कर विवाह तथा सामान सहित भाग निकलना और अन्ततः उस वृद्ध को मौत के मुँह डाल देना सभी प्रसंग बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किये हैं। कथानक का प्रारंभ लखनऊ से शुरू होकर अहमदाबाद से बम्बई में ठहराव पाता है। इसके उपरान्त बनारस के मार्ग से लखनऊ में ही समाप्त हो जाता है। विवेच्य उपन्यास में गुजराती समाज का चित्रण करने के साथ ही महानगरीय जीवन की समस्याओं पर दृष्टि डाली गई है। भाषा पर लेखिका का पूर्ण अधिकार है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग उपन्यास की गरिमा बढ़ा देता है।

कैजा

विवेच्य उपन्यास में सुन्दरता पर आसक्त प्रेमी और बचपन से ही प्रेम दीवानी मूक प्रेमिका का रोचक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। अल्मोड़ा निवासी नन्दी सुरेश भट्ट के धूर्त, शराबी होने पर भी उसे प्रेम करती है। इकलौता बेटा होने के कारण सुरेश भट्ट माता-पिता के अत्यधिक लाड़-प्यार से दुर्व्यसनी हो जाता है। परिवार में सुरेश भट्ट के साथ निःसन्तान गदाधर चाचा रहते हैं। नन्दी के पिता ज्योतिषी जी ने वैधव्य का योग देखकर नंदी को परिणय सूत्र में न बाँधकर सर्जन बना दिया। दूसरी ओर सुरेश भट्ट वकालत

पढ़कर भी नन्दी के प्रेम में दीवाना होकर इधर-उधर घूमता रहता है। इसी अवस्था में वह एक पगली से अपनी काम-पिपासा तृप्त कर लेता है। परिणामस्वरूप पगली गर्भवती हो जाती है तथा प्रसव के समय उसकी मृत्यु हो जाती है। सर्जन नन्दी के प्रयास से बच्चा जीवित रह जाता है। बच्चे को नन्दी स्वयं पालती है किन्तु बड़ा होने पर रोहित अपने पिता का परिचय पूछता है। नन्दी रोग से जर्जर सुरेश भट्ट से विवाह कर रोहित को उसके पिता सुरेश भट्ट का परिचय देती है। विवाहोपरान्त शीघ्र ही सुरेश भट्ट का निधन हो जाता है। उसी समय रोहित की नानी (पगली की मां) रोहित के सामने ही नन्दी को उसकी कैंजा (विमाता) का सम्बोधन दे जाती है। तभी से नन्दी के मन में रोहित के प्रति और रोहित को नन्दी के प्रति अपनेपन का अभाव सा लगने लगता है।

कथानक अत्यन्त संक्षिप्त तथा रोचक एवं मार्मिक है। कुमाऊँ के परिवेश एवं वहाँ के समाज का चित्रण करते हुए दो प्रेमियों की अतृप्त प्रेम कहानी है। इसके साथ ही वहाँ के समाज में व्याप्त कुरीतियों का प्रभाव भी प्रदर्शित किया है। कैंजा शब्द सौतेली मां के लिए भी प्रयुक्त होता है। नन्दी के मन में रोहित के प्रति सौतेला भाव लेशमात्र को भी नहीं है किन्तु उसकी नानी की अशिक्षा एवं संकीर्ण विचारों के परिणामस्वरूप उन दोनों के बीच में एक दीवार खड़ी हो जाती है—'आहा, कैसी बात पूछी है, पोथी! जीरे बच रे (जीता रह बेटा)। पूछता है, मां, यह कौन है अरे, यह क्या तेरी मां है ? यह तो तेरी कैंजा है कैंजा—तेरी सौतेली मां। मां तो मर गई और मैं हूँ तेरी मां की मां। वह ठठाकर हंसी और उस हंसी में मृतवत्सा गाय की सी ही करूण रंभाहट की गूंज थी। एक पल को पुत्री की उस सौत के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और असह्य क्रोध की ज्वाला जैसे बुढ़िया को अत्यन्त उन्मत्त कर उठी थी। एक बार भी बिना मुड़े वह भटाक से द्वार भड़भड़ाती बाहर निकल गई।'[१] उपन्यास में नन्दी द्वारा महान त्याग के बाद भी अन्ततः संकीर्ण विचारों के कारण उसे ईर्ष्या, द्वेष के पंक में फंसा दिया जाता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों को चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। मां से भी अधिक वात्सल्य से पालन-पोषण करने वाली औरत ईर्ष्या और डाह करने वाली सौतन कैसे हो सकती है।

गैंडा

प्रेम और प्रतिशोध के दोनों कगारों के बीच प्रवाहित नारी मनोविज्ञान की धारा ही इस लघु उपन्यास का प्राण है—'बदसूरत पति की पत्नी होने में जो सुख है, वह तू कभी समझ ही नहीं सकती। कोई भी फरमाईश मुँह से निकलते ही पूरी। हाथ की हथेली में पति ऐसे उठाकर चलता है जैसे काँच की गुड़िया हूँ।'[२] एक अन्य स्थान पर—'कितना विचित्र हृदय बनाया है विधाता ने नारी का। गहरी से गहरी चोट खाकर

---

१. कैंजा, शिवानी, पृ. ५८-५९

२. गैंडा, शिवानी, पृ. ११

३. गैंडा, शिवानी, पृ. २८

भी वह किसी अनुपम आभूषण को ललचायी दृष्टि से देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाती।'[३] स्थान-स्थान पर ऐसे तथ्य हैं जो मनोजगत् के वैज्ञानिक तथ्य को रूपायित करते हैं। सम्पूर्ण घटनाक्रम लखनऊ के महानगरीय अंचल में ही केन्द्रित है तथा महानगरीय वैभव, चमक-दमक, आधुनिकता से परिपूर्ण परिवेश का चित्र प्रस्तुत करता है किन्तु रह-रहकर नारी मनोविज्ञान इस कृति में बार-बार उभरता है। यथा—'संसार की मूर्ख नारी भी अदर्शी सौत की देह गन्ध को नरभक्षिणी शेरनी की ही भाँति बड़ी दूर से ही सूँघ लेती है।'[१] लेखिका को नारी मन की गहरी पकड़ है—'नारी कभी कायर का प्रेम स्वीकार नहीं करती। उसके जीवन में पति के लाड़-दुलार का जितना महत्त्व है, उसके पैर की ठोकर का भी उतना ही महत्त्व है। केवल मीठा ही खाने में किसे आनन्द आ सकता है।'

रथ्या

'रथ्या' एक लघु उपन्यास है जो कूर्मांचल के धरातल पर आधारित है। प्रारंभ में ही बसन्ती की बालछवि का चित्रण एक सजीव ग्रामबाला का चित्र प्रस्तुत कर देता है—'टखनों तक का जीर्ण मलिन मक्खीबेल लगा नीला क्रेप का पहाड़ी झगुला, कमर से बंधी ओढ़नी, जटाओं में उलझे कुंचित केश और काठ की चमकती पाटी को कांख में दबाए वह स्कूल जाने लगती।'[२] जीवन्ती बुबू का शब्द-चित्र कुमाऊँनी परिवार की किसी भी प्रौढा महिला का प्रतिरूप लगता है। 'ग्राम के किसी भी गृह का कोई संस्कार बुबू की उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था। कन्या का विवाह होता तो बुआ अपनी पुष्ट हथेली से दही में सूजी फेंट कड़ाहीं-भर घी में अपने ऐतिहासिक सुडौल सिंगल पकाने बैठ जाती और लड़की के ससुराल में जब ये भेंटणे के सिंगलों की पोटली खुलेगी, सब बिना बताए ही जान जाएगें कि किसके हाथ के बने हैं। वे गर्व से स्वयं अपने मुँह अपना बखान करती मिनटों में लाल-लाल कुरकुर सिंगलों का स्तूप संवार देतीं। तिल और पीठे के समधी-समधिन बनाने में उनका परिहासरसिक चित्र पग-पग पर अपनी मौलिक सूझ का परिचय दे, पूरे निमंत्रित नारी समुदाय को गुदगुदा देता।'[३] उपन्यास के सभी पात्र जीवन्ती बुबू से लेकर वैदज्यू, छोटे वैदज्यू, विशनुआ, सुरसती आदि सभी पर्वतीय पात्र हैं। इसके साथ ही बुबू, जेड़जा, काखी (पृ. १०), रत्याली (पृ. ११), छपेली (पृ. १०), फुल्यूड़ (पृ. १३), इजा (पृ. १५), रथ्या (पृ. ४४), सभी कुमाऊँनी बोली के शब्द हैं जो इस उपन्यास में मणिमाणिकों की भांति अपनी दीप्ति से कथा-कलेवर को आलोकित करते हैं। कथानक कुमाऊँनी ग्रामांचल से प्रारम्भ होकर शहरी वैभव, चमक-दमक के वातावारण में पूर्ण होता है। छोटे वैद्य जी तथा बसन्ती के साहचर्य से कूर्मांचल की सोंधी महक ग्रामांचल की चर्चा मात्र से महानगरीय परिवेश को

---

१. गैंडा, शिवानी, पृ. २२
२. रथ्या, शिवानी, पृ. ८
३. रथ्या, शिवानी, पृ. ९

भी महका देती है। रथ्या एक सरल ग्रामीण युवती की कथा-व्यथा है जो नर्तकी बन अत्यन्त वैभव के मध्य भी रोती की रोती ही रहती है। स्वयं उसी के शब्दों में—'तुम मुझे ऐसे न ठुकराते छोटे वैद, तो शायद मैं उस दिन अपना इतना बड़ा सर्वनाश न करती। जिस दिन मुझे बिच्छू ने काटा, उसी दिन से तुम मुझसे जान-बूझकर खिंचे रहने लगे थे। मैं आती तो तुम अपनी संध्या के बीच एक बार भी आँखे खोलकर मुझे न देखते। मैं कितनी देर तक खड़ी रहती। आंसुओं से मेरी आंखें अंधी हो जाती थीं। मैं सोचती हाय, क्या यही वही छोटे वैद हैं, जो मुझे बार-बार देखकर भी नहीं अघाते थे ? एक हाथ से नाक के नथुने दाब, तुम दूसरे हाथ में जनेऊ लपेटे, पत्थर बने बैठे रहते। मुझे लगने लगा, मैं उस गांव में रही तो कभी कुछ अनर्थ कर बैठूंगी।'[१]

कृष्णवेणी

यह लघु उपन्यास दक्षिणावर्ती कपालेश्वर मन्दिर तथा समुद्रतट की अनोखी सम्मोहक छटा के परिवेश में प्रारंभ होकर रहस्य के धुन्ध में ढका कौतूहलवर्धक कथानक को लिए आगे बढ़ता है। 'आज जब मेरी लेखनी अविराम गति से यह सब लिखती जा रही है तो मैं उसका असीम कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर रही हूँ। जिसने भी इस लेखनी को इतनी सहज गति दी है उसी ने मुझे अंगुली पकड़कर साहित्य के सुरम्यकानन में पहुँचाया था।'[२] शिवानी के सभी नारी पात्रों की भांति कृष्णवेणी भी अप्रतिम सुन्दरी, मुखरा, चंचल, सुरूचिसम्पन्न होते हुए भी इस अर्थ में अनूठी है कि उसे भविष्य का हस्तामलकवत् देख पाने की विलक्षण क्षमता प्राप्त थी। 'यही दिव्य दृष्टि का वरदान उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बन गया।'[३] कथ्य तथा शिल्प में अपनी पुरानी परम्परा का निर्वाह करते हुए भी कृष्णवेणी का मार्मिक अन्त प्रेतात्मा के रूप में लेखिका से पुनर्मिलन तथा एकाकी पड़ गई वेणी की जननी का रहस्य रोमांचपूर्ण परिवेश निश्चय ही कथा का निराला प्रभावी पक्ष है।

विषकन्या

इस लघु उपन्यास में कामिनी और दामिनी नामक दो जुड़वा बहिनों की कथा है। कामिनी इतनी विषभरी है कि वह जिसे प्रेम करती है वही भस्म हो जाता है। अपनी बहिन की हमशकल होने के कारण भ्रान्ति उत्पन्न करती है। उसका अनुराग सहोदरा के सौभाग्य को भी भस्म कर देता है। इस प्रकार अभिशप्त होकर मुंह छिपाती अनोखी युवती की रोचक कथा है, किन्तु प्रबुद्ध पाठकों को पूर्ण रसाबोर नहीं कर पाती।

मणिक

'मणिक' उपन्यास में अवकाश प्राप्ति के बाद नीलम शहर से दूर अपनी कल्पना की अनोखी 'वाटिका' में एक नौकरानी लक्ष्मी के साथ जंगल में जाती है। इस ढलती

१. रथ्या, शिवानी, पृ. ३४
२. कृष्णवेणी, शिवानी, पृ. २३
३. कृष्णवेणी, शिवानी, पृ. १५

उम्र में नीलम के जीवन की दमित इच्छाओं का फव्वारा-सा फूटता है। एक अपरिचित दीना बाटलीवाला के अचानक जीवन में आने से स्वच्छन्द यौवना का मन खिल उठता है। उसकी प्रौढ़ावस्था में व्योम-बिहारी विहंग की भांति दीना सब कुछ लूट कर चलता बनता है। वह कभी उसके व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश ही न कर सकी। अन्ततः नीलम मिश्रा अपनी ढलती उम्र में आकर्षण के अंधापे का शिकार हो जाती है।

इस उपन्यास की कथा एक अविवाहित बड़ी बहिन के त्याग, तप और उसके अन्तर में उभर आने वाली यौनकुण्ठा से सम्बन्धित है। लेखिका ने यह भी स्पष्ट किया है कि संयम के नाम पर दबायी जाती यौवन-भावना से बचना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। सम्पूर्ण उपन्यास मनोवैज्ञानिक ताने-बाने में बुना गया है।

किशुनली का ढाँट

'किशुनली का ढाँट' नामक उपन्यास में एक पगली (किशना) पण्डित जी तथा उनकी पण्डिताइन की कहानी है। पण्डिताइन निःसन्तान होने के कारण किशना को अपने घर में रख लेती है। पण्डित जी उसे दुत्कारते रहते हैं। वह घर छोड़कर चली जाती है पुनः घर में आती है किन्तु इस बार अपना सर्वनाश करके, फिर भी पण्डिताइन उसे रखती है, पगली को पुत्र पैदा होता है नाम रखा जाता है कर्ण। इस बीच पण्डित जी घर छोड़कर चले जाते हैं और पत्र से सूचित करते हैं कि किशुनली का ढाँट नहीं है, मैं ही उसका बाप हूँ। यह उपन्यास वय की उन्मादिनी किशुनली के जीवन की मार्मिक कहानी है। साथ ही बगुला-भगत बने लोगों की असलियत का भी पर्दाफास करती है।

अतिथि

'अतिथि' शिवानी का नवीनतम उपन्यास है और उनके लेखकीय विकास की धारा का उच्चतर मापदण्ड स्थापित करता है। उपन्यास की नायिका जया उस नारी का प्रतीक है, जो असंगत बुरे और अव्यावहारिकता का प्रतिकार करती है। अपमान सहकर सुख-वैभव भोगने से वह कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना कर संघर्ष पसन्द करती है।

एक राजनैतिक परिवार की पुत्रवधू जया पति की कृतघ्नता देख कर कोई समझौता नहीं करती वरन् स्वतंत्र राह पकड़ कर अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है। इस तरह वह एक दृढ संकल्प वाली 'सेल्फमेड' (स्वनिर्मित) चरित्र की युवती के रूप में उभरती है। जया का व्यक्तित्व सोना है। वह संघर्ष की आग में तपकर कुन्दन हो गया है। उसकी कान्ति को ढकने के लिए शेखर का साथ भी पर्दे के रूप में मिलता है किन्तु वह उसे दूध की मक्खी की तरह हटा कर रख देती है। वह हर उस रिश्ते को अपने जीवन से बेदखल कर देना चाहती है जो उसकी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकता। इसके साथ ही माधव बाबू मुख्यमंत्री के माध्यम से लेखिका ने उच्च-परिवारों में पनपने वाले दुराचारों, अनाचारों का कर्तिक और लीना जैसे चरित्रों की रचना कर बिगड़ती सन्तानों का बड़ा सजीव चित्रण किया है। यही नहीं उनकी परिणति भी दर्शा दी है।

आज के समाज में व्याप्त नशीली दवाओं के प्रयोग पर भी लेखिका ने चिन्ता

व्यक्त की है। लीना की दशा देखिए—आई ऐम हुक्ड मदर, कसम खाकर कहती हूँ ममी, मैं खुद नशे की तलब से उब गई हूँ, पर क्या करूँ, लाचार हूँ, जहाँ खुराक खत्म होती है, जी में आता है कमरे की सारी चीजें तोड़-फोड़कर फेंक दूं। वहाँ जब मैं देखती कि सब लड़कियां आराम से सो रही हैं, एक मैं ही बेचैन करवट बदल रही हूँ तो मैं जलन से बौरा जाती। अब मैं ऐसी अंधी सुरंग में बन्द हूँ ममी, जहाँ से बाहर निकलने का कोई रास्ता कभी ढूंढ नहीं पाऊँगी। एक दिन ऐसे ही तलब ने पागल बना दिया, मैंने उपद्रव मचा दिया, मुझे तो कुछ याद नहीं है, पर लड़कियां बता रही थी कि मैंने किसी के बाल खींचे, किसी को चिकोट लिया, सिंक पर लगा आईना तोड़ दिया और सारे कपड़े उतारे, सड़क पर नंगी भागने लगी।'[१]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास सम-सामयिक समस्या पर आधारित है। उपन्यास की भाषा पुराने स्वर में ही विद्यमान है। शैली में कोई नवीनता नहीं है। कथा का रचाव वर्तमान ज्वलंत समस्याओं को उकेरता हुआ समूची संवेदना को रेखांकित अवश्य करता है।

शैलेश मटियानी

कूर्माचल की पावन भूमि के प्रतिभा सम्पन्न लेखक शैलेश मटियानी का जन्म अल्मोड़ा शहर से लगभग १५ कि.मी. दूर दक्षिण-पश्चिम की ओर एक छोटी पहाड़ी पर बसे बाड़ेछीना नामक स्थान में सन् १९३१ में एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। इनका बचपन का नाम रमेशचन्द्र सिंह मटियानी था। इनके पिता श्री विशनसिंह एवं दादा श्री जीतसिंह घी का व्यापार करते थे। इनके पूर्वज बाड़ेछीना से ७ मील दूर मटेला गाँव के मूल निवासी थे। 'चन्द राजाओं के समय राजदरबार में लीपने व पोतने की मिट्टी लाने वाला मट्याणी कहा जाता था। मट्याणी रूप ही बाद में बदलकर मटियानी हो गया'।[२] इनके पिता पाँच भाई थे। स्वयं लेखक के शब्दों में—'यों तो हमारा बहुत बड़ा कुनवा था। एक ताऊ थे, तीन चाचा और सभी का अपना-अपना भरापूरा परिवार था, मगर सभी अलग-अलग ही रहते थे। मैं, मेरा छोटा भाई और बहन, हम तीनों छोरमुल्या अपने छोटे चाचा जी के आश्रय में पल रहे थे, दादा-दादी भी उन्हीं के साथ थे, दादा-दादी का असीम दुलार प्यार मुझे मिलता था और मेरे छोरमुल्या जीवन की विभीषिका जो मुझे कभी पूरी तरह डँस नहीं पाई। उसका एकमात्र श्रेय मेरे दादा-दादी को ही है।'[३]

सन् १९४१ में प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण कर लेखक आर्थिक विपन्नतावश यह सोचने लगा—'काश खाकी झोलें में रखी हुई ये पुस्तकें मेरे लिए भी होती।'[४] जुलाई, १९४१ में शैलेश अल्मोड़ा टाउन स्कूल में भर्ती हो गये। मां को स्तन कैंसर था। प्रारंभिक जीवन लेखक के शब्दों में—'दस वर्ष की अवस्था से ही जितनी दारूण

१. अतिथि, शिवानी, पृ. २३०
२. कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे
३. मेरी तैंतीस कहानियाँ, शैलेश मटियानी, पृ. ६
४. लेखक की हैसियत से, पृ. ७४-७५

विपत्तियाँ मुझे झेलनी पड़ी। इन्होंने भी मुझे बहुत कुछ इस प्रकार का अभ्यस्त बना दिया था। मेरा अभावग्रस्त अभिशप्त शिशुत्व और दुर्भाग्य की आशंकाओं से संत्रस्त व्यक्तित्व, दूसरी मेरी आत्मा का यह संकल्पजीवी साहित्यकार, जिसे मैंने न जाने कितनी मरणान्तक स्थितियों में भी अपराजेय निष्ठा का लोहासव पिलाकर पोसा है और जो इतना प्रखर है कि बार-बार मुझे यही बोध कराये रखता है कि मेरे व्यक्तित्व के प्राणों की अपेक्षा मेरे साहित्यकार के स्वाभिमान की रक्षा ज्यादा आवश्यक है।'[१] एक अन्य स्थान पर लेखक ने स्वयं अपने बारे में इस प्रकार लिखा है—'एक लड़का है उम्र पन्द्रह वर्ष, बिखरे हुए बाल। निहायत गाँवनुमा छोटे से कस्बे के एक ऊँचे टीले पर बने अपर प्राइमरी स्कूल के छोटे से भवन के आसपास किलमोड़ा, हिंसालू तथा घिघारूँ की झाड़ियों में बकरियां फैलाये बैठा हुआ है। तीन वर्ष पहले मां और पिता का एक साथ देहान्त हो चुका है और अपर प्राइमरी के शिक्षा के साथ ही उसका विद्यार्थी जीवन भी समाप्त हो चुका है। आज सिर पर लदी हुई है अविद्या, एक अंधी भविष्यहीनता।'[२] किसी तरफ जूझते हुए हाईस्कूल तक की शिक्षा पूर्ण होती है। उसके बाद शुरू होती है एक अन्तहीन यात्रा। इसी यात्रा के दुःख-सुख के अनुभवों के मध्य शुरू होता है लेखक का साहित्यकार बनने का सपना, जो सच निकला।

शैलेश जी साहित्यिक जीवन कविता से ही प्रारंभ होता है। लेखक के शब्दों में—'कविवर पंत जी की शैली की नकल में है और रे सम्बोधनों से अलंकृत कविताओं से।'[३] शैलेश मटियानी की कहानी रचना का प्रारंभ १९५० में हुआ। सर्वप्रथम इनकी दो कहानियां 'शान्ति ही जीवन है' अमर-कहानी पत्रिका में तथा 'संघर्ष के क्षण' कहानी रंगमहल पत्रिका में सन् १९५० में दिल्ली से प्रकाशित हुई। इनका पहला उपन्यास 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा सन् १९६० में पुरस्कृत है। इनकी कहानी 'महाभोज' पर हिन्दी संस्थान उत्तर-प्रदेश द्वारा ढाई हजार रूपये का प्रेमचन्द पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्ष १९७४ में कहानी प्रतियोगिता पर 'सुख की तलाश' (बित्ताभर सुख) कहानी पर उन्हें प्रथम पारितोषिक प्रदान किया गया। उत्तर-प्रदेश शासन ने हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकारों के साथ सन् १९७७ में इन्हें साहित्यिक सेवाओं के लिए २,५००/- रूपये का पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया। शैलेश मटियानी ने इतने अल्प समय में निम्न अमरकृतियों की रचना कर हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि करने में जो योगदान दिया उसके लिए समस्त हिन्दी संसार उनका चिरऋणी है।

(क) उपन्यास—

(१) बोरीबली से बोरीबन्दर तक-१९५९, (२) कबूतर खाना-१९६०, (३) हौलदार-१९६१ (४) चिट्ठीरसैन-१९६१ (५) किस्सा नर्वदा बेन गंगूबाई-१९६१, (६) मुख सरोवर के हंस-१९६२, (७) चौथी मुट्ठी-१९६२, (८) एक मूठ सरसों-

---

१. एक मंगलदीप और, शैलेश मटियानी, पृ. ३३

२. लेखक की हैसियत से, पृ. ७०-७१

३. माया १९७६ में शैलेश मटियानी द्वारा लिखित मेरी कथा-यात्रा शीर्षक से उद्धृत

१९६३, (९) डूबते सूरज की किरण-१९६३, (१०) मंजिल-दर-मंजिल-१९६६, (११) दो बूँद जल-१९६६, (१२) कोई अजनबी नहीं-१९६६, (१३) भागे हुए लोग-१९६६, (१४) पुनर्जन्म के बाद-१९७०, (१५) जलतरंग-१९७३, (१६) बर्फ गिर चुकने के बाद-१९७५, (१७) छोटे-छोटे पक्षी-१९७७, (१८) मुठभेड़-१९८३, (१९) आकाश कितना अनन्त है-१९८५, (२०) सर्पगंध-१९७९, (२१) डेरे वाले-१९८०, (२२) सावित्तरी-१९८०, (२३) गोपुली गफूरन-१९८१, (२४) चंद औरतों का शहर-१९८१।

(ख) कहानी-संग्रह—

(१) मेरी तैंतीस कहानियाँ-१९६१, (२) दो दुःखों का एक सुख-१९६६, (३) सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ-१९६७, (४) दूसरों के लिए-१९६७, (५) सफर पर जाने से पहले-१९६९, (६) हारा हुआ-१९७०, (७) अतीत तथा अन्य कहानियाँ-१९७२, (८) मेरी प्रिय कहानियाँ-१९७२, (९) तीसरा सुख-१९७२, (१०) हत्यारे-१९७३, (११) पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ-१९७३, (१२) बर्फ की चट्टानें-१९७४, (१३) जंगल में मंगल-१९७५, (१४) महाभोज-१९७५, (१५) चील-१९७६।

(ग) लोककथा संग्रह—

(१) कुमायूँ की लोक कथाएँ १-३ भाग-१९५८, (२) बारामण्डल की लोक कथाएं-१९५८, (३) अल्मोड़ा की लोक कथाएं-१९६०, (४) चम्पावत की लोक कथाएँ-१९६०, (५) डोटी-प्रदेश की लोक कथाएँ-१९६०, (६) तराई-प्रदेश की लोक कथाएँ-१९६०, (७) नैनीताल की लोक कथाएँ-१९६०।

(घ) बालोपयोगी साहित्य—

(१) सिन्दु और गंगा-१९७२, (२) अपनी-अपनी परम्परा-१९७४, (३) चुहिया का दूल्हा-१९७५, (४) चाँद का रूपया और रानी गौरेया-१९७५

(ङ) अवतार गाथा—

(१) बेला हुई अबेर-१९६२

(च) एकांकी (ध्वनि रूपक)—

(१) खाँसी को फाँसी-१९६२

(छ) संस्मरणात्मक निबंध एवं अन्य निबंध—

(१) लेखक की हैसियत से-१९७४, (२) जनता और साहित्य-१९७६,(वैचारिक निबंध), (३) मुख्यधारा का सवाल-१९८५ (वैचारिक निबंध)

(ज) पत्र-पत्रिकाएँ—

(१) विकल्प (सम्पादन), (२) जनपद (सम्पादन)

हौलदार

शैलेश मटियानी द्वारा 'हौलदार' उपन्यास कुमाऊँ क्षेत्र के ग्रामीण जीवन के अंचल पर लिखा गया एक आंचलिक उपन्यास है। लेखक ने अपने वक्तव्य द्वारा उपन्यास की कथावस्तु के लिए चुने गये परिवेश और वातावरण की ओर संकेत किया है—'अल्मोड़ा की आंचलिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया मेरा पहला प्रकाशित उपन्यास है। ....हौलदार की भाषा भूमि में आंचलिक शब्दों के बूराँस फूल खिलें.... यह लेखक का उद्देश्य रहा है।'[१]

थोकदार जमन सिंह धौलछीना गाँव का मुखिया। उपन्यासकार ने इस संकेत द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उपन्यास की कथावस्तु के लिए चुना गया लोक वातावरण अल्मोड़ा जिले के धौलछीना गाँव का ही है। 'एक पखवारे की बात है....जब अब देहरादून के मिलिट्री अस्पताल से डिसमिस (डिस्चार्ज) होकर, अपने धौलछीना गाँव को लौट रहा था, तो उसका मन विषाद की बारूद से विस्फोटक स्थिति ग्रहण कर रहा था। हाथ से गिरे काँच सा हौलदारी सपना टूट गया और तुमड़िया लौकी सी गोल बविल घास की लट सी लम्बी केले के तने सी गुदगुदी टाँग में घुस गई बारूद की बुलेट। फिर लौट गया कुबचंनियां खिमुली-भिमुली भौजियों के गाँव धौलछीना को।'[२]

उपन्यास का प्रमुख पात्र डूगरसिंह अल्मोड़ा के धौलछीना गाँव का निवासी है। वह अनेकश: कुण्ठाओं से ग्रसित साथ ही भाभियों के व्यंग्य वाणों के निर्मम प्रहारों की आशंका से त्रस्त भी है। उसका हौलदार बनने का सुनहरा स्वप्न स्वयं उसकी ही गलती से सदैव के लिए टूट गया। उसे वह क्षण स्मरण हो आता है, जब भिमुली भाभी ने कहा था—'तुम्हारी उमर के दो-दो बच्चों का च्याँ-च्याँ सुन रहे हैं, पर तुमसे अभी जोरू के नाम पर जोरू की लटी का फुना भी नहीं लाया। ....नरूली का रूप बहुत रूचता है। पर देवर यह क्यों बिसर जाते हो कि उसका खसम पलटन में हौलदार है, तुम्हारी तरह टेकुआ नहीं।'[३]

लेखक ने उपन्यास की कथावस्तु में प्रासंगिक तौर से ग्रामदेवता के प्रति लोक विश्वास का निरूपण किया है। साथ ही पति की अनुपस्थिति में टेकुआ के रूप में किसी देवर के साथ शारीरिक सम्बन्धों का भी संकेतपरक उल्लेख किया है। डूंगरसिंह यद्यपि कुण्ठाओं से और विषमताओं से ग्रसित है। फिर भी अपने झूठे वृत्तान्तों द्वारा लोगों के मन में श्रद्धा की भावना पैदा करने की चेष्टा करता है। वह कभी कश्मीर फ्रन्ट की बात करता है, कभी देश-विदेश की तो कभी लोगों पर अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी का प्रभाव डालना चाहता है किन्तु नरूली पर इन सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि वह अभावग्रस्त है लेकिन उसमें महत्वाकांक्षा भी प्रबल है। एक ओर उसकी इच्छा

---

१. हौलदार, शैलेश मटियानी, भूमिका। (आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६)
२. हौलदार, शैलेश मटियानी, पृ. १।
३. हौलदार, शैलेश मटियानी, पृ. ७-८।

दुकानदार बनने की है और दूसरी ओर 'कलेजे की खाली ठौर में बुरूँश फूल जैसी मोहिनी सूरत का आसन' लगने की है। इतना ही नहीं उसकी कल्पना तो यहाँ तक जा पहुँची है, नरूली के सोलह श्रृंगार से युक्त रूप लावण्य की मनोहारिता, ह हो, ह हो कहकर पुकारने की ध्वनि की मिठास दुकानदार के रूप में अनुभूत गर्व और फलाने के बौज्यू कहलाने की प्रबल आकांक्षा सभी कुछ है।

उपन्यास में ग्राम्यांचल में रहने वाले निम्न वर्ग के लोगों की दशा की ओर लेखक ने मार्मिकतापूर्ण संकेत किया है। ये लोग हरिजन है। गरीबी के कारण इनकी स्त्रियां बहुत ही गंदी रहती है और मजदूरी करती हैं, फिर भी उनमें आत्मसम्मान की भावना कम नहीं है। उपन्यास में आंचलिकता की सिद्धि हेतु अंचल विशेष की लोकतात्विकता को लेखक ने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। अंचल के जनजीवन में व्याप्त लोक-देवताओं के प्रति विश्वास, जागर देवताओं के अवतरण की विधि, इन देवताओं के समक्ष की जाने वाली मनौतियों, लोक-देवताओं द्वारा फल दिये जाने आदि का उल्लेख हुआ है।

अंचल की विभिन्न प्रथाओं और परम्पराओं का कथावस्तु में स्वाभाविक वर्णन हुआ है। कुमाऊँ के लोक जीवन की विशेषताओं, मनोवृत्तियों, भावनाओं एवं पारस्परिक संबंधों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से लेखक ने चित्रित करने का पूरा प्रयत्न किया है। वहाँ के रीति-रिवाज, रहन-सहन, लोकविश्वासों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा प्रथाओं को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने के लिए लेखक ने अल्मोड़ा अंचल में सामान्यतया बोले जाने वाले कुमाऊँनी शब्दों का फुटनोट में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। टिटियाट का फुटनोट में रूपान्तर है रूदन। अलीत का रूपान्तर है गन्दा, गंदी। आवश्यकतानुसार लेखक ने लोकगीतों का हिन्दी अनुवाद भी यत्र-तत्र फुटनोट में देने की चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त खेतों, पोखरों, जलस्रोतों, पवनचक्कियों आदि के द्वारा आंचलिक वातावरण की स्वाभाविक और सजीव निर्मिति हुई है। वस्तुतः 'हौलदार' एक सफल आंचलिक उपन्यास है, यद्यपि कथावस्तु की चरम दशा में अन्त का संदर्भ असमंजसयुक्त है। ऐसा लगता है कि लेखक अभी और कुछ कहना चाहता है। परिणामस्वरूप पाठक की उत्सुकता अपेक्षाकृत और भी जीवन्त हो जाती है। पाठक की उत्सुकता को स्वाभाविक रूप में शमित करते हुए लेखक ने केवल इतना ही संकेत किया है कि—'हौलदार' की शेष कथा लेखक के अगले उपन्यास 'बचुली और बारूद' में पढ़े।'[१] इतना होते हुए भी इस उपन्यास में कुमाऊँ के लोकजीवन, विविध प्रथाओं, परम्पराओं और मान्यताओं आदि का स्वाभाविक रूप से परिचय मिल जाता है।

एक मूँठ सरसों

उत्तम सिंह को अपनी पत्नी और खड़कसिंह के अवैध सम्बन्धों पर पूर्ण विश्वास तब हो जाता है जब वह नवजात शिशु पर खड़कसिंह की अनुहार देखता है। वह क्रोध से पागल हो जाता है और अपनी पत्नी को घर से निकाल देता है। रेवती अपनी पाँच

---

१. हौलदार, शैलेश मटियानी, पृ. ३६२।

दिन की कन्या को पिरमुली आमा के पटआंगण में छोड़कर आत्महत्या कर लेती है। क्रोधाग्नि में जलता उत्तमसिंह कुछ समय में शान्त हो जाता है और रेवती को ढूँढने जाता है और फिर वापस गाँव नहीं आता। पिरमुली आमा ने नवजात कन्या का नामकरण करवाया। उसे लाड़-प्यार से गले लगा लिया। नि:सन्तान आमा के विरान घर में रौनक हो गई। देवकी विवाह योग्य होती है किन्तु कोई वर नहीं मिलता। तब आमा ने पुनकोट से अपने दाज्यू के पुत्र गोपालसिंह को बुलाकर आश्वासन मांगा कि उसकी मृत्यु के बाद देवकी को अनाथ नहीं होने देगा। खड़कसिंह के पुत्र दिलीप और देवकी भाई-बहन समान लगते थे। उन दोनों को भी अपने मां-बाप के सम्बन्धों का पता चल गया। कुष्ठ रोगग्रस्त खड़कसिंह भी देवकी से पिता सम्बोधन को तरसता था।

पिरमुली आमा की मृत्यु के बाद गोपाल सिंह देवकी को पुनकोट ले आया। गोपाल की पत्नी भगवती और विधवा बहन तितुली ने देवकी को बैल की तरह घर के कामों में जोत लिया और समय-समय पर व्यंग्य बाणों से उसका कोमल हृदय बेध दिया। एक बार दिलीप पुनकोट देवकी को भेंटुली देने आया, उसे दुत्कार सुननी पड़ी तथा बिना भिटौली दिये वापस लौटना पड़ा। देवकी यह सब देखकर घर से भाग गई। रास्ते में जागेश्वर की माताओं ने उसके योग की शिक्षा देने हेतु साथ रख लिया किन्तु अवसर पाकर देवकी वहाँ से भी नौ दो ग्यारह हो गई। चितई के पास मुसफिरों ने उसे लालच देकर खण्डहर में ले जाकर बलात्कार किया। विवश देवकी खण्डहर में पड़ी रही, जहाँ उमेदसिंह अपनी शराब की बोतल लेने आता है। उसने देवकी के साथ दुष्कर्म किया तथा एक वर्ष घर में रखकर फिर सड़क पर छोड़ दिया। अपने घर में भी देवकी के साथ अन्य व्यक्तियों की काम-पिपासा शान्त कर अपना कार्य सिद्ध किया उमेदसिंह ने। अन्त में सब तरफ से हारकर देवकी अपने भाई दिलीप के घर पहुँचती है।

विवेच्य उपन्यास में पर्वतीय अंचल के ग्रामों में व्याप्त अवैध शारीरिक सम्बन्धों तथा अवैध सन्तानों की प्रमुख समस्या है। रेवती को अवैध सन्तान जनने के कारण आत्महत्या एवं देवकी अवैध सन्तान होने का अभिशप्त जीवन झेलती है। अवैध सन्तान का जीवन कितना नारकीय बन जाता है। उसे मन से कोई स्वीकार नहीं करता, जब चाहे रख ले और जब चाहे निकाल ले। सरसों की तरह पियराई देवकी लावारिस हो जाती है—'और देवकी छोरी भगवती, तितुली के कठोर नियंत्रण के पिंजरे में कैद हो गई थी। जिस देवकी छोरी की पिण्डलियों में, उस चौदह-पन्द्रह वर्षों की उमर में ही, राह चलने में सरसों की पीली मूँठ जैसी खिला करती थी, उसी की ऐसी दुर्गति हो गई कि हाथ पावों में काम करते-करते गड्ढे-चिरे पड़ गये मगर सुख का गास नहीं मिल सका।'[१] देवकी सोचती थी कि मां उसे कलंक के रूप में छोड़ गई है किन्तु वह ऐसा नहीं करेगी। परिस्थितियों वश उसे उम्मेद सिंह ने उसी रूप में पहुँचा दिया था, किन्तु वह आत्महत्या नहीं करती, अपितु संघर्ष करती हुई अडिग रहती है जुझने के लिए।

आलोच्य उपन्यास की कथा नितान्त यथार्थ है। रेवती तथा देवकी सदृश

१. एक मूँठ सरसों, शैलेश मटियानी, पृ. ८८।

अभागी और विवश नारियों के निर्दोष होने पर भी दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है, किन्तु दोषी पुरुष पवित्र बने रहते हैं समाज उन्हें नहीं दुत्कारता। नारी जाति की भावनाओं को कुचलकर उन्हें पतित कह कर भटकने के लिए छोड़ देता है। पुरुष की इस निर्दयता को उपन्यासकार ने बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। विवशता में अवश देवकी को दिलीप की याद आना, सरसों का पियराना, ककुआ का बांसना आदि के सामंजस्य से करूण रस की धारा प्रवाहित हो जाती है, जिसमें पाठक सराबोर हो जाता है। इस स्थल पर लेखक, पाठक की संवेदना का एकीकरण हो जाता है। घोर विपत्ति में आमा की ये बातें देवकी को नहीं अपितु पाठक को भी संबोधन देती है— 'छौनी स्वामी तो सिर का छत्र होता है नारी के लिए और भाई पीठ पीछे का आधार जैसा। जब-जब बहिन पर विपत्ति पड़ती है तो भाई ही आधार देता है उसे।'[१]

जलतरंग

इस उपन्यास में प्रसिद्ध पर्यटक नगर नैनीताल के नैसर्गिक वातावरण, पहाड़ियों के उतार-चढ़ाव, झील आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच बालकृष्ण केडिया और मीसेज खोसला नामक दो पात्रों के वार्तालाप से व्यस्त मन:स्थितियों से आधुनिक स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। दोनों पात्र वार्तालाप के मध्य अपने पूर्व प्रेमियों की चर्चा भी करते हैं तथा शारीरिक वासना की तृप्ति भी करते हैं। इस प्रकार विवेच्य उपन्यास में आर्थिक रूप से सम्पन्न किन्तु नैतिकता से चरित्र के खोखलेपन के रिक्त व्यक्तियों की छटपटाहट एवं नीरसता अभिव्यंजित हुई है।

मिसेज खोसला फादर परांजपे जैसे व्यक्ति की तलाश में रहती है—'कोई होता है जो हमारे बहुत संक्षिप्त से सम्पर्क में आता है, मगर जीवन भर के लिए हमारे अंधेरेपन से उठाकर सम्पूर्णता की प्रतीति में बाँध देता है।'[२] आभिजात्य वर्ग में पति-पत्नी के सम्बन्धों में एक सम्पर्क का अहसास होता है। विभिन्न पुरुषों से प्रेम करना—नारी की वासनापूर्ति ही नहीं, वरन् एक पुरुष जब निहायत बौद्धिक रूप से पत्नी को मात्र भोग्या समझता है और उसे अपने जीवन का अंग न मानकर महज एक सम्पर्क मानता है तभी नारी अन्य पुरुषों के सम्पर्क में आती है। अपने दाम्पत्य जीवन की मशीनी तथा कल्पनाविहीन दशा देखकर नारी के मन में अन्य पुरुषों के प्रति आकर्षण पैदा होता है—"स्त्री को शरीर से भी पा लेने के बाद उसमें प्रेमिका की सी दिव्यता और स्वप्नशीलता अनुभव कर सकने की शक्ति बिरले ही पुरुषों में होती होगी। प्रेम और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की दिव्यता का इन्द्रधनुष कन्धे पर लटकाये हुए छाया की तरह साथ घूमने वाल पुरुष जब शारीरिक वृत्तियों के बाद जोंकों की तरह अलग छूटने लगता है, तब एकाएक कैसी एलर्जी होने लगती है, कितना बड़ा मोहभंग और खोखलापन महसूस होने लगता है।'[३] पुरुष की स्वार्थलिप्सा एवं मात्र भोग्या समझने की वृत्ति से

१. एक मूँठ सरसों, शैलेश मटियानी, पृ. ८७।
२. जलतरंग, शैलेश मटियानी, पृ. ३६।
३. जलतरंग, शैलेश मटियानी, पृ. ४६।

नारी प्रेम की मृग-मरीचिका में कई बार छली जाती है किन्तु इस भटकाव का कारण नारी स्वयं न होकर पुरुष ही है, जो उसे असीम प्यार देकर बांधने में असफल रहा है।

इस उपन्यास में सीमित पात्रों के माध्यम से पति-पत्नी के परस्पर अलगाव से उत्पन्न समस्या और उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक समृद्धता होते हुए भी व्यक्ति जब क्षणजीवी हो जाता है, तब क्षणजीवी लालसा ही उन्हें काम-वासना के पंक में फँसा देती है, जिसमें व्यक्ति हमेशा मानसिक द्वन्द्व में जीता है तथा हमेशा अशान्त रहने लगता है।

दो बूँद जल

अल्मोड़ा जनपद के मछखाली ग्राम की मीरासी परिवार में उत्पन्न रेशमा एक सुन्दर सपना देखकर शिव वल्लभ मास्टर के साथ दिल्ली कुतुबरोड की बस्ती में जा पहुँचती है। दो वर्ष तक झूठे सपने दिखाकर शिवबल्लभ किनारा काट लेता है। फिर वर्षों तक दौलत ठाकुर उसे होटल की मालकिन बनाने का स्वप्न दिखाता रहा और दो बच्चे होने पर होटल सहित उसे वहीं छोड़कर गाँव चला गया। लम्बी प्रतीक्षा के बाद रेशमा सुरेन्द्र को लेकर दौलत ठाकुर के गाँव पहुँचती है, जहाँ उसे अपमानित होकर, मार खाकर सुरेन्द्र सहित अलग रहना पड़ता है तथा आजीविका के लिए शरीर बेचना पड़ता है तथा इसी वृत्ति से सुरेन्द्र को पढ़ाने बाहर भेजती है। मछखाली में ही रेशमा के बच्चे अपने मामा गुसाई के साथ रहते हैं। नौखेलाल दलाल की चुंगी में एक नेपाली फतेहबहादुर आता है, जहाँ रेशमा अपने जिस्म का सौदा करती है। फतेहबहादुर नेपाल में अपनी प्रेमिका के पति की हत्याकर भाग आता है। दिल्ली में वह कपूर के घर में दरबान है। कपूर की लड़की उसे अपनी वासनापूर्ति का माध्यम बनाती है और पकड़े जाने पर अपने पिता के दरबार में दोषी ठहराती है जो उसको मारकर निकाल देता है। वह नंगधड़ंग बाहर जाता है। कपूर की पत्नी दवा के रूप में उसे शराब देती है किन्तु वह सारी बोतल घुटक जाता है। विक्षिप्तावस्था में सड़क पर घूमते हुए वह सरस्वती एवं रेशमा का नाम लेता है। रेशमा और फतेहबहादुर घुल-मिल जाते हैं। स्वयं रेशमा के शब्दों में—'वह तो कहने की बात है, मुल्की की औरत की जात अलग और मर्दों की जात अलग होती है, मगर मैं तो सोचती हूँ कि दुनिया में सिर्फ सुखियों की एक जात अलग होती होगी और दुखियों की एक जात अलग ····मगर अब समझ गई हूँ कि तेरा-मेरा दुःख हम दोनों को एक जात का बनाये हुए हैं।'[२] फतेहबहादुर दुःखी होकर कलकत्ता चला जाता है। रेशमा सुरेन्द्र को एक सौ रूपये भेजने के लिए रखे रहती है। उसी में से पचास रूपये उसे दे देती है। कलकत्ता से उसे सौ रूपये भेजकर फतेहबहादुर पहाड़ चले जाने का आग्रह करता है, पर सुरेन्द्र के पत्र से वह फिर उसी नारकीय जीवन में जीने की कल्पना कर मूर्छित हो जाती है।

आलोच्य उपन्यास की मुख्यकथा नारी जीवन की मार्मिक व्यथा प्रस्तुत करती है, जो अवश परिस्थितियों में वेश्या होने पर मजबूर होते हुए भी एक मां की भूमिका भी बड़ी

२. दो बूँद जल, शैलेश मटियानी, पृ. ८३।

कर्त्तव्यपरायणता के साथ निभाती है। उसके रहने का परिवेश स्वयं उसी के शब्दों में—'रात की रोशनी में इस कटे हुए शहर में जुटे हुए शहर के तमाम हिस्सों से सैकड़ों मर्द चमगादड़ों की तरह उड़ते हुए आते हैं। बिजली के तारों से औंधे लटकते हैं और आखिर गीदड़ों की तरह पूंछ टाँगों में दबाय फिर शहर की ओर वापस चले जाते हैं।'[१] किन्तु जब इस बस्ती को भी सरकार शहर में मिलाने का प्रस्ताव रखती है और सभी वेश्याओं को यहाँ से हटाकर महिला आश्रमों में रखा जाता है तब रेशमा जैसी नारी के लिए बच्चों की परवरिश का प्रश्न खड़ा हो जाता है। ढलती उम्र में वेश्या जीवन-यापन करना, फतेह बहादुर सदृश पुरुष की चाहना, बच्चों की ममता के बीच जीना, कितना त्रासदीपूर्ण हो सकता है। इस यन्त्रणा का अहसास उपन्यास में बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है। वह रेशमा कहती है—'मैंने मोरासी कबीले में जन्म ले के यह सपना देखा था और हठ बाँधा था कि रंडियों की तरह नांचकर गुजारा नहीं करूँगी, बल्कि किसी एक घर की ठकुरानी बनकर इज्जत की रोटी खाऊँगी···· और कहाँ मैंने वह नरक देखा, जिसमें अपने को देखती हूँ और गंदी नाली को देखती हूँ तो दोनों एक से दिखाई देने लगते हैं···· कहाँ तो मैं शिवबल्लभ पंडित जैसा दिलदार मर्द देखती थी जो सिर्फ औरत की आत्मा को देखता है, उसकी चमड़ी और जात को नहीं देखता···· और कहाँ मैंने एक छोड़ एक हजार से ज्यादा मर्द देख लिए, मगर हर मर्द ऐसा देखा जैसा चमगादड़ उल्टा लटकता है और वीटता है···· और गीदड़ की तरह पूँछ टांगों में दबाये वापस चला जाता है।'[२]

उपन्यासकार ने रेशमा के रूप में समाज द्वारा तिरस्कृत नारियों के प्रति पूर्ण संवेदना व्यक्त की है और साथ ही पाठक के मन में भी संवेदना जागृत करने में सफलता अर्जित की है। समाज द्वारा नारी को घृणित कार्य करने को विवश कर दिया जाता है किन्तु उसके हृदय में ममता की पवित्रता की कितनी लहरें हर समय हिलोरें लेती रहती है और अपनी विवशतापूर्ण जीवन जीने की कितनी बड़ी त्रासदी उसे झकझोरती रहती है, विवेच्य उपन्यास इसका दस्तावेज है। उपन्यासकार रेशमा सदृश दुःखी, विवश नारी जाति को अपने कथावस्तु, मार्मिक भावों से एवं तदनुरूप भाषा-शिल्प के माध्यम से प्रतिमूर्तित करने में पूर्णतया सफल हुआ है।

रामकली

प्रस्तुत उपन्यास में बेमेल विवाह की व्यथा को उजागर किया है। पन्द्रह वर्षीय रामकली से पैंतीस वर्षीय बसन्तलाल का विवाह कर दिया जाता है। दो बच्चों के जनने के बाद ढलती उम्र के बसन्तलाल की जर्जर आर्थिक स्थिति को देखकर हरगुण पंडित की सुन्दर, सुडौल आकृति पर रामकली का मन भटक जाता है। बसन्तलाल से कहासुनी कर वह कमला पहलवान के छलावे में आकर उसके घर चली जाती है। आठ माह तक रखेल की भांति रखकर भी उसने शादी नहीं की। इस बीच अमोलक चन्द्र

---

१. दो बूँद जल, शैलेश मटियानी, पृ. ६।
२. दो बूँद जल, शैलेश मटियानी, पृ. ६।

से सम्पर्क में आने के कारण वह उसके धोखे में दूसरी बार फँस जाती है। रात्रि में जब वह अमोलक चन्द्र के घर पहुँचती है तो वह पाती है कि नशे में चूर अपने दो साथियों के साथ वह उसकी ही प्रतीक्षा कर रहा है। उसे देखते ही वे तीनों भूखे-भेड़ियों की भांति उस पर टूट पड़ते हैं, किन्तु वह किसी तरह पुलिस का भय जताकर चिल्लाती हुई भागने में सफल हो जाती है। प्रात: सब ओर से लांछित होकर वह अपने पूर्व पति बसन्तलाल के घर पहुँचती है। बसन्तलाल उसे अपना लेता है, उसे सदा के लिए घर वापस आया जानकर वह प्रसन्न ही होता है।

इस कथानक के साथ बसन्तलाल के पड़ोसी भूरे की भाभी भी कहानी के साथ में जुड़ी हुई है, जो बसन्तलाल के बच्चों की देखभाल के साथ बसन्तलाल का मन भी लुभाती है।

विवेच्य उपन्यास में बेमेल विवाह की समस्या एवं उसके परिणामों को प्रदर्शित किया गया है। आर्थिक जर्जर स्थितियों में बसन्तलाल दिल से प्रेम करने पर भी शारीरिक रूप से अपनी सुकुमार पत्नी को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। रामकली स्त्री सुलभ दुर्बलता के कारण सुन्दरता एवं सम्पन्नता की ओर उन्मुख होती है। इसके लिए पति के साथ बच्चों का भी त्याग कर देती है। इसी प्रवंचना के फलस्वरूप वह कमला पहलवान एवं अमोलचन्द्र जैसे कामियों के हाथ का खिलौना बन जाती है और अन्ततः अपने घर में आकर ही आश्रय पाती है और इसका कारण स्वयं को स्वीकारती हुई कहती है कि—'एक गहरी तलखी अपनेआप को लेकर रामकली ने अब, इस वक्त पहली बार अनुभव किया कि दोष बसन्त के उम्रदार और तंगदस्त होने में नहीं था, बल्कि उसकी अपनी हविश और उतावलेपन में था।'[१]

विवेच्य उपन्यास में बेमेल विवाह की समस्या के साथ नारी को मात्र भोग्या समझने वाले पाशवीवृत्ति के मनुष्यों की कथा को भी बड़ी कुशलता के साथ सामने प्रदर्शित किया है। भाषा पात्रानुकूल तथा संवाद सटीक हैं। उपन्यासकार अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ है।

सर्पगन्धा

प्रस्तुत उपन्यास राजनीति विषयक कथ्य के ताने-बाने से तैयार किया गया है। भूतपूर्व मंत्री कल्याणठाकुर आगामी चुनाव प्रचार के लिए अपने क्षेत्र रायछीना का दौरा करते हैं। उनके भाषणों से भोगाँव के डिगरराय का पुत्र नारायण प्रभावित होता है और वह भी बड़ा होकर शोषित हरिजन जाति का कल्याण करने का संकल्प लेता है, इसी कारण वह पैतृक धन्धे को भी छोड़ देता है तथा लीसे के ठेकेदार भोलादत्त के यहाँ कार्य करने लगता है। हरिजन कृष्णा भोगाँव के जूनियर हाईस्कूल का मास्टर है जो सहनशील, मर्यादित एवं विद्वान है। उससे प्रभावित होकर ठकुराईन गायत्री विवाह कर लेती है। गायत्री को इस बात का एहसास रहता है कि वह ठाकुर होकर हरिजन की

१. रामकली, शैलेश मटियानी, पृ. ६८।

पत्नी है। कृष्णा उसे समझाता है—'कभी-कभी जब आप निहायत गुस्से में होती है बल्कि कहना चाहिए कि दु:ख में और मैं इस तरह आपके करीब आ कर बैठ जाता हूँ और महसूस करता हूँ कि वजह मैं हूँ और आपको सिर्फ इतना याद दिलाना चाहता हूँ कि हम दोनों बालिग थे और फैसला सिर्फ हमने लिया था, हमारी शादी करने समाज नहीं आया था।'[१] जमुनादत्त की मरी हुई गाय खींचते समय वृद्ध डिगरराम प्राण त्याग देता है। एवज में जमुनादत्त कृष्णा को पाँच सौ रूपये विद्यालय में दान दे देता है। हरिजनोद्धार को लेकर पिछड़ेपन के कारण पर, कृष्णा मास्टर का भाषण प्रभावकारी होता है। चुनाव के लिए रायछीना से कल्याण ठाकुर को टिकट नहीं मिलता है, वे चिपकों आन्दोलन में सम्मिलित होकर जेल चले जाते हैं। नारायण एवं सेवा राम की पुत्री गीता भी जेल जाती है।

उपन्यास में हरिजनों की समस्याओं के साथ राजनीतिक नेताओं की अवसरवादिता का खुला चित्रण हुआ है। इसके साथ ही जातिव्यवस्था की जटिलता को तोड़ना भी लेखक का लक्ष्य रहा है। गायत्री का कृष्णा के साथ विवाह इसका ज्वलन्त उदाहरण है। पति के रूप में गुणों के आधार पर चुनाव करके भी जातीय व्यवस्था उसे उद्वेलित करती है, किन्तु अन्ततः जातिवाद की मानसिकता प्रेम, सौहार्द्र एवं विश्वास की धारा में बह जाती है, फिर बचता है शुद्ध, पवित्र प्रेम।

भोगाँव की बैठक में कृष्णा मास्टर के भाषणों के द्वारा लेखक स्पष्ट करता है कि राजनीतिक स्वार्थपरता, आरक्षण आदि ही जातिवाद को बढ़ावा देने वाले कारण है।

'समान योग्यतावाले तीन लड़के हों, ठाकुर, ब्राह्मण, और हरिजन तो मैं मांग करूंगा कि हरिजन लड़कों को प्राथमिकता दी जाये, क्योंकि उससे दूसरे हरिजन लड़के को प्रेरणा मिलेगी कि योग्य बने और सवर्ण लड़कों को भी यह वेदना नहीं होगी, विक्षोभ नहीं होगा कि निहायत अयोग्य लड़के को हम पर तरजीह दी गई। रीजर्व कोटे की बस यही हद होनी चाहिए।

डेरेवाले

विवेच्य उपन्यास में ऐसे निम्नवर्गीय समाज को उकेरा गया है,जो आर्थिक रूप से विपन्न होने के साथ शताब्दियों से चले आ रहे नाचने-गाने के व्यावसायिक संस्कारों से जकड़े हुए हैं, जो चाहते हुए भी इस मार्ग से उबर नहीं पाते हैं।

रेवाचरण की पत्नी लीलावती धार्मिकता तथा पग-पग पर सौतेली सास द्वारा मर्यादा का ध्यान दिलाने से पति को स्नेह नहीं दे पाती। इस प्रकार रेवाचरण दाम्पत्य सुख से वंचित सा रहता है। इसी बीच उसका ध्यान डेरेवाले कबीले की एक स्त्री श्यामा की तरफ खिंच गया, उससे प्रभावित होकर उसी के साथ रहने लगता है। गुणवन्ती अपने घर में शहर के रईसों, घर लौटते पलटनियों के लिए मुशायरे का प्रबंध

१. सर्पगन्धा, शैलेश मटियानी, पृ. ५८१।

करती, गीत, गजल गाकर जीविकोपार्जन करती। आवश्यकता आने पर जिस्म का सौदा भी करती। इन कबीले की जातियों का यही पेशा है। गुणवन्ती उम्र ढलने पर यह धंधा अपनी लड़की आनन्दी को सिखाती है।

सब्जी बेचने वाला तिरलोक सिंह अल्मोड़ा के पास में ही रहता है। उसका बेटा करमासिंह उसके व्यवहार से क्षुब्ध होकर स्वयं सब्जी बेचकर अपने सहपाठी के साथ पिक्चर देखकर आनन्दी का नाच देखता है। जुएं में कुछ पैसा जीतकर वह गुणवन्ती को देता है। फौजी लोगों की प्रतीक्षा करती। गुणवन्ती निराश होकर उन्हें नाच दिखाती है किन्तु शिब्बू के आते ही उन्हें भगा देती है।

निम्नवर्गीय रूपजीवियों के साथ लेखक ने निम्न मध्यमवर्गीय उस समाज का चित्रण भी किया है, जो अपनी अल्प सीमित आय को जुआ, शराब में खर्चा कर देता है तथा बच्चे दरिद्रता का जीवन जीते हुए इसी मार्ग पर चलने को अभिशप्त हैं। इसके अलावा एक उन लोगों का वर्ग भी है, जो दाम्पत्य सुख से वंचित होकर अपना चरित्र भी खो देता है और डेरेवालों के व्यवसाय को आगे बढ़ाते रहते हैं। इस वर्ग की स्त्रियां चाहकर भी इस पेशे से मुक्ति नहीं पा सकती हैं—'इतना भी तो कभी-कभी बेशरम बेहया बनकर के नाच गा लेती हूँ, कुछ के हाथों की चिगोटियाँ झेल लेती हूँ तो सिर्फ इसलिए कि बालकों का और बड़े ससुर का दुःख नहीं देखा जाता। जरा तुम्हीं सोचों लला कि आज पलीत यह गांधर्व पेशा पकड़कर नहीं बैठे रहते। औरत को रंडी बनाकर के बीच बाजार में न लाते तो कपास जैसी फूले बाप को थरथराते हाथ जोड़ते हुए देली-देली भीख बटोरने को जाना पड़ता।'[१]

सावित्तरी

प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य रूप से जातिवाद की कट्टरता पर व्यंग्य किया गया है। जनार्दन के पिता संस्कारी ब्राह्मण थे। जनार्दन के विवाह में मीता के पिता द्वारा असमान व्यवहार से रूष्ट होकर पुत्री को जनार्दन के घर तब तक जाने के लिए मना कर दिया, जब तक उसके पिता जीवित रहें। जनार्दन के स्वाभिमानी स्वभाव ने श्वसुर के कालेज में अध्यापन से इनकार कर दिया और इलाहाबाद जाकर निगम साहब की पाठशाला में अध्यापन के साथ ट्यूशन करना प्रारम्भ कर दिया। विवाह से पूर्व मीता रावत से प्रेम करती थी। उसके ठुकरा देने से वह नीरस चिड़चिड़ी हो गई। जनार्दन की साधारण बात भी व्यंग्य समझने लगी, परिणामस्वरूप दोनों अलग-अलग रहने लगे। पिता की मृत्यु के बाद जनार्दन पुत्र व मीता को इलाहाबाद ले आया तथा दोनों की शंकायें मिट गई।

उपन्यास की नायिका सावित्तरी महरी का कार्य कर अपने पिता की सहायता करती है। उसका पिता शिवचरण रिक्शा चलाता था। उसकी पत्नी तथा पुत्र गंगवा गणेशी चल बसे थे। सावित्तरी जनार्दन परिवार से खुश थी। छोटी बहन को अन्य घरों

१. डेरे वाले, शैलेश मटियानी, पृ. ३८-३९।

में भेजकर स्वयं वहीं काम करती। जनार्दन भी सावित्तरी से प्रेम करने लगता है। मीता की अस्वस्थता में सावित्तरी ही घर का काम-काज देखती है। शिवचरण अस्वस्थ रहने लगा, गंगवा आवारा लड़कों की सोहबत में भाग गया। सावित्तरी की काम-पिपासा के कई भूखे थे, किन्तु कोई हिम्मत नहीं कर पाता। बच्चालाल आवारा उससे जबरदस्ती शादी पर अड़ा था। अग्रवाल परिवार में काम करते समय अनुराग उसे अपनी वासना तृप्ति का कारण बनाना चाहता है, किन्तु वह उससे मुक्त हो जाती है। प्रसव के दौरान जनार्दन की पत्नी मृत बच्चे को जन्म देती है। इस बीच घर का सारा काम सावित्तरी ही करती है। एक बार जनार्दन उसे आलिंगन में बांध लेता है तो वह कह उठती है—'बाबू साहब। ये सब अच्छी बात नहीं, आप तो देवता आदमी है हम जैसी नाचीज औरत को छूना आपको शोभा नहीं देता।'[१]

इस घटना के बाद सावित्तरी जनार्दन के घर नहीं आयी। साल भर बाद जनार्दन को डी. फिल. की उपाधि मिल गई। सुनील स्कूल जाने लगा। मीता को अध्यापन कार्य मिल गया। एक बार गंगास्नान से लौटते समय मीता को सावित्तरी दिखाई दी। एक जवान लड़की के रूप में नहीं बल्कि एक औरत के रूप में। पूछने पर विदित होता है कि उसने बच्चालाल से शादी कर ली है। शादी से पूर्व अनुराग से अवैध सम्बन्ध होने के कारण समय से पूर्व बच्ची को जन्म दिया, जिसके कारण बच्चालाल उसे उसके पिता के घर छोड़ गया है। अन्त में बच्चालाल उसे ले जाता है किन्तु बच्ची को वहीं छोड़ देता है। मीता उस बच्ची को पाल लेती है।

विवेच्य उपन्यास में निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण हुआ है, जिसमें सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं एवं परिस्थितियों में व्यक्ति को जीना पड़ता है। दूसरी ओर आर्थिक दैन्य जीवन तथा परस्पर विरोधी भावों के मेल से अलगाव तथा विघटन एवं निम्नवर्ग की मजबूरी का अनुचित लाभ उठाता समाज चित्रित हुआ है। जनार्दन भट्ट तथा मीता के बीच परस्पर अलगाव, धनी व्यक्ति द्वारा निर्धन पर अनुचित दबाव तथा जनार्दन दम्पति के परस्पर विचारों की अस्पष्टता से होता है। उपन्यास की नायिका सावित्तरी गुणसम्पन्न होने पर भी बच्चालाल जैसे दुष्ट, आवारा के साथ जीवन गुजारने पर अभिशप्त है। इस मजबूरी का मूल पारिवारिक विपन्नता तथा अग्रवाल के पुत्र अनुराग द्वारा अवैध सम्बन्ध से गर्भ रह जाता है। अनुराग तो मात्र क्षमायाचना कर किनारा पा जाता है, किन्तु सावित्तरी जीवन भर कष्ट ढोने पर भी किनारा नहीं पा सकती है। 'गरीब की बेटी की प्रेम में भी दुर्गति है और शादी में भी। पैसे वाले उसे शौक पूरा करने की चीज समझते हैं और खसम फालतू कहकर दुत्कारता है। जहाँ ममता की आंख को देखते नहीं, वहाँ पाप सब देखते हैं, वेदना कोई नहीं देखता।'[२]

---

१. सावित्तरी, शैलेश मटियानी, पृ. ४१।

२. सावित्तरी, शैलेश मटियानी, पृ. १५२।

गोपुली-गफूरन

विवेच्य उपन्यास धर्म परिवर्तन के विषय को लेकर लिखा गया है। उपन्यास की नायिका गोपुली पति के फौज से लापता हो जाने के तीन वर्ष तक प्रतीक्षा कर तंग परिस्थिति में विकल रहने लगी। आठ बच्चों की मां बनने की चाह यों ही मुरझाने लगी। कुछ समय बाद प्रतिमा प्रधानी के पुत्र विक्रम से उसका अनैतिक सम्बन्ध जुड़ जाता है। वह गर्भवती हो जाती है, इस भय से विक्रम भाग जाता है। बेसहारा गोपुली उस कलंक को ढोने के लिए अकेली रह जाती है। पुत्र की ममता से आत्महत्या भी नहीं कर पाती, न अपनी अल्मोड़ा की बहन जिसे ईसाई फादर ने गोद लिया था, उसके पास ही जा पाती है।

सआदत मियां की अल्मोड़ा में विसाती की दुकान है। पत्नी की मृत्यु के बाद दो लड़के तथा एक लड़की का पालन-पोषण करते हैं। चूड़ी आदि बेचने पलंगगाँव और मोलगाँव आया करता है। अपने सद्व्यवहार से वह सबसे घुलमिल जाता है। गोपुली उसी के साथ अल्मोड़ा आ जाती है। सआदत मियां के घर गोपुली का कलमा निकाह हो गया और वह गोपुली से गफूरन हो गई। गोपुली ने किशन का खतना नहीं होने दिया। सहादत मियां के घर पर उसे बच्चों से हमेशा स्नेह मिलता रहा, किन्तु एक बार सलमा से कहासुनी होने पर वह नाराज होकर अपनी बहन के घर चली गई, पर सहादत मियां उसे मनाकर वापस ले जाते हैं।

इधर लापता रतनराम छह वर्ष बाद घर वापस आ गया। उसने सहादतमियां पर दावा किया, पर वह हार गया। उसकी दशा देखकर किशन सहित पांच सौ रूपये उसे दे दिये। भारतीय नारी जिस पुरूष के साथ एक बार बंध जाती है, उसे अन्ततः नहीं छोड़ती। तीन वर्ष प्रतीक्षा के बाद गोपुली शादी कर लेती है, किन्तु बच्चे का खतना नहीं करती और हारे हुए पति के प्रति अन्त तक संवेदनशील बनी रहती है।

आलोच्य उपन्यास में निर्धन नारी की असहाय स्थिति का खुला चित्रण है जो उच्चघर की गृहिणी तो नहीं बन सकती, किन्तु उच्चवर्गीय लोगों की काम-पिपासा तृप्ति का कारण बन जाती है। पति फौज से ही परस्त्रीगमन करता है। असहाय गोपुली को मजबूरन गफूरन बनना पड़ता है। रतनराम को पुत्र वापस करने के बाद उसकी स्थिति कितनी अवश, शोचनीय है—'इस बीज से दो टुकड़ा हो गई, सो चारपाई पर पड़ गई थी, बड़ी देर तक उसे यही लगता रहा कि किसन के रोने की आवाज बन्द दरवाजों को चीरती हुई उस तक पहुँच रही है।'[१]

मुठभेड़

'मुठभेड़' उपन्यास सन् १९८४ में शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में मटियानी जी ने समसामयिक समस्याओं को उजागर किया है। इसका कथानक निम्नमध्यमवर्गीय जीवन की अस्मिता एवं पुलिस की बर्बरता एवं अन्याय

१. गोपुली-ग़फूरन, शैलेश मटियानी, पृ. १९८।

को लेकर प्रारंभ होता है। पुलिस किस तरह से गरीबों की बहू-बेटियों की इज्जत लूटती है। उनकी बकरी, मुर्गी का सेवन करती हैं और वक्त आने पर निरीह लोगों को उठाकर मुठभेड़ का नाम देकर काउन्टर कर देती है। लोगों के समक्ष निर्दोष व्यक्ति को डाकू साबित कर उसको मारने की वाहवाही लूटती है। इस व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है—'डाकू और पुलिस दोनों को बूट और दरिंदा बनाने वाली यह व्यवस्था है, जो इस मुल्क को यूरोपियन लुटेरों से विरासत में मिली है। जिसकी सिर्फ जन्मभूमि भिन्न है आत्मा वही है। ····होने को तो यह एक अंतहीन नाटक है, जो आदमी में से आदमियत को चाट जाने पर तुला हुआ है, मगर यकीन करो, मैं तुम्हें इस पुलिस-विभाग में ऐसे-ऐसे लोगों को अफसरों से लेकर सिपाहियों तक में—दिखला सकता हूँ, जिनमें कवियों की जैसी करूणा और सेंसेविलिटी मिल जायेगी और ऐसे लोगों की तादाद छोटी नहीं है, भट्ट ! बस, ये है कि जिनमें इन्सानियत का जज्बा है, उन्हें उसे प्रकट करने के मौके हासिल नहीं है—जिनमें हैवानियत है, उनको खुला खेलने की आजादी है और सहूलियत ····इस मुल्क में मुट्ठी भर लोग हैं, जिनका इलाज अगर हो जाये, तो पूरे मुल्क की फिजां बदली जा सकती है। ····इवन इन द फील्ड ऑफ क्राइम····नब्बे परसेन्ट लोग वो हैं, जिन्हें इरादतन, जबरन, इन ए प्लान्ड वे क्रिमिनल बनाया गया है।'[१]

इस प्रकार उपन्यास में अपराध और उनके कारणों पर विस्तृत चर्चा हुई है। कथा तो मात्र कथ्य को उजागर करने का साधन है। सम्पूर्ण उपन्यास विचारोत्तेजक, है डाकू समस्या पर—'डाकू समस्या भी पोषित समस्या है। अफीम की खेती की तरह, यह भी एक रिजर्व फार्मिंग है, जहाँ यह व्यवस्था डाकुओं का पनीर छोड़ती रहती है—यानी बोती है। गोड़ती-निराती है। एक फसल कटती, दूसरी उगाती चलती है।'[२]

आकाश कितना अनन्त है

राजेन्द्र यादव के शब्दों में—'इसकी वैचारिक मौलिकता ने सचमुच बहुत प्रभावित किया है। जिस खूबसूरती और बेबाकी से सारी स्थितियों का विश्लेषण किया गया है, वह हिन्दी में दुर्लभ है। जिस धैर्य और सन्तुलन के साथ इसके कथानक का विकास किया गया है, यानी राजशेखर को पूरे शहर की मानसिकता के साथ जोड़कर बढ़ाया गया है, उससे स्थान-स्थान पर मैं ईर्ष्यालु हो उठा हूँ। शारदा पण्डित और गीता पॉल के चरित्र बेहद बारीकी के साथ उकेरे गये हैं। उपन्यास ने मुझे केवल एक दिन में समाप्त करने को विवश किया। यह इसकी पठनीयता ही सिद्ध करती है। यह सारा उपन्यास मुझे अद्भुत आत्मान्वेषण की यात्राओं में ले गया। शेखर की व्यक्तिगत ट्रेजडी, परिस्थितियाँ जिस तरह उठकर सजग, संघर्ष और मानसिक विकृतियों से लड़ने के संकल्प तक पहुँचती है, वह किसी भी द्वन्द्वग्रस्त मन के लिए एक बहुत बड़ा आश्वासन भी है।'[३]

---

१. मुठभेड़, शैलेश मटियानी, पृ. १५६।
२. मुठभेड़, शैलेश मटियानी, पृ. १५१।
३. आकाश कितना अनन्त है, विज्ञापन।

प्रस्तुत उपन्यास कुछ ऐसे व्यक्तियों की कहानी है, जिनके क्रिया-कलापों के पारस्परिक टकराव से स्वस्थ और अस्वस्थ जीवन दृष्टियाँ अनायास परत-दर-परत खुलती चली जाती है। आकाश जितना अनन्त है, उतनी ही अनन्त है जीवन की सम्भावनाएँ, लेकिन उन सम्भावनाओं की ओर अग्रसर होता आदमी का अपनी इन्सानियत को अपने हाथों और अपनी आखों के सामने जी सकने का सामर्थ्य और संघर्ष भी कम अनन्त हर्गिज नहीं है। जीवन की छोटा-छोटी घटनाओं को भी अगर आदमीयत के सन्दर्भ में देखने-समझने की दृष्टि विकसित कर ली जाये तो यह सामर्थ्य और संघर्ष हमारे जीवन का सहज अविभाज्य अंग बन जाता है और व्यक्ति अपने निजी सुख-दुख में आबद्ध नहीं रहता, बल्कि अपनी निजता को दूसरों के सुख-दुःखों से जोड़कर देखने लगता है। इसके साथ ही यह भी बताया है कि शारदा पण्डित जैसे मक्कार व्यक्ति मुखौटा पहन कर किस प्रकार अपने काले-कारनामों को ढँककर समाज में प्रतिष्ठित बने रहते हैं और बुद्धिजीवी दो जून की रोटी के लिए दर-दर की ठोकरे खाते रहते हैं। कामरेड जैसा बुद्धिजीवी निहायत रोजमर्रा की वस्तुओं के लिए कितना संघर्ष करता है। उधर शारदा पण्डित मौजे उड़ाता फिरता है। निम्नवर्गीय व्यक्ति एक होने की चाह रखते हुए भी साथ नही दे सकते हैं। 'वो सब मैं जानता हूँ, वर्मा साहब। सिर्फ पेट की मजबूरी हमें आपसे अलग किये हुए है।'[१] प्रेम की व्यापकता पर लेखक कहता है—'इश्क इंकलाब से छोटी चीज नहीं, प्यारे। प्रेम मानवी जीवन का सबसे बुनियादी तत्त्व है। शुद्ध स्त्री-प्रेम की गहराइयों में जाकर भी लोग प्राणिमात्र के लिए अपने हृदय में करूणा संजोये वापस लौटे हैं।'[२] समाज व्यवस्था को बदलने के लिए लेखक बुद्धिजीवियों द्वारा समाज में चेतना (जागृति) लाने की बात कहता है—'इस मुल्क की पार्लियामेन्ट और असेम्बली जो है—वहाँ सिर्फ भइया जी, रामरतन भट्ट, राय साहब, साँवरिया लाल और शारदा पण्डित जैसे घाघ लोगों की पहुँच है, क्योंकि हरामखोरों की बदौलत ही इस निजाम ने अंपने को मजबूत करते जाना है। नेहरू जी की तुम बात कह रहे थे ? उन्होंने भी सारी पंचवर्षी-एकवर्षी योजनाएँ टाटा-बिड़लाओं की 'प्लानिंग' के मुताबिक बनायी, इस मुल्क की जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की कीमत से नहीं। सामाजिक लूट और उत्पीड़न का यह सिलसिला तब तक खत्म नहीं होना है, जब तक इस मुल्क की सामाजिक चेतना में विप्लव नहीं आता।'[३]

इस उपन्यास में लेखक ने व्यक्ति के संघर्षों का दस्तावेज प्रस्तुत किया है। व्यक्ति भले ही अकेला ही क्यों न हो, उसका मिशन क्यों न छोटा हो, पर उसे अपनी शर्तों में हमेशा आगे बढ़ते जाना चहिए—'यह आकाश कितना अनन्त है, और इन पक्षियों के पंख कितने छोटे-छोटे। ····साफ है कि तुम्हारा इशारा हम लोगों के संघर्ष की ओर भी था कि खुद के मिशन की तुलना में हम लोगों की औकात कितनी छोटी है। ····इस

---

१. आकाश कितना अनन्त है, शैलेश मटियानी, पृ. २०८।
२. आकाश कितना अनन्त है, शैलेश मटियानी, पृ. २१३।
३. आकाश कितना अनन्त है, शैलेश मटियानी, पृ. २१३।

सिलसिले में तुमसे मुझे सिर्फ एक बात, लेकिन बहुत जरूरी तौर पर, ये कहनी है कि ये ठीक है कि आसमान का कोई अन्त नहीं, वह सचमुच अनन्त है। मगर प्यारे, आदमी का अपनी इन्सानियत को अपने हाथों और अपनी आँखों के सामने जी सकने का संघर्ष भी कम अनन्त हर्गिज नहीं है। संसार की सारी नियामतों से मूल्यवान और खूबसूरत यह संघर्ष न हमसे-तुमसे शुरू हुआ है न हमारे-तुम्हारे साथ खत्म होगा।'[१] इस व्यवस्था में सुधार होना चाहिए, इस बात को लेखक हर बात के बीच में व्यक्त करता है, स्वयं जेलर कामरेड के विषय में कहता है—'यह आदमी तो हीरा है, साहब। ये सियासी लोग बड़े हरामी किस्म की चीज होते हैं। एक ऐसे आदमी पर एण्टीनेशनल और चीनी तरफदारी होने का इल्जाम लगवा दिया, जिस पर हमें नाज करना चाहिए।'[२]

विवेच्य उपन्यास एक विचारप्रधान उपन्यास है तथा सम-सामयिक विषय को लेकर लिखा गया है। लेखक इस सम्पूर्ण टूटती-बिखरती व्यवस्था के ऊपर व्यंग्य करता है तथा इसे बदलने की पेशकश करता है।

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' विगत अर्द्ध शताब्दी के मौन साहित्य-साधक के रूप में गण्य और वरेण्य हैं। विद्यार्थी जीवन से ही अशोक जी कहानी लिखने लगे थे। प्रयाग विश्वविद्यालय की १९३७ की प्रतियोगिता में वे प्रथम पुरस्कार से सम्मानित हुए। विज्ञान संकाय के विद्यार्थी के लिए यह सफलता निश्चय ही असाधारण थी। उन्हें यह पुरस्कार उनकी प्रसिद्ध कहानी 'वैज्ञानिक की पत्नी' पर दिया गया था। आबकारी विभाग की राजकीय सेवा में रहते हुए भी 'अशोक' जी की लेखनी निरंतर साहित्य-सर्जना करती रही।

यद्यपि वैष्णव जी ने साहित्य की अनेक विधाओं में रचना की है, पर वैज्ञानिक कथाकार के रूप में हिन्दी में उनका स्थान निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। राजकीय सेवा से अवकाश लेने के बाद तो उनका पूरा समय सरस्वती की अर्चना को ही समर्पित है। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' द्वारा आयोजित १९८१ की प्रेमचन्द कहानी प्रतियोगिता में उनकी कहानी 'वत्सकामा का कटरा' पुरस्कृत हुई है। उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान ने उनकी साहित्य-साधना के लिए पंच सहस्त्र मुद्राओं के विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया।

अशोक जी का जन्म दशहरे की पंचमी को संवत् १९७२ वि. तदनुसार २ अक्टूबर, १९१५ को धौलरा ग्राम में हुआ। अशोक जी का विद्यार्थी जीवन कड़े संघर्षों में गुजरा। अपने वजीफे से ही उन्होंने अपनी पढ़ाई पूर्ण नहीं की, अपितु उससे घर में आर्थिक सहायता भी दी। आप प्रारंभ से ही मेघावी एवं प्रथम श्रेणी के छात्र रहे, उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में—'सन् १९३५ अर्थात् ग्यारहवीं कक्षा तक यमुनादत्त ने पहनने के नाम पर जूते देखे तक न थे, जबकि चमरौधे जूतों का मूल्य तब बारह-तेरह

१. आकाश कितना अनन्त है, शैलेश मटियानी, पृ. २५०
२. आकाश कितना अनन्त है, शैलेश मटियानी, पृ. २५७।

आने से अधिक न था। सन् १९३६ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते समय उन्होंने स्वयं उपार्जित धन से जूते बनवाये।'[१]

जीवनपर्यन्त संघर्ष करते-करते वैष्णव जी अपने मार्ग में आगे बढ़ते रहे। शिक्षा पूर्ण कर आबकारी-विभाग में एक्साईज इंस्पेक्टर से असिस्टेंट एक्साइज कमिश्नर तक के पद पर पहुँचकर अवकाश ग्रहण किया। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी निरन्तर साहित्य-सृजन में जुटे रहे और आज पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी उसी लगन, मेहनत और साहस से जुटे रहते हैं। उनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली है—'छह फीट आधा इंच लम्बी सुदृढ़ स्वस्थ देहयष्टि, गेहूँआ रंग, सिर पर घनी काली केशराशि, जो न अधिक बड़ी है न अधिक छोटी ही। चौड़ा माथा, क्लीन-शैव्ड, सिर्फ नाक की सीध में ऊपर के होंठ पर मक्षिका सदृश मूँछों के कुछ बाल। मोटे काले फ्रेम के चशमे के भीतर झांकती दो गंभीर आंखे। जी हाँ! इसी व्यक्तित्व के धनी है वैष्णव जी, जिन्हें सूट-बूट में लम्बे डग रखते देख अनजान व्यक्ति यही अनुमान लगाता है कि ये किसी उच्च प्रशासनिक पद पर आसीन होगें।[२]

अशोक जी ने सभी विधाओं में कलम उठायी है, उनकी प्रकाशित रचनाएँ निम्न है—

साठोत्तर से पूर्व की रचनायें—

(क) उपन्यास :
१. चक्षुदान-१९४८ (वैज्ञानिक उपन्यास)
२. अन्न का आविष्कार-१९५२ (वै. उप.)
३. शैलवधू-१९५५ (आंचलिक उपन्यास)
४. दोपहर का अंधेरा-१९५८ (सामाजिक उप.)

(ख) कहानी :
१. अस्थिपंजर-१९४६ (विज्ञान-कथा संग्रह)
२. शैलगाथा-१९४९ (आंचलिक कथा संग्रह)
३. भेड़ और मनुष्य-१९५२ (युद्धकालीन सामाजिक कथा संग्रह)

(ग) निबंध :
१. उत्तर-प्रदेश में मद्य-निषेध-१९५० (सरकारी आबकारी नीति का इतिहास)
२. नशे का अभिशाप-१९५० (आबकारी नीति पर शोध-निबंध)
३. आबकारी डेन्जरस ड्रग्स, अफीम, गांजा अधिनियम तथा उपनियम-१९५५

(घ) विज्ञान लेखन :
१. सामान्य-विज्ञान भाग-१, २, व ३

---

१. वैज्ञानिक कथाकार यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' : जीवन और साहित्य, डा. राजकुमारी उपाध्याय, पृ. २५।

२. वही, पृ. ४२।.

साठोत्तरी रचनायें—

(क) उपन्यास :
१. अपराधी वैज्ञानिक-१९६१
२. ये पहाड़ी लोग-१९६३ (आंचलिक उपन्यास)
३. नयन-रश्मि (ब्रेल अक्षरों में) तीन भाग में-१९६८
४. राजुली मालूसाही-१९७३ (लोकगाथा पर)
५. हिमसुन्दरी-१९७१ (वैज्ञानिक उपन्यास)
६. स्वर्ण त्रिकोप की हीरोइन-१९८० (वै. उप.)
७. पर्वतारोही और पंगु- १९७३ (वैज्ञानिक उप.)
८. नियोगिता नारी-१९८७
(परखनली शिशु पर वैज्ञानिक उपन्यास)
९. भूत की वेदना-१९८६ (वैज्ञानिक उपन्यास)

(ख) कहानी संग्रह :
१. सूर्य की कहानी-१९६२
२. चांद तारों की कहानी-१९६२
३. अप्सरा का सम्मोहन-१९६३ (विज्ञानकथा संग्रह)
४. श्रेष्ठ वैज्ञानिक कहानियाँ-१९८५
५. श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ-१९८७

(ग) निबंध—
१. कुमाऊँनी बोली में वैदिक तथा सुमेरी शब्द-१९७४ (शोध-निबंध)
२. संस्कृति-संगम उत्तराचंल-१९७७
(प्राचीन संस्कृति पर शोध-निबंध)
३. द्रविण संस्कृति और विश्व मानवता लीवरपुश, मैनचेस्टर (इंग्लैण्ड) के विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत शोध निबंध-१९८७

(घ) इतिहास—
१. असुर बाप (इतिहास के दर्पण में)१९७२
२. असूर्या नाम ते लोका: असीरिया का इतिहास १९७३ से हिन्दी संस्थान में प्रकाशनार्थ स्वीकृत
३. कुमाऊँ का इतिहास (खस जाति के परिप्रेक्ष्य में १९७८
४. कूर्माचल (पर्यटन साहित्य) १९७६
५. कुमाऊँ गढ़वाल के दर्शनीय स्थल (पर्यटन साहित्य) १९७६

(ङ) यात्रा-विवरण—
१. द्रविण संस्कृति-१९८५ (दक्षिण भारत की भाषिक मानसिकता पर यात्रा लेख)
२. रोमांचक संस्कृतियाँ (स्वतंत्र भारत में धारावाहिक प्रकाशित)

(च) नाटक— १. मेरे श्रेष्ठ रेडियो नाटक

(छ) पर्वत भारती— शब्द-बोध पुस्तक अक्षर-ज्ञान के लिए (प्रौढ़ शिक्षा)

(ज) अंग्रेजी में— १. द हिमालयन डिस्ट्रिक्ट ऑफ उत्तर-प्रदेश-१९८० (पर्यटन साहित्य)

२. द ग्लोरी दैट वाज कुमाऊँ-१९८१ (पर्यटन साहित्य)

३. हिन्दुइज्म पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट-डॉ. एन.-जे. हाइम तथा लेखक द्वारा रचित।

कई संपादित कहानी संग्रहों में लेखक की कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं—नयी कहानी, प्रतिनिधि कहानियाँ, कथा-मानस और कहानी संगम में।

सन् १९६० के बाद यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने निरन्तर उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि की है। वैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में अशोकजी की ख्याति प्रमुख रूप से फैली है। पिछले दो दशकों में प्रकाशित वैज्ञानिक उपन्यासों में 'अपराधी वैज्ञानिक' का महत्त्वपूर्ण स्थान है—

अपराधी वैज्ञानिक

अफ्रीका निवासी अलीतामन के चुम्बक सम्बन्धी शोध कार्य से पता चलता है कि पृथ्वी की धुरी अस्थिर है। पृथ्वी की इसी अस्थिरता के कारण जल-प्रलय, हिम-प्रलय आदि आपदाओं को जन्म दिया है। अलीतामन ने पृथ्वी को अपने वश में करने और इच्छानुसार ताप एवं सूर्य के प्रकाश को व्यवस्थित कर पृथ्वी को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से प्रयोग नियमित रखे। सुकावा (अफ्रीका) की सरकार को अलीतामन के प्रयासों का पता लगा तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण अलितामन को पूर्व नियोजित प्रयोगों को पूरा करने का अवसर मिल गया। इसी बीच वह अपने मित्रों के साथ पाटनवाँ पहुँच जाता है। पाटनवाँ जाकर वह अपनी परिकल्पना की विभिन्न किरणों को किसी आकाशीय पिण्ड पर भेजकर भूलोक को डुलाने की पुष्टि में तल्लीन रहने लगा, अन्ततः उसे सफलता मिल ही गई।

एक बार अलीतामन द्वारा प्रेषित हटेजन तरंगों ने आपो-ग्लेशियर को स्खलित कर दिया। आपो-ग्लेशियर के स्खलन से आने वाली बाढ़ के कई घंटे पूर्व ही अलीतामन ने उसके आस-पास के नागरिकों को सावधान कर दिया, जिससे वे लोग अधिक प्रभावित नहीं हुए।

प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मुरलीधर ने स्नेह प्रदर्शित कर अलीतामन से उसे प्रयोग सम्बन्धी रहस्यों को जान लिया। मुरलीधर के छलावे में आकर अलीतामन ने उसे अपनी योजना में सम्मिलित कर लिया। एक दिन माइकेल से बात करते हुए उसे मुरलीधर पर सन्देह हो गया। उसने अपनी प्रयोग की गोपनीयता के लिए परमाणु पिस्तौल से मुरलीधर पर अदृश्य घातक किरणों से आक्रमण कर दिया। सतर्क

मुरलीधर के हाथों में स्थित क्वार्ट्ज पत्थर ने इन किरणों को परिवर्द्धित कर दिया। फलतः भयंकर विकिरण मुरलीधर के शरीर के माध्यम से जमीन में समा गया। सामान्य व्यक्ति के लिए यह मृत्यु हृदयगति रूकने के कारण हुई, किन्तु सुरक्षा अधिकारियों ने वस्तुस्थिति समझकर अलीतामन को बन्दी बना लिया।

इस आधिकारिक कथा के बीच प्रमुख प्रासंगिक कथा प्रतिमा तथा महेन्द्र की कथा आती है। इस प्रेमकथा में प्रतिमा का महेन्द्र से विछोह और अन्त में मिलन कथानक की रोचकता में वृद्धि करता है। कथा के बीच में विभिन्न वैज्ञानिक कल्पनाओं का समावेश क्रमबद्धता तोड़ता सा लगता है। इन कल्पनाओं से कथानक की सहजता में भी कमी आती है। ऐतिहासिकता भी थोपी गई सी लगती है।

उपन्यास का प्रमुख पात्र अलीतामन है, जो बहुत कर्मठ, जिज्ञासु एवं लगनशील है, जो अनेक बाधाओं के आने पर भी अन्त तक प्रयोग में लीन रहता है। एक अच्छे वैज्ञानिक के सभी गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व है। मुरलीधर कूटनीतिज्ञ एवं जिज्ञासु है। अलीतामन के रहस्य को जानने के लिए प्राणों से हाथ धो बैठता है। बनावटी स्नेह प्रदर्शित कर अलीतामन को खुश किये रहता है, किन्तु अन्त में सत्य का उद्घाटन होते ही उसका अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। थापा एक विनीत, बुद्धिमान और मेहनती पहाड़ी मजदूर है। लेखक ने उसका चित्रण बड़ी सफलता से किया है। महेन्द्र और प्रतिमा प्रेमी-प्रेमिका के रूप में चित्रित किए गए हैं। इन पात्रों की योजना उपन्यास में सरलता लाने के उद्देश्य से की गई है। उपन्यास की भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। पात्रानुकूल भाषा नहीं बन पड़ी है, फिर भी वैज्ञानिक शब्दों को सामान्य पाठक के लिए बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है।

सम्पूर्ण उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक बोध का सामंजस्य ठीक-ठीक नहीं हो पाता। पृथ्वी का अपनी धुरी पर झुकी रहना, पृथ्वी के झुकाव के कारण मौसम में परिवर्तन की संभावना तथा कारणों को स्पष्ट करते हुए समस्या के समाधान को उपन्यासकार ने अपना उद्देश्य बनाया है। विभिन्न परीक्षणों से सिद्ध किया है कि पिछले हिम युग का अन्त ११,००० वर्ष पूर्व हुआ था। हिम-प्रलय का कारण पृथ्वी का झुकाव माना है। अपनी धुरी पर पृथ्वी ७२ वर्षों में एक डिग्री और झुकती है। इसी संक्रमण से ऋतुओं में भी परिवर्तन होता है, इस तथ्य को उजागर किया गया है। पृथ्वी की धुरी को सचल बनाकर, हिम से पूर्व ध्रुवों को सूर्य के ताप के सम्मुख लाकर बर्फ पिघला दी जाये, जिससे ये ध्रुव भी मानव के रहने लायक हो जाये। इसी उद्देश्य को अलीतामन के चुम्बकत्व प्रयोग से सफल सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। अलीतामन चुम्बक के समान ध्रुवों का विकर्षण वाले सिद्धान्त को ध्यान में रखकर पृथ्वी के समान सशक्त चुम्बकत्व उत्पन्न कर पृथ्वी को दोलायमान बनाने हेतु प्रयोग करता है। पृथ्वी के अपने वृत्त से सम्बन्धित भारतीय ज्योतिष की चर्चा भी यथास्थान हुई है— 'चारों संपात बिन्दु जिस गोलाकार परिधि में

हैं, उसे भारतीय ज्योतिषियों ने २७ भागों में बाँटा है। एक भाग को एक नक्षत्र कहते हैं। भारतीय गणना के अनुसार उत्तरायण-दक्षिणायन और संपात बिन्दु ७३ वर्षों में एक अंश पीछे हटते हैं। इस प्रकार लगभग ९५० वर्ष में वे उस गोलार्द्ध के सत्ताइसवें भाग अर्थात् एक नक्षत्र पीछे हट जाते हैं।'[१]

लेखक का कथन है कि परमाणु-शक्ति का परीक्षण पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति में भयानक क्षोभ पैदा करता है और—'न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार अट्ठारह हजार मील प्रति घण्टा की चाल से पृथ्वी से छूटने वाले भारी रॉकेट की क्रिया पृथ्वी पर भी उसी परिणाम से प्रतिक्रिया उत्पन्न करेगी। वह ठेस उसके सन्तुलन को गड़बड़ा देगी।'[२]

लेखक ने सूरमा सिंह के ठेके में कार्यरत मजदूर गुरंग की उछल-कूद और थापा की बीमारी का जिक्र करके बिमारी विशेष के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अवसर भी निकाल लिया है, जो हिन्दी साहित्य में अनूठा प्रयोग है—'अवैध यौन संबंधी, जारज सन्तानों तथा भयानक अपराध जैसी गुह्य बातें तो वह मरते दम तक भी किसी दूसरे पर प्रकट नहीं करता। इन बातों को मन की गहराइयों में छिपाने के प्रयत्न में अन्तर्मन पर जो तनाव पड़ता है, उससे अनेक मानसिक जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं और वे ही अन्तर्मन की ग्रंथियों की उत्पत्ति का कारण होती हैं, जो कालान्तर में विभिन्न शारीरिक पीड़ाओं और व्याधियों को जन्म देती हैं।'[३]

अन्त में कहा जा सकता है कि एक क्रान्तिकारी वैज्ञानिक चिन्तन को इसमें मूर्त रूप प्रदान किया गया है।

हिमसुन्दरी

'हिम-सुन्दरी' कथावस्तु की मौलिकता, नूतन चरित्रकल्पना, रोचक शैली, महत् ऐतिहासिक उद्देश्य एवं मौलिक वैज्ञानिक भावबोध आदि के कारण हिन्दी उपन्यास जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।'[४]

'हिम-सुन्दरी' का प्रकाशन सन् १९७१ में हुआ। यह वैष्णव जी का चौथा वैज्ञानिक उपन्यास है। सौरेन्द्र सेन के नेतृत्व में इतिहास का शोध-छात्र अविनाश राय, पुराविद् कालविग तथा डॉ. सिन्हा आदि हिमालय की यात्रा में गये। हिमालय में पहुँचकर इस अभियान दल ने हिम की पर्त खिसक जाने से उसके नीचे निकले कई शवों को देखा। यहीं पर इस दल को शाल लिपटा एक युवती का शव भी मिला। इस युवती के शव को दिल्ली भेज दिया गया। शव को कृत्रिम श्वास, रक्त तथा प्रकाश तरंगों से जिलाने का प्रयास किया गया। वैज्ञानिकों ने परीक्षण के दौरान यह सिद्ध किया कि यह शव लगभग १००० वर्ष पुराना है।

१. अपराधी वैज्ञानिक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' पृ. १७९
२. अपराधी वैज्ञानिक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' पृ. १८५
३. अपराधी वैज्ञानिक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' पृ. ११९
४. वैज्ञानिक कथाकार यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', डॉ. राजकुमारी उपाध्याय, पृ. १४३

हिमालय की यात्रा के दौरान इस अभियान दल का परिचय शेरपा जाति की एक स्त्री छिला से हुआ था। हिमसुन्दरी के प्रयोग से पता चला कि वह शेरपा जाति की ही पूर्वज है। छिला के हृदय को हिम सुन्दरी में प्रत्यारोपित करने की नेगी की इच्छा का अनुमोदन कोई नहीं करता। हिम सुन्दरी को पुनर्जीवित करने में बहुत समय लग गया। अन्ततः क्लीचोव अपने देश को लौट गया। वैज्ञानिक अन्त तक इसी आशा में रहते हैं कि सघन प्रशीत उपचार से हिम सुन्दरी को पुनर्जीवित किया जा सकता है।

उपन्यास का कथानक सुसम्बद्ध एवं रोचक है। अभियान दल और हिम-सुन्दरी को पुनर्जीवित करने की कथा आधिकारिक है और रावल की प्रासंगिक दोनों कथाएँ समान महत्त्व की है। रावल की कथा प्रत्यक्षतः घटित नहीं होती, यह आत्मकथात्मक शैली में विस्तार से सुनाई जाती है। कथानक में रोचकता के लिए शेरपा कन्या छिला और राय का प्रेम-प्रसंग कथानक को गतिशील-भी बनाता है। उपन्यासकार छिला के हृदय को प्रत्यारोपित करने की चर्चा कर वैज्ञानिकों के कठोर हृदय का भी संकेत करता है। इस उपन्यास में आदिगुरू शंकराचार्य से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों को भी अधिक उभारा गया है, जिससे ऐतिहासिक विश्लेषण अधिक होने के कारण कथानक की सहजता में बाधा सी प्रतीत होती है, किन्तु यह प्राचीन रहस्यों के साथ ही वैज्ञानिक विश्लेषण भी साथ-साथ प्रस्तुत करता है—'काय तो आठ प्रकार के प्राचीन विवाहों में एक प्रकार का विवाह भी है, इसे प्रजापात्य भी कहते हैं। इसलिए ब्रह्मचारी आदि शंकर द्वारा वहाँ मृत राजा के काय में प्रवेश करने का अर्थ स्पष्ट है।'[१]

उपन्यासकार ने छिला का चरित्र-चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया है, यद्यपि उसकी मनःस्थिति का उद्घाटन कहीं भी नहीं हुआ है—'छोटे कद की नन्हीं सी छिला के सिर के सुनहरे बाल घुटनों तक लम्बे हैं····उसके गौरवर्ण से मुखमण्डल पर गुलाब की आभा और वैसी ही सुकुमारता है। उसके होंठ अन्य तिब्बती महिलाओं की भांति मोटे नहीं हैं, न भृकुटियाँ ही केश रहित हैं। अगाध नील सरोवर सी उसकी आँखें हैं।'[२]

पुरुष पात्रों में प्रमुख स्थान रावल का है। वह मानव जाति की दुर्बलताओं से ग्रस्त है। रावल के माध्यम से ऐतिहासिक विवरणों को पाठक तक पहुँचाया गया है। राय गम्भीर प्रकृति का अध्ययनशील छात्र हैं। उसकी अधिकांश शिक्षा विदेश में हुई है। सुन्दरी छिला के संसर्ग में आकर प्रेम जैसा अमूर्त तत्त्व उसमें उभरने लगता है जो एकपक्षीय होने के कारण विकसित नहीं हो पाता। छिला की अधिकांश चारित्रिक विशेषताएं उसके माध्यम से उजागर होती हैं।

संवादों की दृष्टि से भी 'हिमसुन्दरी' प्रभावपूर्ण है। इसके संवाद चरित्रचित्रण में सहायक, कथा को मोड़ देने वाले, घटनाचक्र को व्यवस्थित करने में सक्षम, वातावरण निर्माण में सहायक, स्वाभाविक और सशक्त है। ऐतिहासिकता और वैज्ञानिक स्थलों

१. हिमसुन्दरी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. १४६
२. हिमसुन्दरी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. ७-८

पर ये गंभीर विश्लेषक एवं विवेचनात्मक हो जाते हैं तो दूसरी ओर साधारण बातचीत के समय संक्षिप्त मार्मिक तथा प्रवाहपूर्ण पात्रानुकूलता भी इनमें विद्यमान है। छिला, तालची, मालची आदि के संवादों में तिब्बती भाषा के शब्दों का प्रयोग है। संवाद प्रायः लम्बे तथा व्याख्यात्मक है। यथास्थान मनोरंजक संवादों की योजना भी हुई है।

भाषा सरल है। विदेशी पात्रों के मुँह से हिन्दी शब्दों का प्रयोग पात्रानुकूल नहीं कहा जा सकता है। कहीं-कहीं पर संस्कृत श्लोक एवं बोलचाल की अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी किया गया है।

उपन्यास में विभिन्न शैलियाँ अपनाई गई हैं। हिमालय (तिब्बत) की भौगोलिक जानकारी देने के लिए विवेचनात्मक स्मृतियों को ताजा करने के लिए डायरी और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

उपन्यास दो निश्चित उद्देश्य को लेकर चला है। एक ओर सघन प्रशीतक उपचार जैसी न्यूनतम संभावना को प्रस्तुत करते हुए इसका विशुद्ध विवेचन एवं रोचक विश्लेषण करता है। दूसरी ओर, विशेषकर कस्साइट जाति के परिप्रेक्ष्य में इतिहास के गर्त में छिपे तिब्बत के इतिहास से संबंधित अनेक तथ्यों को प्रकाश में लाता है और शंकराचार्य के दर्शन तथा उनसे संबंधित जन-साधारण में प्रचलित अनेक मान्यताओं की ऐतिहासिक समीक्षा प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार जीव-विज्ञान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विषय को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु की मौलिकता, नूतन चरित्रकल्पना, रोचक शैली, महत् ऐतिहासिक उद्देश्य एवं मौलिक वैज्ञानिक भावबोध आदि के कारण हिन्दी उपन्यास जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

कथा का अन्त भी स्वाभाविक बना रहता है—'····उसने हमें विश्वास दिलाया कि हिमसुन्दरी जीवित है और उसको देखकर मुसकराने का प्रयत्न कर रही है, छिला की बात सच निकली। यद्यपि उस पुनर्जीवन के बाद भी दो-तीन बार हमें हिमसुन्दरी को प्राणान्त से बचाना पड़ा, पर अन्त में उसे पूरी तरह से पुनजीर्वित करने में हम सफल हो गए।'[१]

ये पहाड़ी लोग

'ये पहाड़ी लोग' नामक उपन्यास वैष्णव जी का दूसरा आंचलिक उपन्यास है। इसके प्रथम दो अध्याय 'मंसूरी की सर्वोत्तम रात' शीर्षक कहानी के रूप में सन् १९४२ में माया में प्रकाशित हुई। यही लम्बी कहानी लेखक के कहानी संग्रह 'अस्थिपंजर' में भी संगृहीत की गई।

यह रचना एक ओर एक वर्ग विशेष डोटियालों (नेपाली मजदूरों) जिनका कार्य क्षेत्र कुमाऊँ-गढ़वाल अंचल है, के धर्म संस्कृति, रीतिरिवाज, प्रकृति-विकृति का मूर्त

२. हिमसुन्दरी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. २४७

एवं सांगोपांग चित्रण करती है, दूसरी ओर उनसे काम लेने वाले पढ़े-लिखे अफसरों की प्रकृति पर करारा व्यंग्य करती है।

मिस्टर माथुर हर वर्ष की भांति छुट्टियाँ बिताने मंसूरी आते हैं। एक धनी पर्यटक की भांति काफी धन खर्च करते हैं। नृत्यशाला में वे सात-सात रूपये 'टिप' में ही दे दिया करते थे, किन्तु कुलियों को चार कोस की दूरी का पौने दो रूपये से एक भी पैसा अधिक नहीं देते। एक दिन बलवीर और खड़क ने निर्धारित दो रूपये की मांग की किन्तु उन्हें झिड़क खानी पड़ी। उसी दिन रात्रि में सोते समय बलवीर ने देखा कि साहब उनके रिक्शे में रूपयों से भरा हुआ बटुवा सहित कोट भूल गये हैं। तुरन्त दो आदमी चार कोस पैदल जाकर कोट वापस लौटा आते हैं, बदले में उन ईमानदार मजदूरों पर चोरी का आरोप ही लगता है।

कुछ दिन बाद कुमाऊँ के तराई में विघटित अफसरों एवं गरीब पहाड़ी लोगों में जमीन आबंटन हेतु योजना बनी। इस योजना का कार्य सम्पन्न करने का दायित्व मि. माथुर पर था। खड़क और मनबहादुर ने भी आवेदन किया। जाते समय मि. माथुर की गलती से उन्हें छर्रे लग जाते हैं। मनबहादुर वहीं दम तोड़ देता है, किन्तु खड़क के बयान ने मि. माथुर को सम्भावित मुसीबत से बचा लिया।

कुछ समय बाद मजदूरों के आह्वान पर न्यायिक जाँच हुई, दोषी माथुर को निलम्बित किया गया। मि. माथुर समय बिताने अपने ससुराल नैनीताल की ओर चल पड़े। नैनीताल बस स्टेशन पर जाकर माथुर की पत्नी ने सामान को कोट से ढक लिया और किसी कार्यवश एक दुकान में चली गई। इस बीच मि. माथुर को शीला व उसके पिता जी मिले। शीला ने ठिठुरते पिता को सामान के ऊपर रखा कोट पहना दिया। सामान बलवीर को घर पहुँचाने हेतु सौंप दिया। मि. माथुन निश्चिन्त होकर किसी मित्र के घर चले गये। उनकी पत्नी ने बलवीर पर कोट की चोरी लगाकर उसे बन्द करवा दिया। मि. माथुर को जब सब बातें मालूम हुई तो उन्होंने शीला से कोट लेकर तालाब में डुबा दिया। किन्तु सही बात बताने का उन्हें साहस न हुआ।

उपन्यास में दो अलग-अलग कथाएँ आद्यन्त चलती हैं, दोनों सर्वथा विपरीत वर्गों से संबंधित हैं। एक है समाज में सम्भ्रान्त व सुशिक्षित कहलाया जाने वाला वर्ग जो स्वयं से उच्च अधिकारियों के सम्मुख पूँछ हिलाने और मातहतों को नितान्त तुच्छ मानवेतर प्राणी समझने में ही अपना बड़प्पन समझता है। दूसरा वर्ग है संसार की तमाम वैज्ञानिक सुख-सुविधाओं और विलासिता के बीच रहते हुए भी इनसे सर्वथा अछूता गरीब पहाड़ी मजदूर वर्ग। 'इस निर्दोष दब्बू कुली को अपनी गली में देख वह मरियल कुत्ता भी, जिसकी पूँछ महीनों से टाँगों से बाहर न निकली हो, शेर बन जाता है।'[१] अत्यधिक कर्मठ होते हुए भी यह वर्ग जहाँ एक ओर नितान्त उपेक्षित एवं अभावग्रस्त है, वहीं अपनी ईमानदारी में अप्रतिम भी।

---

१. ये पहाड़ी लोग, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. २६

उपन्यास के पात्र भी दो भिन्न वर्गों के हैं। मि. माथुर, ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट, कप्तान साहब, शीला पादरी आदि उच्चवर्गीय चेतना के प्रतिनिधि है, तो बलवीर, मनबहादुर, मनीराम, खडकू आदि निम्न वर्ग चेतना के। मि. माथुर सरकारी कानूनों का पालन कराने में नीति, अनीति, अनाचार अथवा सदाचार के प्रति नितान्त उदासीन भाव से कमिश्नरों की चाटुकारी तथा मातहतों के प्रति उपेक्षा से कार्य करता है। अंग्रेजी रहन-सहन के प्रति अंधी दौड़ उनके बोलचाल में भी निहित है—'डैम इट, कितनी बार कह दिया, सरकारी डाक हम सुबह दस बजे दफ्तर में देखता है, फिर भी ये मूर्ख, ये पहाड़ी समझते नहीं'।[१]

निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व बलवीर करता है। उसके माध्यम से लेखक ने इस वर्ग की पारिवारिक दशा, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण किया है। ये सभी पात्र वर्गानुकूल आचरण करते हैं। मनबहादुर, मनीराम, खडकू आदि कुली जीवन जीने के लिए आजीविका की खोज में अपने मूल प्रदेश डोटी को छोड़कर कुमाऊँ, गढ़वाल के शहरों में आ चुके हैं। इनके पास न खेत हैं, न निश्चित व्यवसाय और न अपना कोई घर। इनके चरित्र में कोई उलझाव नहीं, दुराव नहीं, विद्रोह नही, अपितु समझौता है। यह वर्ग न केवल अभावग्रस्त है, अपितु अशिक्षा व अज्ञानजन्य अनेक बुराईयों—छुआछूत, जात-पात, संस्कारों पर अत्यधिक व्यय करने की प्रवृत्ति से आक्रान्त है। यह वर्ग गरीब ही नहीं, अपितु सर्वाधिक उपेक्षित भी है। मनीराम के शब्दों में इनकी दशा—'हम तो बस बोझ ढोना ही जानते हैं। यही एक काम हमसे निभ सकता है और हमें सुहाता है। बलवीर को ही देखो, उसकी मां ने मकान बना लिया था। दो-चार खेत भी लिए थे। लेकिन क्या वह सुखी थी ? जब से वे दोनों उस गांव को छोड़कर गये, सुख से हैं।'[२]

आंचलिक उपन्यासों के सर्वथा अनुकूल रचना में चित्रात्मक शैली का अधिकांशत: प्रयोग हुआ है। लेखक ने डोडियालों के रीति-रिवाज, संस्कृति-सभ्यता, जय-पराजय, अतृप्त इच्छाओं, सामाजिक परिस्थितियों के छुटपुट फोटोग्राफ से प्रस्तुत किये हैं। कुल मिलाकर यह उपन्यास आंचलिक उपन्यासों में गौरवपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

राजुली मालूसाही

कूर्माचल में सुनपति शौक (स्वर्णपति शक) की कन्या राजुली और विराट (वर्तमान द्वाराहाट) के राजकुमार मालू की प्रेम गाथा बहुत प्रसिद्ध है। डॉ. त्रिलोचन पाण्डे के अनुसार वह 'कुमाऊँ का एक जातीय महाकाव्य'[३] है। 'मालूसाही' की यह प्रणयकथा श्रुति और स्मृतियों के परम्परानुसार कुमाऊँ की ट्रोणियों में, 'बादियों और हुड़कियों'[४] तथा उनकी सन्तानों द्वारा कण्ठाग्र करके सुनाई जाती रही है।

विराट के राजकुमार मालूसाह की राजाओं में सर्वश्रेष्ठता सुनकर सुनपति की

---

१. ये पहाड़ी लोग, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. ५३
२. ये पहाड़ी लोग, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', पृ. ७५
३. कुमाउँनी भाषा और उसका साहित्य, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. २२९
४. गा-बजाकर जीवन यापन करने वाली जातियाँ।

इकलौती पुत्री राजुली ने मन ही मन उसे वरण लिया। इससे पूर्व ही सुनपति ने अपार धन के लालच में हूण सरदार ऋषिपाल को अपनी कन्या देने का वचन दे चुका था। शरद ऋतु के आगमन पर सुनपति उत्तर दिशा के हिम दर्रों को पार कर दक्षिण की ओर उतर आया। इस यात्रा के दौरान माता गांगुली की सहायता से राजूली मालू की प्रशंसा से आकर्षित होकर विराट देश पहुँच गई। मालू से भेंट, कामातुरता, प्रेम और अभिसार की बातें जानकर सुनपति ने शीघ्र आगे की ओर प्रस्थान किया। इस आकस्मिक यात्रा के दौरान राजुला मालू को सूचना नहीं दे सकी।

एक बार स्वप्न में मालू को उद्विग्न देखकर राजुली पुरुष वेश धारणकर विराट देश की राजधानी पहुँच गई। राजुली के गले में बँधे ताबीज के खुल जाने से उत्पन्न गंध ने राजधानी के सभी प्रहरियों, व्यक्तियों सहित मालू को भी निद्रा में डुबा दिया। राजकुमार को सोता जानकर राजुली, अपने आगमन की सूचना एवं ऋषिपाल से विवाह की सूचना एवं मुक्ति दिलाने का आग्रह एक पत्र पर लिखकर चली गई। पत्र पढ़ते ही मालू योगी के वेश में सुनपति के महल में चला गया। सुनपति को इसका पता चल गया। उसने मालू को जहर देकर बर्फयुक्त गुफा में डलवा दिया और ऋषिपाल को बारात लेकर आने का निमन्त्रण दे दिया। पुत्री राजुला की इच्छा के विपरीत ऋषिपाल ने विवाह कर लिया। ऋषिपाल को पति रूप में स्वीकार न करने के कारण उसने राजुला को किले में बन्द कर दिया। मालू के मामा मिरतू ने सेना सहित सुनपति पर आक्रमण कर उसे मार डाला। विराट राजदरबार के दो तांत्रिक अभिनेताओं ने मालू के डूने शिष्य की सहायता से मालू का मृत शरीर ढूँढकर विभिन्न प्रकार के लेपनों तथा तंत्र-मंत्रों से उसे पुनर्जीवित करने में सफलता प्राप्त कर ली। इसी बीच टिट्या पक्षी से मालू व राजुली के सुरक्षित लौट आने का समाचार सुन शौक्याण में इन दोनों के विवाह की तैयारी होने लगी। इस बीच डुने पंडित की सहायता से मिरतू ने राजूली की मां से विवाह कर लिया। राजूली एवं मालू के देर से पहुँचने के कारण विवाह मुहूर्त टल गया और सभी विराटदेश को प्रस्थित हुए। यही विवेच्य उपन्यास का कथानक है।

मालूसाही की कथा में अनेक रूप मिलते हैं, जिनमें तांत्रिक विद्या से सम्बन्धित ताबीज आदि का वर्णन है, किन्तु अशोक जी ने तिब्बत की नृत्य शैली का सहारा लेकर कथानक को सहज रूप दिया है। ताबीज के स्थान पर पशुपक्षियों के मुखौटे लगाकर मालू की सफलता नितान्त काल्पनिक नहीं रह जाती, मालू को जहर देकर मृत न घोषित कर अचेत घोषित किया है। मानवेतर पात्रों की संयोजना तथा उनका असाधारण चमत्कार लोक-साहित्य के प्रभाव की ओर संकेत करता है।

उपन्यास के सभी पात्र कुमाऊँ के अंचल से सम्बद्ध है, उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि पर कुमाऊँ अंचल का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है। मुख्य पात्र राजुला एवं मालूसाही ही है। अन्य पात्रों में सुनपति व ऋषिपाल मुख्य है। सुनपति बहुत धनी होते हुए भी लालची है। सभी पात्र सजीव है, कथानक को

गतिशील बनाये रखने के लिए संवादों के माध्यम से चरित्र का उद्घाटन बड़ी कुशलता से किया गया है। राजुली धनी पिता की कन्या होते हुए भी कफिले के साथ परिश्रमी एवं यायावरी जीवन व्यतीत करती है—'सबेरे अपने शिविर की दुग्धशाला का प्रबन्ध देखती है, ढांकर की ब्याही चामरी गायों और बकरियों का दूध दुहती, मट्ठा और पनीर बनवाती, उसके उपरान्त सुनपति की पाकशाला के काम में जुटी रहती। दोपहर तक शिविर में सबकी भोजन-व्यवस्था करके दिन में किसी कालीन की चौखट की राछों पर काम करती, तो कभी किसी अधूरी लोई या पंखी को बुनने में लग जाती। दिन ढलते समय वह पहाड़ी के उस पार जंगलों में चली जाती और वहाँ से गोधूलि बेला के समय बकरियों, भेड़ों तथा चामर गायों के झुण्डों के साथ लिए लौटती है।'[१] कहीं-कहीं पर प्रकृति का भी मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'....अगले दिन घाटी में पीला कोहरा छाया था और शाम तक रूक-रूक कर बर्फ गिरने लगी थी।.... कभी-कभी हिम के फाहे टिड्डी दल की भाँति काफिले के ऊपर उड़ते हुए निकल जाते और फिर कभी-कभी ठोस हिम के छोटे-छोटे बिन्दु शीतल स्फुलिंगों की भाँति उनके उघड़े चेहरों पर डंक से मारने लगते। ....देवदार, सनोवर और सुरई के सदाबहार वृक्षों ने भी अपना गहरा हरा रंग बदलना आरम्भ कर दिया था। उन पर लटकती सूखी बेलों पर यत्र-तत्र लाल रंग की कोपलें निकल आई थीं। हिम के आवरण से मुक्त ढलवानों पर सिक्फोड़ के हल्के गुलाबी फूल दीपमालाओं की भाँति टिमटिमाते दृष्टिगोचर हो रहे थे।[२] 'इस प्रकार का चित्रण पाठक को न केवल शौक लोगों से, अपितु उस माटी से भी, जहाँ ये लोग विचरण करते हैं जोड़ देता है।'[३]

वस्तुतः यह रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया कूर्मांचल का सांस्कृतिक इतिहास है। इसे मिथक पर आधारित प्रेमाख्यान न कहकर ऐतिहासिक उपन्यास कहना ही समीचीन लगता है।

दोपहर का अँधेरा

समसामयिक जीवन पर आधारित लेखक का एकमात्र सामाजिक उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् १९६० में हुआ। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का बारीकी से उद्घाटन करते हुए भ्रष्ट शासन-व्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार किया है।

ईमानदार तहसीलदार रामप्रसाद सच्चाई के मार्ग में रहने के कारण हमेशा असफल रहता है। वह सही सूचना अधिकारियों तक पहुँचाता है। इसके बदले में उस पर विक्षिप्त होने का आरोप लगाया जाता है। अन्ततः वह झुकता नहीं, अपना मार्ग

---

१. राजुली मालूसाही, पृ. ५९

२. राजुली मालूसाही, पृ. ३

३. श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' का जीवन और साहित्य, डॉ. राजकुमारी उपाध्याय, पृ. १६७

बदल देता है। वह सक्रिय राजनीति में आ जाता है। उसकी आस्था जनता की सच्ची सेवा में है। वह एक आदर्श एवं स्थिर पात्र है। अन्य पात्रों के बारे में—डॉ. भगत सिंह के विचार—'दर्शनलाल राजस्व विभाग में दरोगा पुलिस विभाग में, डा. भीमराज स्वास्थ्य-विभाग में व्याप्त भ्रष्ट रिश्वतखोर कर्मचारियों के प्रतीक हैं।'[१]

उपन्यास के सभी संवाद स्वाभाविक, मार्मिक, घटनाक्रम को व्यवस्थित करने वाले तथा चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने में सफल हैं। भाषा पात्रानुकूल है। बीज गोदाम के सुपरवाइजर चन्द्रकान्त के दो संवाद लिए जा सकते हैं—

'बक-बक मत कर, अनाज तोल कर लिया जाता है, नापकर नहीं। मजाक समझ रखा है। यह बनिये की दुकान नहीं सरकारी गोदाम हैं—सरकारी गोदाम।'[२]

उसी के ये शब्द रामप्रसाद तहसीलदार के सम्मुख—'जी, जी हुजूर, मैं सरकार, इस मुहकमें में ही नया आया हूँ। ....जी सरकार, गरीब परवर ! दस वर्ष तो मैंने राजा गंगावल के दरबार में काम किया.... ।'[३]

रचना निश्चित उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। लक्ष्य है व्यवस्था की कुरूपता को उद्घाटित करना। इस उद्देश्य में लेखक सफल रहा है।

भूत की वेदना

साक्षरता निकेतन के निदेशक श्री गणेश शंकर चौधरी के शब्दों में—'साक्षरता निकेतन में भी अपने अनुगमन साहित्य का उद्देश्य अंधविश्वास उन्मूलन भी बनाया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री यमुनादत्त वैष्णवजी की यह कथा 'भूत की वेदना' प्रकाशित की जा रही है।'[४]

प्रस्तुत कृति को लेखक ने 'लघु उपन्यास' की संज्ञा दी है, किन्तु घटनाक्रम एवं संक्षिप्तता तथा न्यून पात्रों के अवतरण को देखते हुए यह एक लम्बी कहानी के सदृश ही लगती है, जिसका मुख्य उद्देश्य कूर्माचल अथवा ग्रामांचलों में फैले अंधविश्वास का वैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषण कर उसका निराकरण करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु लेखक ने पर्वतीय अंचल में अनिष्ट निवारणार्थ परम्परागत रूप से चलने वाले गंगनाथ के जागर को माध्यम बनाया है। इसमें जागर लगने के कारणों का भी उल्लेख किया है, साथ ही दूरांचलों एवं विदेशों में बसे भारतीयों के मन में भी उसके अंधविश्वास से व्याप्त भय को दूर करने का प्रयास किया है। लेखक ने डॉ. आभा को कृति की मुख्यपात्रा के रूप में लेकर स्पष्ट किया है कि मस्तिष्क रोग विशेषज्ञ होने के बाद भी उसे रूढ़िग्रस्त भावना के पोषक मानसिक स्थिति का विकार समझते हैं।

---

१. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, पृ. २७०

२. दोपहर का अँधेरा, पृ. १२७

३. दोपहर का अँधेरा, पृ. १३१

४. भूत का वेदना, प्रकाशकीय वक्तव्य

कथानक की रोचकता के लिए लेखक ने ओनि (घसीटाराम बाल्मीकि) का प्रसंग जोड़कर जातीयता की कट्टर भावना को भी खंडित करने का प्रयास किया है। स्वयं घसीटाराम के शब्दों में—'उनकी रसोई के बर्तन कहाँ से चुराये गये थे। यह जानने के लिए मुझे उनके चुल्हे-चौके और भण्डारगृह में घुसना पड़ा था। मैं सब काम सम्पन्न कर चुका। तब उन्हें जाति का पता चला और उन्होंने मुझे खूब खरी-खोटी सुनाई। फिर अपने चुल्हे की ईटें उखाड़ फेंकी। एक-एक करके सिलबट्टा और रहे-सहे बर्तन भी बाहर डाल दिये। मेरी ओर ऐसी घृणा से देखा मानों मैं कोई खुजलीग्रस्त सड़ियल कुत्ता हूँ और अपनी भूख मिटाने चोरी से उनकी रसोई में घुस पड़ा हूँ।'[१]

जहाँ तक कथानक का प्रश्न है, वह कहीं पर भी मर्मस्पर्शी नहीं लगा। लेखक ने कथ्य को कहने के लिए ही कथानक का फ्रेम ग्रहण किया है। अन्त में एक आदर्शात्मक दृष्टिकोण सामने रखा है, जब डॉ. आभा घसीटाराम के साथ प्रणय संबंध स्थापित करने को तैयार हो जाती। धनी कैप्टन को भी ठुकरा देती है। गंगनाथ के जागर को लेखक ने लोकभाषा में ज्यों का त्यों देकर कोष्टक में उसका हिन्दी अर्थ भी समझाया है। इसके माध्यम से मूल कथ्य जनसमाज के सम्मुख रखकर व्यर्थ की अंध-परम्परा को नकारने का संकेत भी किया है।

नियोगिता नारी

यह लेखक का सन् १९८७ में अमित प्रकाशन, गाजियाबाद से प्रकाशित वैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें 'नियोग' के द्वारा परखनली शिशु संबंधी वैज्ञानिक तथ्य की जानकारी देता है। एक नारी बांझ दम्पति की खुशी के लिए उनका शुक्र एवं रजकणों को लेकर अपने गर्भाशय में प्रवेश कराकर सन्तान होने की खुशी देती है, साथ ही एक वैज्ञानिक उपलब्धि का भी परिचय देती है। 'नियोग' का अर्थ भी इसी बात की पुष्टि करता है।

हिमांशु जोशी

हिमांशु जोशी अपनी पीढ़ी के अग्रणी कथाकारों में हैं। आपका जन्म अल्मोड़ा जिले के चम्पावत[२] तहसील के खेतीखान नामक स्थान पर हुआ। प्रकृति के सान्निध्य का आपके जीवन में गहरा प्रभाव पड़ा। इस अंचल की दयनीय, जर्जर आर्थिक परिस्थितियाँ, सरकारी कर्मचारियों का आतंक एवं भोलीभाली जनता का शोषण, प्रतारण, वन-सम्पदा का अनियमित रूप से दोहन अपनी आँखों से देखा भला है। इसी कारण आपकी कहानियों में, उपन्यासों में वहाँ का सजीव चित्र उभरा है। हरिजन एवं पिछड़ी जातियों पर होने वाले अत्याचारों को भी बड़ी रोचकता से उकेरकर अपने उपन्यासों का कथ्य चुना है। आपके उपन्यासों का कई भाषाओं में रूपान्तर हो चुका है। आपकी रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

---

१. भूत की वेदना, पृ.

२. अब चम्पावत तहसील १९७२ के बाद जिला पिथौरागढ़ में सम्मिलित कर ली गई है।

(क) उपन्यास— १. तुम्हारे लिए, २. अरण्य, ३. कगार की आग, ४. छाया मत छूना मन, ५. सुराज, ६. समय साक्षी है, ७. महासागर, ८. उत्तर-पर्व

(ख) कहानी— १. जलते हुए डैने (कहानी संग्रह), २. मनुष्यचिह्न (कहानी संग्रह), ३.रथ्यचक्र (कहानी-संग्रह), ४. हिम का हाथी (बाल कहानियाँ), ५. बचपन की याद रही कहानियाँ।

बुरॉश फूलते तो हैं

जोशी जी का 'अरण्य' उपन्यास भी इसी कथानक पर आधारित है। मात्र शीर्षक अलग है। खेतीखान से लगभग अट्ठारह-बीस मील की दूरी पर वामनों का एक गाँव है, जिसमें वृद्ध माधव प्रधान दिन-रात पथरीली भूमि में मेहनत करके जीवन-निर्वाह कर रहे थे।

पाँच कन्याओं एवं तीन पुत्रों का दायित्व था उनके कन्धों पर। घर का ज्येष्ठ पुत्र ब्याह के दूसरे दिन ही ईश्वर को प्यारा हो गया था। बड़ी बहन ने अनाथ माधव को पाला-पोषा, माधव के सिर पर अपनी कन्या कावेरी को सौंपकर वह स्वर्ग सिधार गई। माधव प्रधान जितने सीधे थे, पत्नी उतनी ही अधिक तेज थी। अपने पुत्र मानिक को हिरदेराम की तरह पुरोहिताई के कार्य हेतु चम्पावत की संस्कृत पाठशाला में भेजा, किन्तु मानिक हर बार भाग कर आ जाता। उसकी बुरी आदतें उसे कहीं भी टिकने न देती, कावेरी भी उसे सुधारने का अथक प्रयत्न करती है। माधव प्रधान की पत्नी के कुटिल स्वभाव से भी कावेरी बहुत त्रस्त थी। पत्नी से तंग आकर माधव प्रधान एक दिन घर छोड़कर निकल जाते हैं। रात्रि में गाँव वालों द्वारा प्रधान को ढूँढते समय कुँवरदेव ने भूत के भ्रम में मानिक व सुकिया की वृद्ध माँ को गोली मार दी। इस घटना की आड़ में मानिक के चाचा पुरूषोत्तम हिरदेराम की जमीन हड़पने के षडयंत्र में कुँवरदेव से धन वसूलने लगे। सुकिया की मृत्यु के बाद कुँवरदेव को फाँसी हो गई।

दूसरी ओर पटवारी माधव प्रधान को पेड़ काटने के झूठे आरोप में हिरासत में लेकर मारपीट करता है, क्योंकि पटवारी पेड़ स्वयं कटवाकर प्रधान से झूठी गवाही चाहता था। अत्यधिक मार खाने पर भी तैयार नहीं होता झूठी शहादत के लिए, पर बच्चों के साथ पत्नी आदि को कटघरे में खड़ा देखने की कल्पना उसे विचलित कर देती है और झूठा जुर्म कबूल कर लेता है, फलस्वरूप साढ़े तीन वर्ष की कड़ी सजा भोगने को विवश हो गया। कुँवरदेव की मृत्यु के बाद भी पटवारी गाँववालों को डरा-धमका कर आठ सौ रूपये ऐंठ लेता है। पुरूषोत्तम काका ने बुढ़िया द्वारा छिपाये धन के लालच में सुकिया को दुःखी किया। कावेरी का ब्याह एक धनी बूढ़े के साथ होता है, जिसकी दो औरतें पहले ही से घर में मौजूद थी।

कुँवरदेव की मृत्यु के बाद उसका परिवार गाँव छोड़कर चला जाता है। माधव प्रधान की घर की हालत नाजुक हो गइ। सुकिया दर-दर की ठोकरें खाने लगी। मानिक

घर से भागकर पल्टन में भर्ती हो गया। कावेरी को पुत्र पैदा होता है। घर सम्पन्न है किन्तु मन उदास। मानिक घर आने पर कावेरी से मिला, कावेरी उसे विवाह की सलाह देती है पर वह उदास मन लौट जाता है। एक बार फिर घर आया पर उसका मन लगा नहीं, वह फिर फौज में चला गया। कुछ समय तक कावेरी को पत्र आते रहे पर धीरे-धीरे वह क्रम भी टूट गया। किन्तु कावेरी की आशायें मिटती नहीं। जेल में विद्रोह के कारण कुछ कैदियों को गोली लगी, कुछ को कालापानी हुआ, कुछ को आजन्म कैद। माधव पण्डित इन्हीं में से था।

विवेच्य उपन्यास में कूर्माचल के गांवों का आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का नग्न चित्र प्रस्तुत किया गया है। किस प्रकार निरीह ग्रामवासियों से पटवारी आदि निर्ममता के साथ व्यवहार कर निरपराध को आजन्म सजा भोगने को विवश कर देते हैं। उपन्यास की भाषा सरल है कथानक मर्मस्पर्शी।

छाया मत छूना मन

आलोच्य उपन्यास के बारे में स्वयं लेखक के विचार—'एक प्रेमकथा की सांसे इसमें धड़कती सोयी है। पर एक ऐसी भव्य और अनूठी प्रेमकथा जो कि अधूरी रहकर भी पूरी हुई और पूरी होकर भी क्या पूरी हो सकी। अनेक-अनेक मध्यवर्गीय परिवारों की यह कहानी है, जहां मात्र एक जिन्दगी जीने के लिए कितनी-कितनी बार मृत्यु का वरण करना होता है।'[१]

भारत-पाक विभाजन के बाद वसुधा के माता-पिता अपनी दो पुत्रियों, वसुधा व कंचन को लेकर लुधियाना आ गये। लुधियाना में वसुधा के पिता एक अग्निकाण्ड के शिकार हो गये। पिता की मृत्यु के बाद साहुकारों ने मकान हथिया लिया। वसुधा की माँ परवीन अभी-भी सुन्दर थी। पड़ौसी ठेकेदार रणधीर ने परवीन को व्यंग्य बाणों से आहत कर दिया, फलत: परवीन दोनों पुत्रियों को लेकर दिल्ली चली आई। यहाँ उसने विशनदास से दूसरी शादी रचा ली। विशनदास एक दिन अपने अविवाहित अफसर के घर रात्रिभोज के बाद पत्नी का समर्पण कर अकेला घर आ गया, इस घटना से उसका मनोबल गिर गया। पत्नी की दृष्टि में वह गिर गया और उधर पत्नी ने आधुनिका का रूप धारण कर लिया। विशनदास को लकुवा पड़ गया। घर-गृहस्थी का दायित्व वसुधा पर आ गया। कंचन को उन्मुक्त जीवन जीने की स्वतंत्रता मिल गई। वह कैबरे डान्स की तरफ मुड़ गई। परिणामस्वरूप बी.ए. में असफल रही तथा कई दिन तक घर से बाहर रह अस्त-व्यस्त अवस्था में घर लौटती है।

देवेन और वसुधा 'कृष्णा कामर्सियल एकेडमी' में साथ-साथ टाइपिंग करते हैं। दोनों का प्रेम हो जाता है, देवेन शादी का प्रस्ताव रखता है किन्तु पारिवारिक दायित्वों को देखकर वसुधा अपनी भावनाओं को दबा देती है। देवेन चण्डीगढ़ में एक एक्सपोर्ट बिजनेस में जुट गया, उसका विवाह भी हो गया, किन्तु दिल्ली आने पर वह वसुधा से मिलता रहा।

---

१. छाया मत छूना मन, हिमांशु जोशी (विज्ञापन)

इधर कंचन एकाएक घर से गायब हो जाती है। देवेन वसुधा के साथ बम्बई तक ढूँढने जाता है पर घर वापस आने पर उन्हें कंचन घर में ही मिलती है, किन्तु एक समस्या के साथ। कंचन का पांव भारी था। माँ ने बताया की वही मुआ खन्ना कालेज में काम दिलाने के नाम पर बम्बई भगा ले गया था, वहाँ पता नहीं किस-किस दरवाजे पर फिराता रहा, सुना इसके द्वारा अपना काम निकालकर इसे यहाँ पटक गया।'[१] बदनामी की डर से यहाँ इलाज भी नहीं हो सकता। मां और कंचन को वसुधा ने हरिद्वार भेज दिया। किन्तु हरिद्वार से लौटने से पूर्व कंचन फिर गायब हो गई। माँ अकेली घर वापस लौट आई। वसुधा यंत्रणाओं में जी रही है। इधर घर की ये समस्याएँ, उपेक्षित पिता की सेवा एवं आफिस के टूर पर टूर आदि ने उसे थका दिया था। घर की दशा 'मीचे अपने ही घर में लावारिसों की तरह रहता है। खिलौने कैसे होते हैं—उसने कभी नहीं जाना। बच्चे कितना लड़ते-झगड़ते हैं, रूठते-मचलते हैं, लेकिन वह हमेशा गुमसुम बैठा रहता है। माँ को पता नहीं क्यों उससे चिढ़ है। उसे पास तक नहीं फटकने देतीं वह····।'[२] वसुधा को याद आया···· उसका चेहरा उस अंकल से कितना मिलता-जुलता है, जो गाँधीनगर से आया करते थे।

कंचन को ढूँढते-ढूँढते वसुधा थक गई, किन्तु एक दिन वह स्वयं ही घर आ गई। उसने बताया कि वह सपने में बाहर आई, किन्तु एक औरतों के व्यापार करने वाले गिरोह में फँस गई। भयानक यातना सहकर वह दिल्ली आई है। संयोग से लखनऊ में रायबहादुर रतीराम के खानदान के एक अच्छे लड़के से शादी की बात तय हो जाती है। वसुधा को इसके लिए ऋण लेने हेतु चावला के साथ शिमला का टूर करना पड़ा। कंचन की शादी में वसुधा ने कोई कमी नहीं आने दी। कंचन का पति नेप्यर अपने मित्र के घर ब्लुफिल्म में कंचन को अश्लील दृश्यों के मध्य देखता है और घर आकर उसे मार-मार कर घर से निकाल देता है।

इधर एक साधारण क्लर्क कुमार फिल्म बनाने की धुन में काम छोड़कर जुट जाता है, पर वसुधा हीरोइन बनकर उसका साथ नहीं देती। वह कंचन को रखने की राय देता है। वसुधा के मद्रास टूर से लौटने से पूर्व उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। माँ कई दिन से करोलबार से लौटी नहीं थी। विशनदास की मृत्यु के बाद उसकी पूर्व पत्नी तीन बच्चों को लेकर आ धमकी। वसुधा किराये पर नया मकान ले लेती है। आफिस में नया अफसर आनन्द निहायत विलासी था, 'आफिस में बेहद काम था। घर में फाईल मंगाकर आधी रात तक डिक्टेशन दिया करता था, सुबह वसुधा से बिस्तर पर से उठा नहीं जाता। कितनी बार निश्चय किया कि इस नौकरी को छोड़ दे लेकिन किस भरोसे ? कैसे ? सूझता न था।'[३]

---

१. छाया मत छूना मन, पृ. ३६
२. छाया मत छूना मन, पृ. ४७
३. छाया मत छूना मन, पृ. ४१

वसुधा का स्वास्थ्य गिरता गया। स्वयं देवेन के शब्दों में—'आँखो' पर गड्ढे उभर आये हैं.... शरीर एकदम गिर चुका है। नाखून का रंग भी सफेद हो आया है।'[१] वसुधा को कैंसर हो जाता है। देवेन उसे नैनीताल घुमाने ले जाता है। आते समय हरिद्वार से पूर्व उसकी मृत्यु हो जाती है।

वसुधा विस्थापित परिवार की लड़की है, पिता की मृत्यु के बाद माँ को समाज वासना की दृष्टि से देखता है, परिणामस्वरूप वह एक स्थान पर टिक नहीं पाती। इस अभिशाप से त्राण पाने हेतु वह दिल्ली में विशनदास से शादी करती है, किन्तु पौरुषहीन पुरुष का आश्रय एक छलना ही साबित होती है, जो उसे वारांगना का जीवन व्यतीत करने को राह दिखा देता है। अन्ततः वह भौतिकता की अंतहीन राह पर भटकती हुई पुत्री कंचन को भी नहीं बचा पाती। वसुधा जानती है कि माँ और कंचन परिवार की बिगड़ती दशा के कारण ही इस स्थिति पर पहुँच गई हैं। वह निरंतर संघर्ष करती हुई सभी जिम्मेदारियाँ निभाती एक सम्पूर्ण जीवन का उत्सर्ग कर देती है।

कुल मिलाकर उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था का पर्दाफाश किया गया है। कथानक इस बात का साक्षी है कि आज की दुनिया में प्रेम जैसी कोई वस्तु नहीं, केवल जिस्मानी स्वार्थ तक सीमित पुरुष की फूहड़ता और नारी की विवशता से लाभ उठाने की प्रवृत्ति ही पनप रही है। उपन्यास भावात्मक शैली में लिखा गया है। घटना बहुलता आद्योपान्त विद्यमान है, किन्तु कहीं भी असंभावित स्थितियाँ नहीं है, जहाँ पाठक कहानी के कल्पनालोक में भटकता नहीं, अपितु समस्याग्रस्त समाज की झलक पाता है। रतनलाल शर्मा के शब्दों में—'इसमें इस तथ्य को खोजा गया है कि परिवार में अच्छी आर्थिक स्थिति न होने पर या घर के मुखिया के न होने पर या निष्क्रिय होने पर कोई न कोई वयस्क बलि का बकरा बना है, भले ही लड़की हो। वसुधा ऐसी ही सबसे बड़ी समस्या है जो अपने परिवार के लिए इतना सहती है कि अन्ततः खुद ही मिट जाती है क्योंकि इस पूरे सामाजिक ढाँचे में कुछ लोग ऐश करते हैं और बाकी लोग घिसते हैं।'[२]

कगार की आग

उपन्यास 'कगार की आग' एक लोकप्रिय पत्रिका में प्रकाशित हुआ तो इसकी चिंगारियाँ पूरे देश में छा गई। इसमें उठाई गई अंचल की समस्याओं में नागरिक पाठकों तक को गहरे में झकझोर दिया। गरीबी और भूख हजार मजबूरियाँ देती हैं, ऊपर से जब भीतर या बाहर के किसी उजाले का भी सहारा न हो, तब तो जीना बस एक कगार की आग ही होता है, जिसे न जिया जा सके, न पार करते बने।'[३]

लधौन गाँव के कालिया 'का' के भतीजे की पत्नी गोमती ससुराल से भागकर अपनी वृद्धा माँ के पास आ जाती है। ककिया ससुर कलिया 'का' की कामुक दृष्टि

१. छाया मत छूना मन, पृ. ७८
२. मासिकी, फरवरी १९८१, पृ. १७
३. कगार की आग, विज्ञापन

गोमती पर लगी रहती है। जब गोमती कलिया का के चंगुल में नहीं जाती तो उसे मारते एवं लांछन लगाते हैं। इस तरह की मारपीट से गोमती कई बार अपनी मां के पास आ जाती है। गोमती का पति पिरमा जिसे कलिया का ने गाँजा पिलाकर पागल कर दिया है, जिससे वह बेरोकटोक उनका काम करता रहे।

'पिरमा पागल है—परमहंस, निरीह पशु। सबको पता है कका बैल की तरह जिन्दगी भर उसे जोते रहे। जब तक एक परिवार में रहे, खाना भी कभी भरपेट न दिया। रूखा-सूखा, जूठा-पीठा, टूटी-फूटी थाली में फेंक दिया। पहनने के लिए अपने बेटे तेजुवा के उतारे चीथड़े।'[१]

गोमती को अपने रखैल के रूप में रखने के लिए पिरमा को समाप्त कर देना ही आवश्यक जान पड़ा। इसलिए कालिया का लीसे की चोरी का झूठा आरोप लगाकर पटवारी से पकड़वा देते हैं। मारपीट के भय से वह अपने ऊपर लगाये इल्जाम स्वीकार कर लेता है। सजा भुगत कर वह फिर गाँव लौट आता है।

इस अत्याचार से पीड़ित पिरमा का पुत्र कुन्तू भूख-प्यास से तड़पकर सो जाता है। कालिया 'का' का एकमात्र विरोधी भिमुका है, उन्हें भी वह दो-चार सयानों की सहायता से मना लेते हैं। पिरमा का भाई देवराम लाम पर था, गोमती वृद्ध किशनसिंह थोकदार से देवराम को घर की दशा से पत्र द्वारा अवगत कराती है। पटवारी बयान के नाम पर बुलाकर गोमती के साथ बलात्कार करता है। देवराम घर आकर सबको ठीक कर देता है और फिर लाम पर चला जाता है। दुर्भाग्य से अबकी बार वह फिर लौट कर नहीं आता। उसके बाद आजादी से पिरमा और गोमती पर कालिया का और तेजुवा के अत्याचार बढ़ते जाते हैं। तेजुवा द्वारा पिटने पर गोमती आत्महत्या करने नदी पर जाती है, पर पुत्र की ममता उसे रोक देती है। अब वह नरसिंह डांडा के खुशाल के घर दो सौतों के साथ रहने लगी। वहाँ पहुँचकर भी वह कुनवा और पिरमा के बारे में सोचती है और खुशाल के द्वारा दिये गये बीस बीसी रूपये चुकाने के लिए तराई में चली गई। रात-दिन कठोर परिश्रम के बाद भी वह पूरी रकम नहीं जुटा पाई। वह पड़ौसियों को छोड़कर वहीं मजदूरी करने लगी। गाँव में उसे वापस न देखकर गाँववाले उसका अन्तिम संस्कार कर देते हैं।

गोमती तराई में तिरपनलाल के फार्म पर कार्य करने लगी। चार सौ पूर्ण करने के लिए उसे अपना शरीर भी बेचना पड़ता है। इस तरह खुशाल का मुआवजे के रुपये लौटाकर मुक्त होकर लधौन आती है, जहाँ उसे भूत समझ लिया जाता है। वह देखती है कि कालिया का ने पिरमा को मारकर झोपड़ी जला दी है। एकमात्र कुनुवा का हाथ पकड़कर वह बस्ती से दूर चली जाती है।

इस प्रकार वह उपन्यास एक अंचल विशेष की असहाय तथा निर्धनता से पीड़ित

---

१. कगार की आग, पृ. ९

नारी की व्यथा के साथ कूर्माचल की विभिन्न समस्याओं को समेटे हुए है। एक ओर गरीबी तथा दूसरी ओर स्त्री को काम करने पर लांछन, इस पर भी दिन-रात कटने पर भी उचित परिश्रम नहीं मिलता। नारी का सौन्दर्य भी उसके लिए अभिशाप बन जाता है, साथ ही पिरमा जैसे निरीह लोगों को दूसरे के अपराधों को ढोते-ढोते अवश जीवन जीने की विवशता है। गोमती जैसी निरीह नारी को कभी तेजुआ, कलिया 'का' एवं खुशाल जैसे पतियों से लात-घूसे मिलते हैं कभी मुक्त होने के लिए तिरपनलाल जैसे व्यक्ति को शरीर बेचना पड़ता है और उसकी यह साध मन में ही उठकर समाप्त हो जाती है कि—'उनका भी घर होगा।' जीतेजी गोमती की क्रिया करना, बैल की तरह जोतकर पिरमा को मार देना, जैसे कई प्रश्नों को उपन्यासकार ने उकेरा है। डॉ. रामनाथ मिश्र के शब्दों में—'उपन्यास के अन्तिम चरण में गोमती की ऊर्जा उभरती है जो नारी चरित्र के विद्रोही आयाम को भी एक नया बिन्दु प्रदान करती है। यह उपन्यास सादगी के साथ पर्वतीय अंचल के नारी जीवन को उद्घाटित करता है और अपने छोटे कलेवर में भी यथार्थता की जटिलता और अनुभव की गहराई को रेखांकित करता है।'[१]

हिमांशु जोशी जिस अंचल से आए हैं, वहाँ का दुःख-दर्द उनके हृदय की एक-एक शिरा में धड़कता है। इसलिए अपने अंचल की बेबसी और घुटन को उन्होंने बड़ी तीव्रता और कलात्मकता के साथ अपने उपन्यासों में उभारा है। इस उपन्यास का नाट्य रूपान्तर भी हुआ है, जो इसकी लोकप्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है।

समय साक्षी है

देश के वरिष्ठ मंत्री तिमिरवरन एक बार प्रधानमंत्री का पद सुशोभित करना चाहते थे। मंत्रियों के झूठे वादों, भ्रष्ट मंत्रियों के करों के घोटालों से जनता क्षुब्ध होकर आन्दोलनों पर आमादा हो गई थी। आपस में ही कटुता, स्वार्थ की टकराहट, पार्टी को विघटन की कगार पर पहुँचा रहा था। तिमिरवरन अपने समर्थकों को भी राज्य. ते बुला देता है। सभी उसकी बातों का अनुसरण करने को उद्यत हैं। उनकी आपसी फूट का लाभ विपक्षी उठाने को लालायित थे।

इन राजनीतिक दाँव-पेचों का अड्डा शेषगिरी का आश्रम था। देश में जागृति के नाम पर इस आश्रम में सांसदों को खरीदा-बेचा जाता था। समाजवाद के नाम पर दुराचार व्याप्त था। कई स्त्रियाँ भी यहाँ थी, जो शेषगिरी के इशारों पर चलती थीं। इस गुप्त रहस्य को उजागर करने वाला मौत का शिकार होता था। इस दल में फूट डाली प्रधानमंत्री दल की पिनाकी प्रसाद उर्फ वी.पी. ने। शेषगिरी को अन्तर्धान कर पुलिस की गोली का शिकार बनना पड़ा।

तिमिरवरन का भाई उसे सही मार्ग से जनसेवा करने की सलाह देता है, किन्तु वह उसे दुत्कार देता है। मेघना कई संघटनों की अध्यक्षा का पद सुशोभित करती है। तिमिरवरन उससे शारीरिक संबंधों की पूर्ति खुलकर करने के लिए उसे अपने भाई की

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३ से ९ अक्टूबर, १९८१, पृ. २३

पत्नी का रूप दे देता है। उसका भाई उनकी करतूतों से दर-दर ठोकरे खाता फिरता है। मेघना भौतिकता की चमक-दमक में तिमिरवरन को ही सर्वस्व मानती है। इस पर अजितवरन मौत को गले लगाता है।

अन्ततः तिमिरवरन की पार्टी हार जाती है। तिमिरवरन के समय बना बाँध भी धँस गया। गाँव के गाँव बह गए। इस बात से विपक्षी सफल हुए। सुन्दरम ने स्तीफा देकर चौराहों में भाषण देना शुरू कर दिया। गाँधी जी के रामराज्य लाने वाले आमरण अनशन में मर गये। इससे जनता उत्तेजित हो गई। प्रधानमंत्री का घिराव किया गया। राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। तिमिरवरन पत्नी सहित गाँव वापस चले गये। तिमिरवरन की दयनीय दशा से अपना अस्तित्त्व समाप्त समझ कर मेघना नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर लेती है। तिमिरवरन मिस माखेजानी को स्टेनों रखता है, जिस पर उसके लड़के की कुदृष्टि पड़ जाती है वह उसे कहीं का नहीं छोड़ता।

प्रासंगिक कथा के साथ एक व्यापारी पद्मनाभ के पुत्र विनायक को स्कूल जाते समय अपहरण की घटना भी आती है। एक लाख की फिरौती मांगी गई, वृद्ध पद्मनाभ की पुत्री गर्विता भाई को छुड़ाने के लिए रायजयन्त की सहायता मांगती है जो उसकी अस्मत लूटता है फिर एक विधायक भी सहानुभूति के बहाने उसके शरीर से खेलता है। अन्ततः वह बदनाम तो होती ही है साथ ही अपने भाई को भी छुड़ाने में असमर्थ रहती है। इस वेदना से पिता शोक व्याकुल हो प्राण त्याग देता है।

विवेच्य उपन्यास में देश में राजनीतिक अस्थिरता के साथ राज-नेताओं के निहित स्वार्थों में व्यस्त तथा काम-वासना की पूर्ति में लिप्त हैं। अनावश्यक कार्यों में सरकारी धनराशि का दुरूपयोग किया जा रहा है। देश में भुखमरी तथा जनता अभावग्रस्त है किन्तु प्रतिनिधियों को अपनी कुर्सी की चिन्ता ही सबसे बड़ी है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास समसामयिक समस्याओं एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार का खुला चित्रण प्रस्तुत करता है। तिमिरवरन का एक चित्र—'उनका व्यक्तित्व बर्फ से ढके ज्वालामुखी जैसा है। बाहर से जितने सौम्य संत लगते थे, भीतर से उतने ही रीति-नीति के धनी कूटनीतिज्ञ, खादी के साधारण कपड़े, पाँवों में बेडौल सी चप्पलें और सिर पर हिमश्रृंग की तरह जगमगाती शुभ्र स्वच्छ टोपी। जब वह समाजवाद या गरीबी दूर करने के नारे लगाते थे, तब लगता था वाकई कोई भुक्तभोगी किसान अपने ही दुःख-दर्द में बातें कर रहा हो।'[१] अजित उसे समझाते हुए पागल हो जाता है वह कहता है—'अपना ही मांस खुद परोस कर खाओगे तो पता चलेगा की दरद क्या है? परमेश्वर के राज में देर है अंधेर नहीं बड़के भैया।'[२] अजितवरन स्वयं पत्नी मेघना से कहता है—'जनता का पैसा बेटी की धन की तरह होता है मेघना। इस धरोहर का तुम लोग नाजायज फायदा उठा रहे हो कम से कम इस पाप का भागीदार मुझे तो न

१. समय साक्षी है, पृ. ७
२. समय साक्षी है, पृ. ६९

बनाओ। मुझे भाग जाने दो कहीं दूर।.... दवा के बिना मरते मासूम बच्चों को देखा है तुमने कभी ? तुमने देखा है बिना कफन की जलती लाशों को। लोग गोबर में से अनाज के दाने बीनकर अपना पेट भरते हैं।'[१]

आधुनिक समीक्षक देवेश ठाकुर के शब्दों में—'देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार की चरम व्याप्ति को उसने बहुत स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है। अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए व्यक्ति किस सीमा तक क्रूर हो सकता है कि अपने संबंधियों के प्राणों का हन्ता बन जाये। अपनी वासना-तृप्ति के लिए किस सीमा तक गिर सकता है कि अपनी ही पुत्रवधू को अपनी अंकशायिनी बनाये, अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए किस स्तर तक षडयंत्र रच सकता है कि अपने विरोधी का नामोनिशान ही मिटा दे। ये सारी स्थितियाँ इस कृति में बड़े व्यवस्थित ढंग से रखी गई है। साथ ही भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध करने वाले शिव सुन्दर जैसे साहसी व्यक्ति को जिन्होंने हमेशा देश के हित को ही अपने दृष्टिपथ में रखा, किस प्रकार रास्ते से हटा दिया जाता है। इसका अत्यन्त प्रभावी चित्रण भी इस कृति को विशिष्ट बना देता है। समग्रतः इस राजनीतिक कथा में हम अपने वर्तमान के भ्रष्ट परिवेश को साकार देख सकते हैं।'[२]

तुम्हारे लिए

विपन्न आर्थिक परिस्थितियों के बाद भी विराग अध्ययनार्थ नैनीताल चला जाता है। पढ़ाई जारी रखने के लिए उसका 'रूममेट' सहपाठी सुहास बीस रूपये महिने का एक ट्यूशन ढूंढ देता है। अब उसे नियमित डॉ. दत्ता के घर उनकी भांजी अनुमेहा को पढ़ाने ब्लुकाटेज जाना पड़ता है। प्रथम परिचय से ही उसका अनुमेहा से गहरा लगाव हो जाता है। डॉ. दत्ता की पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है दूसरी पत्नी उनसे १८-२० वर्ष छोटी है। उसका स्वभाव भी अनुकूल नहीं है। अभी तक इस पत्नी से उन्हें कोई सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। डॉ. दत्ता की पत्नी को अंग्रेजी नॉवल पढ़ने का, पिक्चर देखने का शौक है। दीपावली में अनुमेहा बरेली जाती है। उसकी अनुपस्थिति में श्रीमती दत्ता विराग को फंसांना चाहती है, किन्तु विराग उन्हें समझा कर हट जाता है। विराग का सहपाठी सुहास उद्दाम कामवासना, नशे आदि में लिप्त रहता है। वह अनुमेहा से भी अनैतिक संबंध स्थापित कर लेता है। विराग ट्यूशन भी छोड़ देना चाहता है, किन्तु परिस्थितियों एवं मित्रता की बात मन में रखकर पढ़ाना जारी रखता है। वृद्ध माता-पिता उसकी शादी तय कर देते हैं, किन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करता। इसी बीच डॉ. दत्ता का तबादला हो जाता है और अनुमेहा डाक्टरी पढ़ने लखनऊ चली जाती है। अनुमेहा सुहास को बुद्ध की प्रतिमा भेंट करती है। सुहास उसके प्रेम से कुंठित होकर गाँव वापस चला जाता है। लम्बे अन्तराल के बाद विराग की अनुमेहा

---

१. समय साक्षी है, पृ. १०५

२. मासिकी, फरवरी, १९८१, पृ. १६

से दिल्ली में भेंट होती है। वह अपने आप को भूलने के लिए दीन-दु:खियों की सेवा में लगी रहने का उपक्रम करती है अन्ततः अफ्रीका चली जाती है।

आलोच्य उपन्यास में किशोर हृदयों की प्रेमकथा को सूत्र बना कर वर्तमान यथार्थ जीवन की विभिन्न समस्याओं, आर्थिक संकट, दो विपरीत संस्कारों की टकराहट, काम-वासना की पंकिलता, आत्म प्रवंचना आदि को कुशलता के साथ संगठित कर दिया है।

उपन्यास में प्रेम की सात्विक अनुभूतियों के बीच संयम की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सुहास का चरित्र आधुनिक दिशाहीन छात्रों की दुर्बलता है, जो पश्चिम का अन्धानुकरण कर संस्कारहीन होते जा रहे हैं। श्रीमती दत्ता भी इसी रोग से ग्रस्त हैं। मानसिक अस्थिरता से वह विभिन्न संस्कारों को अंगीकार करने की मृगतृष्णा में आत्मप्रवंचना का शिकार हो जाती है। विराग प्राचीन संस्कारों में आबद्ध संकोच से अपनी अन्तरात्मा की आवाज भी नहीं सुन सकता है।

अनुमेहा एक ओर डॉ. दत्ता के संस्कारों से पली है, दूसरी ओर श्रीमती दत्ता के संस्कारों से प्रभावित है। इस कारण यह स्वयं द्विधाग्रस्त है। विराग से हृदय से स्नेह करती हुई भी वह सुहास से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। यह दोहरा व्यक्तित्व व्यक्ति को पतन के गर्त में डाल देता है।

उपन्यास में बारीकी के साथ समाज की ज्वलन्त समस्याओं को उठाया गया है—'जिससे प्रेम हो उसी से विवाह भी किया जाये, क्या यह जरूरी है एक धुँधली-सी लौ के सहारे आदमी अपनी सारी जिन्दगी गुजार सकता है बिना किसी अभाव को महसूस किए.... ।'[१]

विवेच्य उपन्यास के विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. देवेश ठाकुर के शब्दों में—'उपन्यास का अन्त हृदय द्रावक है। उपन्यास की भाषा काव्यपूर्ण होते हुए संघर्षजन्य है। परिस्थितियों का विवरण बहुत संशक्त ढंग से देती है। हिमांशु जोशी का काव्य अन्त तक जिज्ञासा बनाये रखने वाला है।'[२]

सुराज

'सुराज' उपन्यास में जोशी जी ने दो और लघु उपन्यासिकाओं को संकलित किया है—'अँधेरा और' तथा 'काँछा' । 'सुराज' लघु उपन्यासिका साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें कुमाऊँ के गांगि कक़ा की स्वराज के लिए समर्पित जीवन की कथा के साथ ही ग्रामांचलों पर हो रहे स्वराज के नाम पर अत्याचारों की कथा भी है। किस तरह से सरकारी कर्मचारी, पटवारी आदि निरीह गाँव वालों को लूटते-खसोटते हैं। हरिजनों के प्रति समाज में क्या-क्या हो रहा है, उनके ऊपर होने वाले अत्याचार, दूसरी ओर विधवा नारियों की दयनीय दशा, उसके असुरक्षित जीवन

१. तुम्हारे लिए, हिमांशु जोशी, पृ. ५८
२. मासिकी, फरवरी, १९८१ पृ. १५

की कथा-व्यथा तथा परिवार की उपेक्षा का चित्रण है। 'सुराज' पूर्ण रूप से आंचलिक कुमाऊँ के कालीकुमाऊँ अंचल पर लिखा गया सशक्त उपन्यास है। इसकी कथा मर्मस्पर्शी एवं भाषा पात्रानुकूल है। 'अँधेरा और' में मानव की पाशविक प्रवृत्तियों का चित्रण है और 'काँछा' नेपाली बालक के जीवन पर आधारित हैं। यथार्थ और सजीव चित्रण दृश्य पटल पर समस्त परिवेश को उपस्थित कर देता है।

देवेश ठाकुर

प्रो. देंवेश ठाकुर का जन्म २३ जुलाई, १९३३ को उनकी ननिहाल पैठाणी (अल्मोड़ा) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा पैठानी एवं नजीबाबाद में हुई। हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के बाद आगे की पढ़ाई करने के लिए नगीना चले गये। इसके बाद बी.ए. एवं एम.ए. की शिक्षा डी.ए.वी. कालेज, देहरादून से पूर्ण की। १९५५ में एम.ए. करने के बाद बम्बई चले आए और कुछ समय के लिए प्रतिरक्षा कार्यालय में क्लर्क तथा उसके उपरान्त १९६० में कालेज में प्रवक्ता बन गये। प्राध्यापकी करते हुए १९६१ में सागर विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. और १९७१ में डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की। डी. लिट. के लिए लिखा गया शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ' (१९७५) में उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा तुलसी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

प्रारंभिक जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण, आर्थिक विपन्न परिस्थितियों के बीच जूझते, उठते-गिरते, अदम्य उत्साह के साथ कठिनाइयों का सामना करते हुए आपने अपनी मंजिल प्राप्त की।

डॉ. देवेश ठाकुर का नाम हिन्दी रचनाधर्मियों की उस विशिष्ट श्रेणी में आता है जिन्होंने गुरुतर शोध-समीक्षा के साथ-साथ कृति लेखन में भी समान रूप से ख्याति अर्जित की है। समीक्षा के क्षेत्र में अपने निश्चित, प्रगतिशील और वस्तुपरक दृष्टिकोण से जहाँ एक ओर अपने लिए अनेक विवादों को पैदा किया तो दूसरी ओर प्रबुद्ध गुटनिरपेक्ष मनीषियों की सराहना और स्वीकृति भी अर्जित की। अपनी कृतियों के माध्यम से भी उन्होंने अपना रचनाधर्मी दृष्टिकोण भी सामने रख दिया। उनके प्रथम उपन्यास 'भ्रमभंग' ज्ञानपीठ (१९७५) के प्रकाशन के बाद ही उन्हें दृष्टि सम्पन्न कथाकार के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। तब देश की विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से इस कृति को सराहा था। अकेले 'समीक्षा' (पटना) में 'भ्रमभंग' की तीन-तीन लम्बी समीक्षाएँ प्रकाशित कर उसे वर्ष का सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यास माना था। तब से आज तक उनके छह उपन्यास प्रकाश में आ चुके हैं। इन सभी में देवेश ठाकुर की प्रगतिशील दृष्टि पूरी साहसिकता और स्पष्टता के साथ उभरी है। लेकिन इन कृतियों का महत्त्व इनमें निहित शिल्प-प्रयोगों को लेकर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शायद ही किसी कथाकार ने इतनी कम अवधि में 'प्रस्तुति-शिल्प' के इतने विविध और सफल प्रयोग किए हों।'[१]

१. कथा शिल्पी देवेश ठाकुर, प्रो. सतीश पाण्डेय (विज्ञापन)

देवेश ठाकुर का सम्पूर्ण साहित्य साठोत्तर काल से ही प्रारंभ होता है।[१] उनके द्वारा रचित अब तक का प्रकाशित साहित्य निम्न है—

काव्य— (१) मयूरिका, (२) अन्तरछाया

शोध— (१) प्रसाद के नारी चरित्र, (२) आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, (३) हिन्दी की पहली कहानी।

समीक्षा— (१) नयी कविता के साथ अध्याय, (२) 'नदी की द्वीप की रचना-प्रक्रिया, (३) हिन्दी कहानी का विकास, (४) साहित्य के मूल्य, (५) साहित्य की सामाजिक भूमिका (६) मैला आँचल की रचना-प्रक्रिया।

उपन्यास— (१) भ्रमभंग (मराठी में अनूदित), (२) प्रिय-शबनम (मराठी में अनूदित), (३) काँचधर, (४) अपना-अपना आकाश, (५) इसीलिए, (६) जनगाथा।

बाल साहित्य— (१) ममता (उपन्यास), (२) दो सहेलियाँ (कहानियाँ)

कालेजोपयोगी— (१) कालेज निबन्ध और रचना, (२) हिन्दी निबन्ध प्रदीप, (३) व्यवहार वीथिका।

संपादन— (१) कथाक्रम-१, (२) कथाक्रम-२, (३) कथावर्ष १९७६ से १९८३ तक, (४) रचना प्रक्रिया और रचनाकार। 'समीचीन' त्रैमासिक शोध-पत्रिका का सम्पादन।

देवेश ठाकुर के व्यक्तित्व कृतित्त्व पर निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) देवेश ठाकुर— व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार-डॉ. नन्दलाल यादव
(२) कथाशिल्पी— देवेश ठाकुर-प्रो. सतीश पाण्डेय
(३) देवेश ठाकुर— प्रश्नों के घेरे में—डॉ. मनुदेव शुक्ल

भ्रमभंग

१९७५ में देवेश ठाकुर की प्रथम उपन्यासिक कृति 'भ्रमभंग' प्रकाशित हुई। इसका शिल्प-विधान कथ्य को पाठकों तक संप्रेषित करने में इतना प्रभावशाली बन पड़ा कि अपने प्रथम उपन्यास के प्रकाशन के बाद ही उपन्यास जगत में देवेश ठाकुर की चर्चा का विषय बन गये। मध्यवर्गीय ईमानदार व्यक्ति, इस भ्रष्ट व्यवस्था में ईमानदार बने रहने के प्रयत्न में अपने और दूसरे लोगों के द्वारा किस तरह शोषित होता है। 'भ्रमभंग' में इसका चित्रण हुआ है। कथा नायक चन्दन, जो मध्यवर्गीय संस्कारों में जी रहा है, की कथा-व्यथा अत्यन्त सशक्त ढंग से अभिव्यक्त हुई है। चन्दन मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रतीक भी है, जो झूठी नैतिकता एवं आदर्श के नाम पर अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है। किन्तु इस उपन्यास की एक विशेषता है कि इसमें लेखक एक निर्णय प्रस्तुत

२. प्रो. देवेश ठाकुर के व्यक्तिगत पत्र से

कर देता है वह 'गोदान' के होरी या 'सारा आकाश' के समर की भाँति हारता नहीं वरन् परिस्थितियों के अनुकूल निर्णय लेते हुए अन्त तक संघर्ष करता रहता है।

'चन्दन....। तुम्हारे रोके माँ रूक नहीं सकती। निर्णय तुम्हें लेना है। माँ का निर्णय तुम्हें दीख रहा है।....वह तुमसे टूटना चाहती है। यहाँ उसे घुटन होती है। उसके रहते तुम्हें भी होती है। भीतर-भीतर तुम भी उससे घृणा करते हो। उसे मुक्त कर दो।....तुम भी मुक्त हो जाओ....। तुम्हें जिन्दा रहना है....।'[१]

चन्दन के मन में परिवेश के टूटने-बिखरने को लेकर संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं और अंत में उसका भ्रम टूट ही जाता है अपने कहने का, अपने होने का वह निर्णय दे देता है—

'क्या करूँ....? कहाँ से शुरू करूँ....? तभी उसके ट्रंक पर निगाह जाती है उठाकर उसे पटक दिया है। ट्रंक खुल गया है। उसकी एक-एक चीज को बटोरकर उस ट्रंक में भर दिया है। घर में उसकी अब कोई निशानी मैं नहीं रखना चाहता।....रस्सी पर एक टूटा नाड़ा दिखा। उसे भी ट्रंक में भर देता हूँ। टूटने का मतलब पूरी तरह टूटना होता है।....नो लिंकिंग।'[२]

यद्यपि यह उपन्यास आत्मकथात्मक पद्धति में लिखा गया है, किन्तु रचनाकार ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भाँति स्वयं और चंदन में अत्यन्त ही सफलतापूर्वक पृथकता स्थापित कर ली है। वैसे देवेश ठाकुर ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि 'भ्रमभंग' मेरे अपने पारिवारिक संघर्ष की कहानी है। इस उपन्यास की एक-एक घटना सत्य है और इसके कथानक और कथा को कहीं भी कल्पना की सहायता से शिल्पित नहीं किया गया है। 'भ्रमभंग' के रचनाकार से जो परिचित है, उन्हें यह मालूम है कि भ्रंमभंग की कथा और देवेश ठाकुर के जीवन के विविध मोड़ों में साम्य है।'[३]

'भ्रमभंग' ही नहीं 'प्रियशबनम' एवं 'इसीलिए' भी लेखक के आत्मकथात्मक उपन्यास हैं। इसमें रचनाकार पात्रों के चिन्तन, मनन, आत्मपरीक्षण व आत्मविश्लेषण को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में सफल रहा है।

'भ्रमभंग' आत्मकथा होते हुए भी समष्टि की कथा है। यह व्यक्ति के संघर्षों और संवेदनाओं की, उसकी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की, इन अपेक्षाओं-आकांक्षाओं के बनने और मिटने की कथा....एक चन्दन कथा....?....व्यक्ति कथा होते हुए भी यह अब व्यक्ति कथा रह कहाँ गयी।'[४]

इसका नायक चन्दन अलग-अलग परिस्थितियों में विभिन्न लोगों को पत्र लिखता है। इसमें कहीं पारिवारिक समस्याओं, महानगरीय जीवन की विसंगतियों तथा भ्रष्ट

१. भ्रमभंग, देवेश ठाकुर, पृ. २०२
२. भ्रमभंग, देवेश ठाकुर, पृ. २०३
३. कथा शिल्पी—देवेश ठाकुर, प्रो. सतीश पाण्डेय, पृ. १६१
४. भ्रमभंग, देवेश ठाकुर, पृ. ८ (अपनी ओर से)

व्यवस्था का चित्रण हुआ है तो कहीं पर प्रेमी हृदय की विवशता, अकेलापन या तड़फन परिलक्षित होती है। अधिकांश पत्र अतीत की कथा जोड़ते हैं। अनावश्यक बातों को महत्त्व न देकर टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने तथा शिल्प की एकरसता तोड़ने के लिए चन्दन के विविध पत्र 'भ्रमभंग' के शिल्प को नया आकर्षण प्रदान कर देते हैं।

कुछ अन्य शिल्पगत विशेषताएँ भी देवेश ठाकुर के उपन्यासों में परिलक्षित होती हैं। चलचित्रों की 'फ्लैशबैक' या स्मृत्यावलोकन शैली का प्रयोग ऐसा ही है। यद्यपि इस तरह की शैली का प्रयोग पूर्ववर्ती रचनाओं में भी देखने को मिल जाता है, किन्तु देवेश ठाकुर की सभी रचनाओं में इसका सफल प्रयोग हुआ है। 'भ्रमभंग' में प्रस्तुतीकरण शिल्प को इसके रचनाकार ने एक नया आयाम दिया है। यह उसकी प्रयोगधर्मिता का सूचक है।

प्रिय शबनम

यह एक अन्य प्रयोगधर्मी उपन्यास है। सम्पूर्ण उपन्यास का कलेवर एक पत्र के रूप में है, यह अपने ढंग का अनुपम प्रयोग है। यद्यपि रांगेय राघव की 'छोटी सी बात' इसी शैली में लिखा गया उपन्यास है, किन्तु 'प्रिय शबनम' में प्रयुक्त शैली इसके नायक मंगल के अन्तर्मन में चल रही उलझनों एवं संघर्षों का सीधा साक्षात्कार कराने में सफल है। अपने घनिष्टतम को सम्बोधित पत्र में मन की गूढ़ एवं रहस्यमय बातें बड़ी ही ईमानदारी से उकेरी गई है। 'रचनाकार का उद्देश्य इस कृति के माध्यम से एक मध्यवर्गीय संस्कार में पले व्यक्ति की मनोग्रंथियों को दिखाना रहा है। पत्र की समाप्ति पर मंगल अपनी उलझी हुई ग्रंथियों से मुक्त दिखाई देता है। इसमें लेखक न सिर्फ मंगल की मानसिकता के अणु-अणु को किसी दक्ष जर्राह की तरह अपने सूक्ष्म औजारों द्वारा अत्यन्त पैनेपन और कुशलता से तार-तार कर दिया है।'[१]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है—'वाचाल, अप्रत्याशित, अन्यथा, औचित्य, आह्लादकारी, आभिजात्य, दोहन, नैसर्गिक, हिमस्नात, आत्महन्ता'[२] आदि। इसके अतिरिक्त देवेश ठाकुर के उपन्यासों में अंग्रेजी, फारसी, उर्दू के शब्दों की भी कमी नहीं हैं। उपन्यासों की केन्द्रभूमि बम्बई रहने से उसमें बम्बईया हिन्दी के शब्द एवं मराठी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। 'खेली, पगड़ी' आदि।[३]

उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। विषय एवं कथ्य के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया गया है। कुछ नये शब्दों का अन्वेषण भी हुआ है। इन शब्दों में जीवन के तनावों की ओर विसंगतियों को सफल अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य है। सहायक क्रियाओं से रहित छोटे-छोटे सरल वाक्यों के प्रयोग के साथ-साथ इनकी भाषा में रागात्मकता, नाटकीयता, विम्बात्मकता, चुटीलापन, पैनापन एवं संवेदनशीलता भी प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। कहीं-कहीं पर पूरे वाक्य सूक्तियों के रूप में प्रयुक्त होकर

---

१. देवेश ठाकुर—व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार, सं. डॉ. नन्दलाल यादव, पृ. १६३
२. प्रिय शबनम, पृ. ९, २,१, १३, १६, २४, ४५, ५५, ६३, ९४
३. प्रिय शबनम, पृ. ९, १०,

भाषा एवं कथ्य की गरिमा को और अधिक प्रभावशाली बना देते हैं। 'प्रिय शबनम' पूर्णत: पत्र शैली में लिखा गया उपन्यास है। एक लम्बापत्र जो नायक मंगल द्वारा शबनम को सम्बोधित है। इसका शीर्षक 'प्रिय शबनम' उसी पत्र का सम्बोधन है।

इसीलिए

'इसीलिए' उपन्यास में भी मन की गूढ़तम भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए पत्र शैली का प्रयोग किया गया है। 'इसीलिए' में मीनाक्षी की पत्र डायरी शैली की एकरसता को तोड़ने वाला एक सफल प्रयोग है। अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से भिन्न लेखक ने डायरी शैली के बीच पत्र एवं मध्यान्तर के साथ विवरणात्मक शैली का संयोजन करके इसके सम्पूर्ण शिल्प को आकर्षिक एवं मनोरंजक बना दिया है।

'इसीलिए' में मनोवैज्ञानिक-स्वप्न विश्लेषण, निराधार प्रत्यक्षीकरण, आत्म-विश्लेषण या एकालाप का प्रयोग जहाँ भी हुआ है, वहाँ मनोवैज्ञानिकता आ जाती है। अवस्थी बार-बार स्वयं को हीन भावना का शिकार पाता है। वह अपनी तुलना कैक्टस की झाड़ियों में उलझे पतझर के एक पत्ते, कूड़े के ढेर पर पड़ी हुई जूठन या नानी की संदूक में पड़ी हुई किसी पुराने हिसाब की पुर्जी जैसी महत्त्वहीन चीजों से करता है।'[१] वह अपनी डायरी में लिखता है—'मैं समझता था, मुझे फूलों की घाटी मिल गई है। मेरा मन समन्दर हो गया था और आकाँक्षाएँ हिमालय की चोटियाँ। मेरे समन्दर में हिमालय लहरें मारता था। लेकिन यकायक एक अंधड़-सा बहा, एक शोर मचा, एक भूचाल-सा आया और मेरी लहरें रेगिस्तान बन गई। फूलों की घाटी कंटीले बबूलों से भर गई। मैं देखते-देखते कुछ न होकर रह गया।'[२]

'इसीलिए' युगीन विचारधारा को लेकर लिखा गया उपन्यास है। देश की दशा पर विचार करते हुए अवस्थी क्रान्तिकारी रूप अपनाने के पक्ष में है। वह गाँधीवाद का विरोध करता है, लेकिन उसका क्रान्तिकारी रूप नक्सलवादियों की तरह न होकर गाँधीवाद और नक्सलवाद का समन्वित रूप है। गाँधीवाद उसके विचार में—'गाँधी सुनो, तुम्हारा दर्शन कूड़े के ढेर पर पड़ा है। तुम अपनी कमजोरियों और वासनाओं को जीतकर संत बन गये सही, लेकिन पूरा समाज तो संत नहीं हो सकता। तुम्हारे सत्य का दर्शन आज झूठ, फरेब और भ्रष्टाचार के विकट जाल में कैद होकर रह गया है। तुम्हारे चेले राजनेता ही तुम्हारी खिल्ली उड़ा रहे हैं। तुम्हारा अहिंसा का सिद्धान्त भी खोखला साबित हो चुका है। इस समाज में, जिसमें मैं रहता हूँ, तुम्हारे उपदेश नुमाइश और अजायब घर में रखने की वस्तु बन गये हैं। तुमने जाने-अनजाने हमें निकम्मा बनाने का षडयंत्र रचा है। क्या तुम नहीं जानते थे कि सत्य के साथ झूठ का और अहिंसा के साथ हिंसा का हमेशा साथ रहा है। अहिंसा से हिंसा को कैसे रोक पाओगे तुम ? क्या अपने समय में भी तुम हिंसा को रोक पाये थे।'[३]

---

१. इसीलिए, पृ. ६१
२. इसीलिए, पृ. ६५
३. इसीलिए, पृ. १३१-१३२

'इसीलिए' की अभिव्यक्ति मुख्यत: डायरी शैली में ही हुई है। आरम्भ में ही लेखक ने स्वीकार किया है कि अवस्थी की डायरियों के पन्नों पर से उसकी जिन्दगी के विविध दृश्यों को उतार यहाँ प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में अवस्थी के मन में चल रहे अन्त:संघर्ष को चित्रित करने के लिए इस शैली का चुनाव अत्यन्त ही उपयुक्त रहा है, क्योंकि अवस्थी स्वयं भी यह स्वीकार करता है कि डायरी लिखते हुए उसे शान्ति मिलती है।

कहीं-कहीं पर लेखक ने स्वभावोक्ति पूर्ण हृदयोद्‌गारों का उद्‌घाटन करने हेतु चेतनाप्रवाह शैली का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। 'इसीलिए' में अवस्थी की स्वगतोक्तियाँ जगह-जगह बिखरी पड़ी है।.....'अब मैं महसूस करने लगा हूँ कि मैं सचमुच मैच्योर हो गया हूँ। नौकरी पाने पर ऐसा महसूसना स्वाभाविक है। ऐसा पहली बार महसूस किया था, जब माँ ने अपनी कहानी सुनायी थी, दूसरी बार जब पिताजी का निधन हुआ था और तीसरी बार जब माँ खत लिखकर छोड़ गई थी। पिताजी ! आज सबेरे से तुम बहुत याद आ रहे हो। अब तुम्हारे प्रति मन में इतनी कड़ुवाहट नहीं रह गई है। आज सोचता हूँ, तुमने भी कम नहीं सहा। तुम भी तो बार-बार मरे कभी मानसिक रूप से कभी बिमारी को लेकर।'[१]

कथानायक अवस्थी जब भी अकेला होता है तो अपनी परिस्थितियों, अपने अस्तित्त्व तथा अपने जीवन का विश्लेषण करता हुआ नजर आता है। ऐसे में अनेक स्थानों पर स्वयं को सम्बोधित कर अपनी जिन्दगी का विश्लेषण करता है। उपन्यास के अन्त में गाँधीवादी विचारधारा पर विचार करते हुए नक्सली और गाँधीवाद के बीच का क्रान्तिकारी मार्ग उचित ठहराता है—'दुष्ट के लिए दुष्टता, क्रूर के लिए क्रूरता और हिंसक के लिए हिंसा ही अब मेरा आदर्श होगा। अब मेरे कोश में अहिंसा और हिंसा साथ-साथ होगी। स्नेह और ममता के साथ घृणा और आक्रोश भी होगा। सत्य के संग कूटनीति भी होगी, तभी समाज में रचनात्मक परिवर्तन आ पायेगा। अन्यथा सुविधा, शक्ति और धन से सम्पन्न गंदे लोगों की जमात, गरीबों पर हर किस्म का बलात्कार करती रहेगी और जनता कहलाने वाले बेगुनाह जीव बार-बार बिना किसी मतलब के सलीब पर लटकाये जाते रहेगें।'[२] वस्तुत: यही इस उपन्यास का केन्द्रीय भाव है।

काँचघर

'काँचघर' लेखक का कथारहित उपन्यास है। अलग-अलग मेजों की अलग-अलग कहानी है। इसमें कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। एकमात्र सम्बन्ध जोड़ने वाले पात्र सुहास और सुभी हैं, स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि 'काँचघर' एक कहानी है—माहौल की कहानी। अपने समय और अपने आस-पास की कहानी।'[३]

---

१. इसीलिए, देवेश ठाकुर, पृ. २७
२. इसीलिए, देवेश ठाकुर, पृ. ११३
३. काँचघर, मेजों पर जाने से पहले में।

इन कहानियों में महानगरीय जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया गया है। यह पूरा उपन्यास संवादात्मक शैली में लिखा गया है जो हिन्दी उपन्यास में नवीन प्रयोग है।

औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से यह लेखक का नूतन प्रयोग है। इसमें कथा की क्रमबद्धता नहीं है। कुल सात दिनों की सीमित अवधि में एक गैलरीनुमा रेस्तराँ की मेजों पर बैठने वालों की बातों को लेखक ने प्रस्तुत किया है। इस तरह यह एक कथारहित उपन्यास है, किन्तु समान परिवेश की कहानी होने के कारण इसमें महानगरीय विसंगतियों की अभिव्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण रही है। पात्र गौण बन गये हैं। लेखक पूरे उपन्यास में पूर्णत: अनुपस्थित रहा है। इसमें नाटकीयता अधिक मुखर हो गई है। एक समय में एक ही मेज का दृश्य सामने आता है। पात्रों के संवाद से उनकी मुद्राओं का पता चल जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने सफलतापूर्वक युगजीवन को उद्‌घाटित किया है।

पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध ने समाज को विसंगतियों का पिटारा बना दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इन विसंगतियों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। 'आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी सीमित आय में आधुनिक शान-शौकत की वस्तुएँ खरीदने की धुन में परेशान है, पैसे की कमी पड़ना स्वाभाविक है तब शरीर व्यापार प्रारंभ हो जाता है। बम्बई के 'ए' ग्रेड होटल सिर्फ शराब और लड़कियों का धन्धा ही करते हैं। महानगरीय जीवन इतना संवेदनहीन और विकृत हो चुका है। पैसे से मुटाकर आदमी जानवर से भी ज्यादा बदतर हो गया है। वह बोलता कहाँ है,बस लीद करता है। व्यवहार करने के नाम पर वह मात्र जुगाली करता है।'[१]

महानगरीय जीवन की विभीषिका व्यक्त करते हुए लेखक ने पूरे परिवेश का नग्न एवं व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार व्याप्त है। सामाजिक भ्रष्टाचार इस हद तक पहुँच गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वकील बेशर्मी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय तस्करों के पैरवीकार बने हुए हैं।'[२]

समाज में कितनी संवेदनहीनता उत्पन्न हो गई है कि किसी गरीब के बेटे का इंतकाल हो जाता है, चार आदमी तक श्मशान जाने के लिए नहीं मिलते। किसी सेठानी का कुत्ता मर जाता है तो जैसे वह विधवा ही हो जाती है। हफ्तों 'शोक' मनाया जाता है।'[३] बाप से बेटा यह कहने में शर्म महसूस नहीं करता—'डैडी डोंट इन्सल्ट माई बर्थ। मैंने आपसे नहीं कहा था कि मुझे पैदा करो।'[४]

राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि लाश तक को कुर्सी पर बिठाकर श्मशान तक ले

---

१. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. १३-१४
२. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. १५
३. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. ४६
४. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. २६

जाय और कुर्सी पर बैठे-बैठे ही उनका दाह संस्कार सम्पन्न हो।'[१] यही स्थिति राजनीति, धर्मनीति, समाज में ही नहीं अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी व्याप्त है। थोड़ी-सी दाढ़ी बढ़ा लो और बम्बई के अज्ञेय बन जाओ वाली प्रवृत्ति फैलती जा रही है।'[२] ऐसे मुखौटेबाज पर कटाक्ष करते हुए लेखक का कथन द्रष्टव्य है—'कैपिटल का कबर भर देखा है और कॉफी हाउसों की मेज पर ऐसे मुक्के पटक-पटक कर और चिल्ला कर बहस करेंगे कि जैसे डर के मार्क्सवाद उनके चरणों के पास भागा चला आयेगा····और कहेगा····हे मार्क्स के रक्तबीजों, मैं उपस्थित हूँ। मुझे अपनी धरती पर शरण दे दो। लेकिन कॉफी हाउस की पुरानी मेजों को मत तोड़ों और अपना गला मत फाडो।'[३]

इस व्यवस्था के दिखावटीपन पर लेखक ने कही-कहीं अच्छा हास्य भी दे दिया है—'अरे भेंट में अपनी तरफ से दे दूँगा। मैंने पिछले हफ्ते ही वी.आई.पी. का ब्रीफकेस खरीदा है, ब्रैंड न्यू है, वह आपको भेंट दिया जायेगा।

तुम्हारी तरफ से····। यार कामन रूप मैं दे दूँगा। घर आकर मुझे वापस कर देना।'[४]

देवेश ठाकुर शोषितों एवं दलितों के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रचनाकार है। वे उस व्यवस्था से कभी भी सहमत नहीं हो पाते, जिसमें सामान्य जनता भ्रष्ट व्यवस्था का शिकार होकर उसके आतंक से पीड़ित हो, किसी तरह मात्र सांस ले रही हो। अत: ऐसी व्यवस्था के प्रति आक्रोश स्वाभाविक ही है—'भारत में आजादी तो आयी लेकिन कुछ विशिष्ट लोगों के लिए। सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति तो व्यवस्था का शिकार ही बना रहा। इसका प्रमुख कारण यह रहा कि यहाँ उच्चस्तर पर हमेशा पूँजीपतियों का राज रहा है। नेता और मंत्री तो उनकी जेब में रखे हुए ताश के पत्ते हैं और निचले स्तर पर पुलिस राज है। वह आपकी हर तरह से मदद करने को तैयार है। उससे बलात्कार करवा लो, डकैती डलवा लो, किसी शरीफ आदमी को सरे आम पिटवा लो, हत्या और डकैती का केस दबवा लो, जजों, प्रोफेसरों और अंधों पर लाठियाँ चलवा लो, वह हर जगह आपकी मदद को हाजिर है।'[५] यह सब करने के लिए वह इसीलिए तैयार है क्योंकि उसे महीने में एक पैकेट तनख्वाह का मिलता है तो दूसरा हफ्ते का।'[६] यही उजागर करना इस उपन्यास का उद्देश्य है।

जनगाथा

'जनगाथा' उपन्यास का कथानक किसी एक व्यक्ति की कहानी न होकर आम

---

१. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. ५६
२. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. ४६
३. काँचघर, देवेश ठाकुर पृ. ४२
४. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. ४४-४५
५. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. १३
६. काँचघर, देवेश ठाकुर, पृ. १५

आदमी की कहानी है। आम आदमी वह है जो मध्यवर्गीय अभाव, संत्रास और कुण्ठाग्रस्त होकर जीवन को बोझ के रूप में किसी तरह ढो रहा है। इसके साथ ही 'जनगाथा' अपनी विवादास्पद लेकिन निश्चित दृष्टि के लिए विख्यात प्रगतिचेता समीक्षक और कथाकार देवेश ठाकुर की लौह लेखनी से निःसृत युगीनबोध का दस्तावेज है।— 'पूँजीपति, प्रशासन, पुलिस और पॉलिटिक्स आज इसकी मिली भगत से पूरा देश एक माफिया की गिरफ्त में आ गया है। लेखक भी इस माफिया में शामिल हो चुका है। सरकारी तंत्र और पूँजीवादी प्रेसों के षड़यंत्रों का शिकार आज का लेखक और पत्रकार शराब पीने और रमी खेलने में खो गया है। जो नहीं खोया है, उसे मिटा देने के लिए सभी सम्भव षडयंत्र चालू कर दिये जाते हैं।....आज लेखक और पत्रकार भी कलम, रम और ह्विस्की में डूब कर रह गया है।

जो मारे उसको मारो। जो दुःख दे उसको दुःख दो। जो शोषण करे उसका सीधा विरोध करो। सिर्फ इसी तरह क्रान्ति की दिशा प्रशस्त हो सकती है। गाँधीवाद इस देश के लिए अप्रासंगिक हो गया है। अहिंसा का मतलब नामर्द होना है। जो पार्टी जनता का चार सौ करोड़ रूपया खर्च करके चुनाव जीतती है, वह जनता की हितैषी हो ही नही सकती। ऐसी सत्ता को समाप्त करने के लिए कोई भी माध्यम गलत नहीं है। सारा देश जनता का है, नेताओं का नहीं, सारा उत्पादन जनता का है, जमाखोरों का नहीं, सारी उपलब्धि जनता की है, किसी खानदान की नहीं।'[१]

इसके साथ ही लेखक ने विभिन्न शिल्पों का प्रयोग कर उपन्यास को रोचक बना दिया है। मूलतः इसमें लेखक की रचना-प्रक्रिया लेखकीय पारिवारिक और सामाजिक परिवेश तथा मुख्यकथा का अत्यन्त सफलता के साथ समन्वय हुआ है। शैल्पिक ताजगी और नयेपन के साथ सम्पूर्ण उपन्यास अत्यन्त विचारोत्तेजक भावनाओं से परिपूर्ण है। लेखक के शब्दों में—'जनगाथा सिर्फ शकुन की ही कहानी नहीं है, उस परिवेश की भी है जिसमें हम रहने के लिए अभिशप्त हैं। जहाँ तक इसके कथ्य का प्रश्न है, मैंने उसके माध्यम से अपनी दृष्टि को और अधिक स्पष्ट करने की कोशिश की है। शिल्प की दृष्टि से अपने अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें भी नितान्त नया प्रयोग करने का प्रयास मैंने किया है।

आज का हिन्दी उपन्यास कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से एक ऊँची छलांग लगा चुका है। मेरी रचनाधर्मिता सभी दृष्टियों से अपने समकालीनों के संग-संग चल सके और साथ ही उसके माध्यम से मैं अपनी बात भी पूरे प्रभाव के साथ कह सकूँ, इस ओर मेरी दृष्टि हमेशा बनी रही है।'[२]

विवेच्य कृति में लेखक ने कैंसर रोग से ग्रस्त शकुन की कथा-व्यथा को 'फ्लैश बैक' पद्धति में बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के

१. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. २७५-७६
२. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. २७५-२७६

समय एक परिवार सब कुछ पाकिस्तान में छोड़कर दिल्ली के किसी खेमें में निवास करने लगता है। शकुन उस परिवार में सबसे बड़ी लड़की है। ऐशो-आराम से गुजर करने वाला वह परिवार अब रिफ्यूजी कालोनी में एक कमरे में नारकीय जीवन जीने को विवश है। पिता इस बदलती स्थिति से पूर्व ही चल बसे हैं, भाई मार्क्सवादी गुट में कहीं लापता हो जाता है।

'रामनगर छूट गया····अपनी हवेली, हवेली से लगे खेत, खेतों की हरियाली, मिट्टी की गंध, अमरूदों के कुंज कुछ पीछे छूट गया है। अब थोड़े से बरतन हैं, एक ट्रंक में सबके कपड़े····साबुन की टिकिया, दन्तमंजन। बस, इतना ही बाकी बचा है और बचा है एक लम्बा अनिश्चित भविष्य।'[१]

शकुन की शादी साधारण ढंग से मोहिन्दर से हो जाती है। शादी के दूसरे दिन जब वह पति के साथ नयी जीवन की कल्पनाओं को लिए फर्स्टक्लास में सफर कर रही थी, अचानक मोहिन्दर की चलती ट्रेन से गिरकर मौत हो जाती है। सारी कल्पनाएँ धराशायी हो जाती है। एक घर बनने से पहले ही उजड़ जाता है, सपने नींद में ही टूट कर बिखर जाते हैं।

सम्पूर्ण उपन्यास इसी शकुन के सुख-दुःख का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। लेखक ने विभिन्न शैलियों के माध्यम से कथानक को अत्यन्त रोचक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। कहीं अखबार की तरह तो कहीं पत्र शैली, कहीं विवरणात्मक शैली और कहीं डायरी शैली तो कहीं आत्मकथ्यात्मक शैली का सहारा लिया गया है। शिल्पगत वैशिष्ट्य कथानक को बोझिल न बनाकर एकरसता को दूरकर रूचिकर बनाने में सहायक है।

उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं विसंगतियों को उजागर करना ही रहा है—'आम आदमी के नाम पर बनी हुई योजनाओं का पैसा सरकारी जनों से लेकर निजी ठेकेदार तक डकार जाते हैं। अकाल पड़ने के लिय यज्ञ कराये जाते हैं ताकि राहत कार्यों में अपना कुछ पैसा बने। इस सारे देश की जनता अफीम खाकर सोई पड़ी है। कुम्भकरण की यह औलाद तब तक नहीं जागेगी, जब तक इसके चूतड़ों पर गरम-गरम सलाखें न दाग दी जायें। लेकिन लाख टके की सच्चाई तो सिर्फ यह है कि हमारा नेतृत्व भ्रष्ट है और इसीलिए हम भ्रष्ट हैं।'[२]

यही नहीं लेखक ने चाटुकार समीक्षकों को भी अपने व्यंग्य से स्पष्ट रूप से आहत किया है—'मैं कोई नामवर जैसा विद्वान तो नहीं, जो अज्ञेय को तो गुलशन नन्दा के समकक्ष रख दूँ और बच्चन ग्रन्थावली के विमोचन के अवसर पर इन्दिरा गाँधी के बगल में बैठकर बड़े-बड़े शब्दों में बच्चन की क्रान्तिधर्मिता पर व्याख्यान दे डालूँ। मैं तो अदना सा लेखक हूँ, नामवर जी तो ऊँची चीज हैं। उनके तो स्पर्श मात्र से

---

१. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. २७
२. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. २४७

सामान्य व्यक्ति भी लेखक बन जाता है और थोड़े से सम्पर्क से सामान्य लेखक विशिष्ट हो जाता है, मुझमें इतनी प्रतिभा कहाँ।'[१]

आलोच्य कृति में लेखक समस्या उठाकर उसका समाधान भी देता है—'दल-बदल को अवैध घोषित कर दो। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर दो। सभी नियुक्तियाँ कन्ट्रेक्ट बेसिस पर दे दो। पुलिस और प्रशासन और कानून विभाग में तनख्वाहें दुगुनी-तिगुनी करके उसके बाद इन विभागों में भ्रष्टाचार फैलाने वालों को सड़क पर नंगा करके धुन दो। सामाजिक अपराधियों की आँखें निकाल कर आई बैंक में दे दो। भ्रष्ट राजनेताओं को देश निकाला दे दो। युद्धस्तर पर सभी वर्गों के लिए आवास, भोजन और पानी की व्यवस्था दो। शिक्षा, अकाल और बाढ़ की समस्या को प्राथमिकता दो। बड़े प्रतिष्ठानों के समानान्तर लघु उद्योगों को बढ़ावा दो। शिक्षा और चिकित्सा की शिक्षा निःशुल्क कर दो, विज्ञापन में उत्तेजक नारी देह का विज्ञापन बन्द कर दो। पब्लिक और कान्वेण्ट स्कूलों पर प्रतिबन्ध लगा दो। देश को एक राष्ट्रभाषा दो। प्रदेशों में प्रादेशिक भाषा के व्यवहार को अनिवार्य कर दो। सारे प्रचारतंत्रों को स्वायत्त बना दो। कुल वेतनमानों की अधिक-से-अधिक दस श्रेणियाँ बना दो—फिर देखो, देश में सक्रियता और खुशहाली आती है या नहीं। लेकिन साली कौन-सी सत्ता ऐसा करके अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना चाहेगी। यह काम भी अन्ततः जनता को ही करना पड़ेगा। आज न करे, आज से दस साल बाद तो करना ही पड़ेगा।'[२]

सम्पूर्ण उपन्यास समसामयिक समस्याओं को लेकर उनका समाधान प्रस्तुत करता है। लेखक पूर्ण रूप से सफल भी हुआ है।

जगदीशचन्द्र पाण्डेय

जन्म— १ जुलाई, १९३७,
ग्राम— खडगोली, पो. रानीखेत, जिला-अल्मोड़ा
शिक्षा— बी.ए., प्रभाकर
रचनाऐं— (१) गगास के तट पर, १९६८ (उपन्यास)
(२) संज्ञा से पहले (उपन्यास)
(३) धरती और नींव (उपन्यास)
(४) महाकालेश्वर की एक रात (उपन्यास)
(५) कहा था : सुना था (कहानी संग्रह)
(६) अपना-अपना दुःख (कहानी संग्रह)
अब तक लगभग ८० कहानियाँ प्रकाशित।
सम्प्रति— शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय, भारत-सरकार की पत्रिका संस्कृति के छः वर्ष और अब वहीं अनुवाद कार्य।

---

१. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. ७९
२. जनगाथा, देवेश ठाकुर पृ. २७७

गगास के तट पर (१९६८)

'कुमाऊँ भूमि सुधार कानून' के अन्तर्गत गगास नदी के तटवर्ती इलाके में बन्दोबस्त की प्रक्रिया आरंभ होने की तैयारी थी कि पहले दिन ही गाँव के क्षत्रियों और शिल्पकारों में संघर्ष हो गया। शिल्पकार अनराम जिन खेतों में वर्षों से खेती करता आ रहा था, थोकदार ने उन्हें अपना बता दिया। 'बेचारा अनराम रसीद कहाँ से देता ? रकम देने पर भी उसे रसीद कभी नहीं मिली थी। आपसी विश्वास पर ही काम चल रहा था। रसीद का सम्बन्ध कानून से है। समाज की जड़ें कानून से नहीं बढ़ती। वे तो सिर्फ आपसी प्रेम व विश्वास से बढ़ती है।'[१]

खीमराम एवं अन्य कई शिल्पकारों ने अनराम के पक्ष में आवाज उठाई। इसी बात पर झगड़ा खड़ा हो गया। धनुवा अपने लगाये गये आम के पेड़ों पर आस लगाये बैठा था। इससे पूर्व भी जब कभी झगड़ा होता था तो गाँव का मुखिया चौपाल में बैठकर सलाह-मशवरा कर झगड़ा शान्त कर देते थे, किन्तु आज चौपाल में कोई भी झगड़ा निबटाने के पक्ष में नहीं था। यह तो मिट्टी का प्रश्न था, उस मिट्टी का जिसमें किसान का जीवन-मरण निर्भर करता है, जिसमें उसकी रोजी-रोटी चलती है। धनुवा त्याड़ज्यू की दुकान में सब दूध बेच आता है। अपने पुत्र शेरू तक को भी वह एक बूँद दूध नहीं दे पाता। धनुवा रानीखेत में मंत्री जी का भाषण सुनता है किन्तु अंग्रेजी भाषण उस अनपढ़ किसान के पल्ले नहीं पड़ता। पहली बार अपनी अशिक्षा का अभाव खटकता है। उनका एक शब्द 'अमेरिकन ह्वैट' उसके मन-मस्तिष्क में छा गया। तभी से वह नये बीज एवं फसल की कल्पना कर मन-ही-मन प्रसन्न होता, किन्तु यथार्थ कितना दारुण और कठिन है। अनराम के चीख में की गई बातों की चर्चा नरेन ने त्याड़ज्यू को भी बता दी। दूसरी तरफ धनुवा के साढ़े तीन सेर दूध के आठ महिने का कुल चार सौ चौवन रुपये से उनतीस रुपये के रुक्के में अनराम के कहने पर अगूँठा टेक दिया। धुनुवा सोचता रहता है कि अपने बच्चों तक को भी दूध नहीं पिला पाया। शेरू के बीमार पड़ जाने पर थोकदार कुछ रुपये दे देता है इस चेतावनी के साथ कि अगले वर्ष से आम के पेड़ भी मेरे हो जायेंगे। फसल काटने के लिए भी मजदूर दूसरे गाँव से आये। उन्हें न जमीन मिली और न ही मजदूरी, विवशता है न अपने खेतों में काम की मजदूरी और न खेती करने का हक। अन्त में वह आम के पेड़ काटने की सोचता है, किन्तु ममतावश उन्हें काट भी नहीं सकता।

प्रस्तुत उपन्यास में कूर्माचल के उन शिल्पकारों की दु:खभरी कथा है जो जमीन जोतते हैं, परिश्रम करते हैं, अन्न पैदा करते हैं किन्तु अपने लिए नहीं साहूकारों, थोकदारों के लिए, जो भूमि के मालिक बनकर उसी में कुण्डली मारे बैठे हैं। भैंस का दूध बच्चों के लिए नहीं अपितु कहीं और चला जाता है। फलों से लदे पेड़ हैं पर उनके बच्चे केवल तरस कर रह जाते हैं। हरे-भरे जंगलों का लाभ स्थानीय जनता को न मिलकर

---

१. गगास के तट पर, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, पृ. १३-१४

ठेकेदारों और मिल-मालिकों को मिलता है। पीढ़ियों से अभिशप्त जीवन जी रहे हैं। इसका विकल्प तभी हो सकता है, जब उनमें जागृति आये, एकता के सूत्र में बँधने की।

यह अलगाव की स्थिति दुनिया में हर जगह है, किन्तु धूर्त अंग्रेजों ने इसे और अधिक गहरा कर दिया अपनी कूटनीति से। अब इस खाई को पाटना असम्भव सा हो गया है। इस फूट की शुरुआत देश विभाजन के रूप में हुई थी, किन्तु अब हम भाई-भाई अलग होकर अभिशप्त जीवन जीने को विवश हो रहे हैं।

विवेच्य उपन्यास में पर्वतीय जीवन का एक खण्डचित्र प्रस्तुत किया गया है। एक कोने में निवास कर रहे शिल्पकारों का, भूमिहीनों का, दीन दुखियों का सजीव चित्रण किया गया है। हमारे प्राय: सभी आंचलिक समाज निर्धन एवं दीन स्थिति में है इसलिए उनकी प्रस्तुति में अनिवार्यतया उत्पीड़न, द्वेष और प्रतिहिंसा के चित्र उभरे हैं। दलित-शोषित जाति का उत्पीड़न उसे और भी उग्र बना देता है। 'गगास के तट पर' के विषय में अज्ञेय के विचार—

'गगास के तट पर' भी ऐसे ही उत्पीड़ित समाज का और ऐसे ही शोषण का चित्र है, पर साथ ही वह नयी जागृति और अन्याय के विरोध की भावना का भी चित्रण करता है। दलित वर्ग में एक नये आत्मगौरव के नये भाव के उदय को महत्त्व देता है। चित्र में अभीतक यह भाव एक राग स्थिति ही व्यक्त करता है। किसी सुनियोजित प्रणाली की प्रेरणा का संकेत वह नहीं देता, पर ऐसा इसलिए कि जिस देश काल की वह कहानी है उसकी सच्चाई यही है या थी। जब महात्मागाँधी के विचारों के खमीर से उत्पन्न पहली हलचल के युग की इस कहानी में एक ओर हरिजन खेतिहर मजदूरों में आत्मसम्मान और सहयोग का भाव उभरता है तो दूसरी ओर जमींदार साहूकार भी नये बन्दोबस्त के लिये अमीन को पटाने और 'डुमड़े' कर्मकारों को कुचलने की साजिश करते दिखाये जाते हैं। जिन्होंने हिन्दी का आंचलिक उपन्यास साहित्य पढ़ा है वे इस या इसकी समान्तर स्थितियों से खूब परिचित होंगे और गाँव के भोले लगाव-दुराव के नक्शे भी उन्हें अनपहचाने नहीं लगेंगें।'[१]

इस उपन्यास के सम्बन्ध में सुधी समीक्षक देवेश ठाकुर के विचार 'कुमाऊँ प्रदेश की आंचलिकता को जगदीशचन्द्र पाण्डेय के 'गगास के तट पर' सफल अभिव्यक्ति मिली है। इसकी वस्तु में आंचलिकता की घनी छाया अंकित हो गई है। वैसे भाषा-शैली और शब्द-प्रयोग किसी भी दृष्टि से इसमें कहीं आंचलिकता का कोई आग्रह नहीं होता।'[२]

धरती और नींव (१९७८)

आत्मकथ्यात्मक शैली में लिखा गया यह एक मध्यवर्गीय युवक की संघर्षपूर्ण

१. गगास के तट पर, भूमिका, अज्ञेय, पृ. ८-९

२. मैला आंचल की रचना प्रक्रिया (आंचलिक उपन्यास—स्वरूप और विकास) देवेश ठाकुर, पृ. २७

कहानी है। साथ ही सम्पूर्ण समाज को साथ लेकर आदर्श मार्ग में चलने का सन्देश देती है। रानीखेत में मैट्रिक पास कर लेखक दिल्ली आ गया। आर्थिक विपन्नतावश लेखक आगे की पढ़ाई रोक कर सेना में भर्ती होना चाहता है, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिलती। लेखक की विवशता पर खान साहब उसे एक हजार रूपये देकर घर भेज देते हैं। माँ के स्वस्थ होते ही वह पुनः दिल्ली आ जाता है, जहाँ खान साहब उसे सचिवालय में एल. डी. सी. के पद पर नियुक्ति दिला देते हैं। कार्यालय में खन्ना साहब के सेक्शन में आते ही लेखक को अन्य जगहों से भिन्नता लगती है। सेक्शन आफिसर खन्ना साहब के इशारों पर चलता है। प्रत्येक कर्मचारी निष्ठा से कार्य करता है, इसका श्रेय खान साहब को ही जाता है। सेक्शन के प्रत्येक कर्मचारी को खान साहब पूरी सहायता एवं सहयोग देते हैं, स्वयं मंत्री भी खान साहब के विभाग की प्रशंसा करते हैं। लेखक को साथी शर्मा से भी यही बात स्पष्ट होती है।

आर्थिक जर्जर परिस्थितियों में जी रहे लेखक को खान साहब का स्वभाव असाधारण एवं आकर्षक लगा। एक दिन जिज्ञासावश वह खान साहब के विभाग के कर्मचारियों से गुप्त रूप से जानकारी लेता है, किन्तु उसका कौतूहल शान्त न होकर और भी बढ़ता है। खान साहब (अशरफ) के बारे में उनके सहपाठी सक्सेना ने बताया कि खान साहब के पिता बहुत क्रूर स्वभाव के थे। अपना धन वसूलने के लिये वे दूसरे की हत्या तक कर देते थे। यहाँ तक कि अशरफ की माँ को भी वे पैसा न मिलने से ही अपने घर उठा लाये थे, किन्तु अब खान साहब के कहने पर खैरात बाँटते हैं।

खान साहब के बारे में और अधिक जानने के लिए लेखक उनके मुहल्ले निकल्सन रोड की ओर चल दिया। लेखक उनके गेट तक पहुँच जाता है। वहाँ गेटकीपर लेखक को खान साहब की दयालुता के विषय में बताते हुए कहता है—'इस जमाने में भी इनका परिवार मिला जुला है। उम्र ज्यादा होने के कारण इनके अब्बाजान तो खैरात ही बाँटने का काम किया करते हैं। इनके दो चाचाओं के तो बम्बई और अहमदाबाद में कपड़े के कारखाने हैं। तीसरे चाचा का कारों का कारखाना यहीं दिल्ली में है। बाकी इनके चार चाचाओं का विदेशों में अरबों रूपये का काम चल रहा है....।'[१]

गेट के अन्दर जाने में लेखक को प्रोफेसर शेखर चौकीदार के रूप में मिला। शेखर ने उसे बताया—'इस समय आप मुझे चौकीदार के रूप में देख रहे हैं। इसके अलावा साल में एक दिन आप मुझे बादशाह साहब की धरती की सड़कों पर झाड़ू लगाते जमादार के रूप में भी देख सकते हैं। बाकी सारे दिन आप मुझे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के रूप में भी देख सकते हैं।....मैं तो सिर्फ इस धरती की हकीकत को सामने रखना चाहता हूँ कि खान साहब के वसूल के मुताबिक यहाँ रहने वाले हर आदमी को ऐसा स्वेच्छा से करना होता है। ऐसा करने में हमसब भी गर्व अनुभव करते हैं। यदि आपको मेरी बातों का यकीन न हो तो आप स्वयं यहां रहकर सब देख सकते

१. धरती और नींव, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, पृ. ४१

हैं। स्वयं बादशाह साहब और उनके अब्बाजान तथा उनके दिल्ली वाले चाचा एक दिन चौकीदारी करने तथा एक दिन झाड़ू लगाते हैं कि नहीं ?'[१]

शेखर से मिलने के बाद लेखक को खान साहब की कार साफ करते हुए एक और व्यक्ति मिला। उसने बताया कि दवा के अभाव में मेरे बच्चे की मौत हो गई थी तब से आक्रोश में मैंने न जाने कितने खून कर दिये तथा कितने डाके डाले, किन्तु खान साहब ने मेरा हृदय परिवर्तन कर दिया।

अन्त में लेखक खान साहब की अम्मीजान से मिलता है, जो उसे खान साहब के जन्म की बातें बताते हुए कहती हैं—'एक सन्यासी के आशीर्वाद से अशरम पैदा हुआ। उसके पैदा होने से पूर्व रात में सपने में सन्यासी ने कहा—'यह खुशी सिर्फ उस समय तक है जब तक तुम हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि में फर्क न समझो। याद रखो कि जिस दिन तुमने फर्क समझा उसी दिन खुशी गमी में बदल जायेगी....।'[२] इसी वाक्य के द्वारा लेखक समाज में एकरूपता लाने का प्रयास करता है तथा आपसी प्रेम एवं एकता को बढ़ाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना लाना चाहता है।

आलोच्य उपन्यास किसी व्यक्तिविशेष की समस्या का उद्घाटन नहीं करता, अपितु सम्पूर्ण समाज में व्याप्त समस्याओं को उद्घाटित करता है। इसमें मुख्य रूप से निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की विभीषिकाओं को विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही विधवा विवाह, धार्मिक विद्वेष, बहुविवाह प्रथा, जातीय समस्या आदि को कुशलता से उठाया गया है।

सम्पूर्ण उपन्यास आद्योपान्त, रोचक एवं कौतूहलवर्धक है। अधिक पात्र और घटनायें होते हुए भी आपसी तारतम्य बना हुआ है। सम्पूर्ण उपन्यास असाधारण व्यक्तित्व के खान साहब के चारों ओर घूमता है। गाँधीवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया है 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं'। उपन्यास में विश्वबन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को साकार करने की भावना जागृत की गई है।

महाकालेश्वर की एक रात

'महाकालेश्वर की एक रात' भटके हुए इन्सान के तलाश की एक सफल कृति है। समय और घटनाओं की दृष्टि से यह उपन्यास आजादी के पहले से लेकर आज तक के कालखण्ड का एक रात्रि-कैपसूल है। इसका कथानक ढलती सांझ में शुरू होता है और उसी ओर समाप्त हो जाता है। मगर इसमें उन सारी धारणाओं और प्रवृत्तियों का समावेश है, जिनके तहत आज की महाकालेश्वरी रातों के भोक्ताओं ने कभी रामराज्य की कल्पना की थी। चूँकि इस कल्पना के जनकों के या इसके कर्णधारों के इरादे नेक थे या हैं। इसलिए इस कल्पना की लौ आज भी जिन्दा है, शायद ऐसा

---

१. धरती और नींव, पृ. ४६-४७

२. धरती और नींव, पृ. ४१

इसलिए कि मनुष्य स्वभावत: लगभग हर ठोकर से न सिर्फ सजग होता है, वरन उसमें एक नयी जागरूकता पैदा होती है।

आन्तरिक अनुभूति में लिखा गया यह उपन्यास इसी जागरूकता की एक जीवन्त और मार्मिक अभिव्यक्ति है। विशन्दा तरूआ जैसे समाजद्रोही को फटकारते हुए अन्त में कहते हैं—'सिर्फ इतनी नहीं, यह भी बताने को कि तुम्हारे लकड़ी गोदाम में इस समय लगभग साठ लाख की ऐसी लकड़ी है, जिसकी कीमत यहाँ के बाशिन्दे नहीं जानते तथा जिसका तुम वर्षों से छिपा व्यापार कर रहे हो। अब विशनदा कुछ ऐसे तन आये थे जैसे वे अब तक इसी क्षण की प्रतीक्षा भर कर रहे हों—'वैसे हम आज भी चुप रहते, पर तुमने और तुम्हारे लड़के ने मौके का फायदा उठाकर, तहसीलदार की जेब गरम करके हमें बंधाने तथा हमें बांधने वाले सरकारी ट्रक में दुर्लभ मूर्तियाँ यहाँ से खिसकाने के सोच की हद की थी। इससे हम चुप नहीं रह सकते। यह बात नहीं कि हमें तुम्हारी हरकतों का पता नहीं था। अब तक हम तुम्हारे अन्यायों को इसीलिए सहते रहे कि हम निहत्थे और अकेले थे। पर अब नहीं। बल्कि अब तो हम यहाँ तक के लिए तैयार है यदि सबूत न रहने देने के लिए तुम लकड़ी गोदाम में आग लगाने पर उतर आये, जैसे कि हो, तो हम तुम्हें ऐसा किसी कीमत में नहीं करने देगें। क्योंकि राष्ट्र की सम्पत्ति से तुम्हें भले ही प्यार नहीं है, पर हमें है। कीमती लकड़ी में हमारा भी तो हिस्सा है।'[१]

संज्ञा से पहले

लेखक का यह उपन्यास प्रसवेदना से संबंधित है। इसमें प्रसव वेदना में तड़फती, छटपटाती नारी की मनोव्यथा के अतिरिक्त स्त्री की प्रसव वेदना की आशंका से भयभीत अस्पताल के दरवाजे के बाहर ठहरे हुए पुरुषों की मनोव्यथा है। इसके साथ ही महानगरीय जीवन की विभीषिकाओं और आपा-धापी के बीच जीने वाले व्यक्तियों की विवशता का सजीव चित्रण है। कथ्य की दृष्टि से यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में अपना अलग स्थान रखता है।

डॉ. रमेशचन्द्र शाह

डा. रमेशचन्द्र शाह का जन्म सन् १९३७ में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.एससी. करने के उपरान्त इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया। इसके उपरान्त आप मध्यप्रदेश शासन की शिक्षा सेवा में दाखिल हुए। आजकल भोपाल के हमीदिया कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं।

कृतियाँ—

(क) निबंध— १. रचना के बदले (१९६७)
२. शैतान के बहाने (१९८०)
३. आडू का पेड़ (१९८२)

---

१. धरती और नींव, पृ. ४१

(ख) काव्यसंग्रह— १. कछुए की पीठ पर (१९७१)
२. हरिश्चन्द्र आओ (१९००)
३. पर्वत से नदी (१९०१)

(ग) उपन्यास— १. गोबर-गणेश (१९७७)
२. किस्सा गुलाम (१९८६)

(घ) नाटक एवं समीक्षा— १. मारा जाई खुसरो (१९८२)
२. छायावाद की प्रासंगिकता (१९७३)
३. समानान्तर (१९७३)
४. वागर्थ (१९७७)
५. जयशंकर प्रसाद (१९७७)
६. सबद निरन्तर (१९८६)

आपकी रचना 'स्मारक' को 'कहानी' पत्रिका की ओर से १९७५ का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त 'छायावाद की प्रासंगिकता' नामक इनके ग्रंथ को मध्यप्रदेश साहित्य-परिषद ने 'आचार्य नंददुलारे बाजपेयी पुरस्कार' से सम्मानित किया था।

रमेशचन्द्र शाह संवेदनशील रचनाकार और सूक्ष्मदृष्टि सम्पन्न आलोचक हैं।

गोबर-गणेश

उपन्यास का नायक विनायक प्रतिभासम्पन्न बालक है। उसकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर मथुरा काका उसे जी. आई. सी. में प्रवेश दिलाते हैं। तृतीय कक्षा से ही वह वजीफा पाता है। स्कूल से आने के बाद वह मथुरा काका की दुकान पर मदद भी करता है। टाइगर बीड़ी के विज्ञापन के लिए वह कविता लिखता है। साहित्य में उसकी प्रारंभ से ही रुचि थी, किन्तु मथुरा काका उसे साईंस साइड से पढ़ाते हैं। विनायक जगन काका के योग आदि से अधिक प्रभावित होता है। सरोज दीदी से विनायक को पता चलता है कि जगन काका आजादी की लड़ाई में जेल गये हैं। विनायक के पिता भगवान दास साधु-संतों की संगत में रहते हैं। विनायक को भी उनके साथ साधु-संतों के पास जाने, उनके प्रवचन सुनने में आनन्द आने लगा। हिन्दी के क्लास में—

'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम
दास मलूका यों कहें, सबके दाता राम।'

से गीता के 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते'। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षमं वहाम्यहम्' श्लोक की तुलना करने पर मास्टर साहब अज्ञानता व खीझ मिटाने के लिए विनायक को 'गोबर-गणेश' की संज्ञा दे देते हैं।

'अनोखे लाल जोर से सर झटकारते हैं। श्लोक का अर्थ उन्हें नहीं मालूम। छोकरा नक्शे दिखा रहा है। 'क्या मतलब हुआ इसका ? बोलता क्यों नहीं बे गोबर-

गणेश ?'[१] कुछ ही समय में विनायक की लच्छू, चन्दू, नारायण, अहमद, घंटी तथा त्रिभुवन से गहरी दोस्ती हो जाती है। राजा के लड़के त्रिभुवन से आर्थिक असमानता के कारण दोस्ती प्रगाढ़ नहीं हो पाती, उसके घर में विनायक को घुटन सी होने लगती है। जगन काका के जेल से छूट आने पर सरोज और विनायक को अत्यन्त प्रसन्नता होती है। मन्ती से जगन काका का प्रेम है, किन्तु आधारभूत समस्याओं को हल करने का कोई ठोस आधार नौकरी या व्यवसाय न होने के कारण बात जहाँ की तहाँ रह जाती है।

विनायक 'संदेश' पत्रिका निकालता है, जिसमें सरोज को लेख एवं जगन काका की डायरी के कुछ पन्ने भी छापे जाते हैं। नारायण (शिल्पकार) एवं अहमद (मुसलमान) को लेकर दोस्तों में मतभेद होने लगता है, किन्तु विनायक इसे दूर कर देता है।

जगन काका नौकरी की तलाश में इलाहाबाद चले जाते हैं, इधर विनायक प्रथम-श्रेणी में हाईस्कूल पास कर नैनीताल पढ़ने चला जाता है, संगी-साथी सब अल्मोड़ा ही रह जाते हैं, केवल त्रिभुवन ही उसका नैनीताल का साथी बनता है। दशहरे की छुट्टियों से पूर्व विनायक को जगन काका की मृत्यु का तार मिलता है। इस समाचार से उसे काफी दुःख पहुँचता है, सरोज का तो जैसे सहारा ही समाप्त हो जाता है। इसके बाद विनायक इलाहाबाद पढ़ने चला जाता है। सीनियर लड़के से झगड़ा होने पर विनायक उसे आहत कर देता है। वार्डन के पास गाँधी जी को अंग्रेजी में पत्र लिखता है, जिससे प्रभावित होकर वार्डन उसे चेतावनी देकर छोड़ देता है। उस अंग्रेजी के बारे में ज्ञानदत्त बाबू के वाक्य गूँज रहे हैं विनायक को—'····अरे स्वराज आया इन अंग्रेजी चिट्ठियों से, जो गाँधी जी ने एक के बाद एक वायसराय के मुँह पर मारी। एक-एक चिट्ठी एक-एक झापड़ के बराबर साबित हुई। जब इंग्लैण्ड के राजा ने पहली बार गाँधी जी का ड्राफ्ट पढ़ा तो उसका दिमाग चक्कर खा गया। उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह चिट्ठी पढ़ रहा है या बाइबिल बाँच रहा है।'[२]

इलाहाबाद हॉस्टल में उसका रूममेट सक्सेना था। वह बायोलॉजी का छात्र था। रात-दिन दुर्बीन व खुर्दबीन लेकर जुटा रहता, पामिस्ट्री का अध्ययन करता और विनायक से कहता है कि—'यू आर बॉर्न विद ए डिवाइडेड माइण्ड'। यह हो ही नहीं सकता—तुम उस हरामगिरी से लाख पिण्ड छुड़ाने की कोशिश करो, वह तुम्हें नहीं छोड़ने की····।' आगे वह डबल हेड लाइन का अर्थ समझाते हुए कहता है। रस्साकशी···· टग ऑफ बार बिटवीन टू म्यूच्युअली इर्रिकन्साइलेबल टेण्डेन्सीज। जस्ट लाइक योर मथुरा काका एण्ड जगन काका। तुम एक तरफ बेहद लॉजिकल और साफ-सपाट किस्म के आदमी हो और इसी कारण साइंस में आए हो और दूसरी तरफ तुम इस हरामगिरी में फँसे हो। यह हालत तुम्हारी, बेटा! मरते दम तक रहने वाली है।'[३]

---

१. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. ३४
२. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. २१६
३. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. २२३

सक्सेना वाले कमरे में मोहनदास रहते थे जिन्होंने अंग्रेजी में एम. ए. किया है। विनायक सारी किताबें पढ़ डालता है। सक्सेना विनायक को ट्यूशन दिलाता है। ट्यूशन में नायर साहब की बेटी को पढ़ाकर उसका खर्चा चल जाता है। बी.एस-सी. प्रथम श्रेणी में आने के बाद विनायक अंग्रेजी में एम. ए. करने लगा। नायक की बेटी शान्तम् से विनायक का प्रेम हो जाता है। शान्तम् भी विनायक को प्रेम करती है। इस बात से नायक नाराज हो जाता है। विनायक का ट्यूशन छूट जाता है। शान्तम् की माँ विनायक से कहती है कि शादी करके पहाड़ चला जाय, फिर चार छह महीने में लौटने पर स्थिति अनुकूल हो जायेगी, किन्तु विनायक की घर की स्थिति शोचनीय थी। एकमात्र बहिन सरोज की शादी टनकपुर के एक ठेकेदार से हो जाती है जो दुर्व्यसनी है। सरोज खुद दुःखपूर्ण जीवन जी रही है, उसके पत्र से पता चलता है। अतः विनायक को कोई रास्ता नहीं सूझता है। अल्मोड़ा आकर वह दयनीय आर्थिक परिस्थितियों को देखकर शान्तम् को पत्र लिखता है कि वह उसे भूल जाय, किन्तु स्वयं उसे नहीं भूल पाता। एक बार आई.ए.एस. की परीक्षा देने इलाहाबाद जाता है। किन्तु वहाँ जाकर पता चलता है कि नायक साहब केरल जा चुके हैं। उसे बड़ी निराशा होती है। वह परीक्षा दिये बिना लौट आता है। अन्ततः दिल्ली के किसी पब्लिक स्कूल में अध्यापक बन जाता है। विनायक निम्नमध्यवर्गीय अभावों की चक्की में पिसता युवक है, जो मेघावी होने पर भी समाज की दौड़ में पीछे ही रह जाता है। उसके सारे अरमान धरे ही रह जाते हैं। जगन काका और उसमें यही अन्तर है कि एक संघर्ष करते-करते टूट जाता है तथा दूसरा संघर्ष करने के लिए जिन्दा रहता है। साथ ही सही मार्गदर्शन न मिलने के कारण वह मंजिल के दरवाजे पर जाकर भी वापस लौट आता है। मथुरा काका अवसरवादी भौतिकता के पक्षपोषक है, तो जगन काका कविता, अध्यात्म, की ओर उन्मुख होते हैं। विनायक को दिखावे वाली दुहरे मुखौटे की जिन्दगी पसन्द नहीं है—'मेरा बचपन बहुत धार्मिक किस्म का था। बरसों तक मेरी बुद्धि मेरी पढ़ाई-लिखाई भी उस धार्मिकता के समानान्तर चलती रही, पर एक दिन ट्रेजडी हो गई। मैंने साइंस को रटने की बजाय समझना शुरू कर दिया और जैसे ही साइंस मेरी समझ में आया, मेरे अठारह साल के संस्कारों का जड़मूल से सफाया हो गया। तैंतीस करोड़ देवताओं से बसा हुआ वह जादुई संसार एकाएक भर-भराकर गिर पड़ा और मैं बिलकुल दिवालिया हो गया।'[१]

शिल्प की दृष्टि से उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है, किन्तु बीच-बीच में पत्र-शैली का प्रयोग कर उसे रोचक बना दिया है। सम्पूर्ण उपन्यास तीन खण्डों में विभक्त है अन्न-जल, त्रिपार्श्व, वर्णपट और अपने हिस्से का आसमान। प्रथम खण्ड में धार्मिक संस्कारों का पूर्ण प्रभाव है। विज्ञान रटने तक ही सीमित है। जिस दिन वह विज्ञान को समझने की सामर्थ्य पाता है, तब शान्तम् के प्रेम में फँस जाता है। सरोज के सिवा किसी की चिन्ता नहीं करता, शान्तम् से विवाह नहीं कर पाता, उसके जीवन में एक

१. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. ११-१२

अन्तर्विरोध चलता है—'एक भयानक अन्तर्विरोध मेरे जीवन को चला रहा है। मैं विश्वास नहीं करता और मैं विश्वास करता रहा हूँ। एक तरफ मुझे जीवन का कोई असंदिग्ध अर्थ और उद्देश्य नहीं दिखाई देता—कर्म की प्रेरणा ही जैसे मर गई है और दूसरी ओर मैं योग-साधना की ओर किस दुर्निवार ढंग से खिंचा जा रहा हूँ, जैसे सब यथार्थों का यथार्थ वही हो। एक ओर मैं प्रार्थना करता हूँ और दूसरी ओर····उस प्रार्थना करने वाले अंश का मखौल उड़ाती रहती है।····मेरे लिए दोनों उतने ही वास्तविक हैं।'[१]

साइंस को छोड़कर अंग्रेजी में एम.ए. करना। कविता न छपने पर गंगा में बहा देना। एक ओर मथुरा काका पिता तथा जगन काका से प्राप्त भौतिकता, अध्यात्म, धर्म तथा योग का मिश्रण है, दूसरी ओर शान्तम्, सरस्वती उसकी माँ का स्नेह एवं प्यार है। सरोज भी इसी कशमकश में जीती है। पति शराबी तथा भ्रष्टाचारी है। वह उससे न्याय की अपेक्षा रखती है, किन्तु हारकर अन्ततः उसे अपने पूज्यपिता और भाई के साथ मायके आना पड़ता है। अपने अन्तर्मन में उठ रहे विचारों का विश्लेषण करता हुआ विनायक कहता है—'मैंने ? मैंने कुछ नहीं सिरजा। हम कैसे सिरज सकते हैं ? हम केवल देख सकते हैं। सिरजना जीने से बड़ा होता है। हमारा दुःख हमें सिरजने की प्रेरणा नहीं देता। हमारे दुःख में आशा नहीं है। हमारी आँखों में भी नर की नहीं, नारायण की व्यथा है। 'गोदान' का अन्त मुझे किसी भी ट्रेजडी से ज्यादा भयावह लगता है।'

'क्यों लगता है ?'

'क्योंकि वह सृजन नहीं है, यथार्थ है। होरी को मैंने देखा है, धनिया को मैंने देखा है। होरी मेरा बाप था। धनिया मेरी माँ है।'

'तब तो तुम गोबर हुए।'

यहीं बिन्दु उपन्यास के नामकरण की, नायक के नामकरण की पुष्टि भी करता है और समर्थन भी करता है।

उपन्यास में यथार्थ-जीवन से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं को उजागर किया गया है। व्यक्ति की जिजीविषा उसे किस तरह अनेक दर्शन, धर्म और राहों से गुजरने के लिए बाध्य करती है, किन्तु बिना निश्चित दिशा के, दृढ़ संकल्प के कार्य अधूरा ही पड़ जाता है। जीवन बीच में ही चुक जाता है, कार्य पड़े ही रह जाते हैं। जगन काका इसके ज्वलन्त उदाहरण है। वे विनायक से कहते हैं—'तुम जितना डरोगे, वह उतना ही तुम्हें सताएगा। दुनिया बहुत बेरहम है बीनू। वह कमजोर पर रहम नहीं करती। अपनी रक्षा आप ही करना सीखो, नहीं तो हर कदम पर मार खाओगे।'[२] इतने स्पष्ट विचारों के और बुद्धिजीवी जगन काका अपनी मंजिल पाने से पूर्व ही टूट जाते हैं। उपन्यास का प्रारंभ अल्मोड़ा से होता है और नैनीताल, इलाहाबाद दिल्ली होता हुआ अल्मोड़ा जाकर ही पूर्ण होता है।

---

१. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. १८७

२. गोबर-गणेश, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ. ६५

किस्सा गुलाम

यह रमेशचन्द्र शाह का नवीन शिल्प और कथ्य के साथ प्रस्तुत उपन्यास है। इसमें भारतीय राजनैतिक पार्टियों का विवरणात्मक शैली में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि सोशलिस्ट एवं कम्युनिस्ट पार्टियों का क्या उद्देश्य था और उनमें आपस में क्या वैषम्य है। सोशलिज्म एवं गाँधीवाद पर विचार करते हुए— 'हमें अच्छी तरह पता है, इनकी सोशलिज्म क्या है। वह सड़ा हुआ व्यक्तिवाद है। निरा अनार्किज्म और क्या ? गाँधी का नाम जैसे हर कोई ले लेता है वैसे ये भी ले लेते हैं। मूरखों और जाहिलों के लिए वही एक खुलजा सिम-सिम है। बड़ी मुश्किल से ये अभागा कण्ट्री धरम की अफीम से निकलना सीख रहा था कि इस मदारी ने उसे वहीं पहुँचा दिया। पोलिटिक्स और साइंस, बस दो ही चीजें थी जो हिन्दुस्तान को इस हजारों साल की दलदल से निकाल सकती थी, निकाल रही थी। इस खब्ती बुड्ढे ने हमें फिर वहीं धकेल दिया।'[१]

'गाँधी को आप इतना ऊँचा मत लगाइए। उनकी नजर में इस देश का पूरा समाज था, कोई एक वर्ग या जाति नहीं। और वे तोड़ने में नहीं, जोड़ने में यकीन करते हैं।'[२]

एक अन्य स्थान पर—'हमें तो तुम्हारे लोहिया भी समझ में नहीं आते। सोशलिस्ट भी आखिर जरा सूम किस्म के कम्युनिस्ट ही तो हुए।'[३]

इसके अतिरिक्त उपन्यासकार ने जातिवाद के प्रश्न को सशक्त ढंग से उठाया है। शुद्रों पर हो रहे अत्याचारों का विरोध किया है। हिन्दू धर्म की जातीय कट्टरता के कारण ही धर्म परिवर्तन की नींव पड़ी तथा ईसाई धर्म का प्रसार देश में हुआ।

कथानायक कुन्दन नयी पीढ़ी का स्वतंत्र विचारों का पात्र है, जिसके मन में जातिवाद की गहरी चोट लगी है और जो शूद्र रहकर अपमानित होने से ईसाई होना अच्छा समझता है और हो भी जाता है। नारायण राम पुरानीपीढ़ी का गुलामयुग का दबे व्यक्तित्व का पात्र है, जो लकीर का फकीर बना रहता है। राम काका एक उदार विचारों के व्यक्ति हैं। ब्राह्मण होकर नारायण राम शूद्र के घर चाय पीते है, खाना खाते हैं। कुन्दन और नारायण राम में पीढ़ी अन्तराल के वैषम्य को प्रदर्शित किया है।

लेखक ने भारत के स्वतंत्र होने के समय से गुलामी की कारा से मुक्त होते लोगों के मन में परिवर्तन एवं देश में एक आशा की किरण फैलती दिखाई दी, जो शनैः शनैः क्षीण होती गई है।

शिल्प की दृष्टि से उपन्यास में वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त संवादशैली, पत्र शैली का भी सफल प्रयोग किया गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित हिन्दी है,

---

१. किस्सा गुलाम, रमेशचन्द्र शाह पृ. १०९
२. किस्सा गुलाम, रमेशचन्द्र शाह पृ. ११०
३. किस्सा गुलाम, रमेशचन्द्र शाह पृ. १११

कहीं-कहीं पर अंग्रेजी के पूरे वाक्यों को भी उठाकर रख दिया है—'बट इट इज मोर काम्प्लैक्स'[१] ओह आइ हेट इट'[२], 'यू डोण्ट रैस्पैक्ट योरसेल्फ[३] और 'देयर इज समथिंग फण्डामेण्टली रौंग विद यू'[४] इत्यादि। पर इससे उपन्यास में कहीं पर दुरूहता या क्लिष्टता का आभास नहीं होता। वस्तुतः शाह जी का आंग्ल-भाषा के प्रोफेसर के पद पर होकर भी हिन्दी साहित्य में आंग्ल-भाषा का इतना न्यून प्रयोग उनकी संयमता का ही द्योतक है।

ब्रजेन्द्र शाह

जन्म—अल्मोड़ा, १३ अक्टूबर, १९२८
शिक्षा—प्रयाग विश्वविद्यालय
लेखन—कविता, नाटक, कहानियां एवं उपन्यास
उपन्यास—शैल-सुता

अब तक लिखित एवं मंचित नाटक—

१. बलिदान, २. कसौटी, ३. आबरू, ४. एकता, ५. सुहागदान, ६. चौराहे की आत्मा, ७. चौराहे का चिराग, ८. शिल्पी की बेटी, ९. पर्वत का स्वप्न, १०. रेशम की डोर, ११. रितुरैन, २. खुशी के आँसू, १३. पहरेदार, १४. भस्मासुर, १५. राजुला-मालुशाही, १६. कुमाऊँनी तथा गढ़वाली रामलीला, १७. अष्टावक्र, १८. अजुबा बफौल, १९. महाभारत, १-२ भाग, २०. जीतूबगडवाल, एवं २१, गीतनाटिका वन्या।

विद्यार्थी जीवन में 'संगम' तथा 'नया साहित्य' पत्रिकाओं में कहानी एवं कविता प्रकाशित। १९४९ से अब तक आकाशवाणी के लिए लेखन एवं प्रसारण। उपनिदेशक, गीत एवं नाटक प्रभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, (भारत-सरकार) से १९८७ से अवकाश प्राप्त।

सम्प्रति—स्वतंत्र रूप से लेखन।

शैलसुता

यह ब्रजेन्द्र शाह का कूर्माचल में स्थित चम्पावत की लोक-कथा पर आधारित आंचलिक उपन्यास है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में—'शैलसुता भारत के कूर्माचल अंचल का एक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय उपन्यास है।····उसके मेले, उसके नृत्य, घाटियों में गूंजते उसके प्रेम विरह के गीत, जिस इंसान से उपजे हैं, उपन्यास लेखक ब्रजेन्द्र शाह इसे भूले नहीं है। बल्कि उन्होंने इस इंसान के नींव की एक-एक ईट परखी है····यह चित्रण दृष्टिहीन नहीं है, इसके पीछे एक विचार भी है····इसे लेखक

---

१. किस्सा गुलाम, पृ. २२१
२. किस्सा गुलाम, पृ. १६३
३. किस्सा गुलाम, पृ. ३२
४. किस्सा गुलाम, पृ. ३२

ने इतनी खूबी से उकेरा है कि वह कहीं अलग से लादा या थोपा हुआ नहीं दिखता, बल्कि यातना और संघर्ष की सहज परिणति के रूप में खिल उठता है।....लेखक ने इसके लिए भारी-भरकम साहित्यिक लबादा न हीं ओढ़ा है नहीं कोई ऐसा साहित्यिक तेवर अपनाया है, जिससे वह उचककर अपने को दिखा दे।....सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है इस उपन्यास की भाषा। तथाकथित आधुनिक उपन्यासकारों की तरह इस उपन्यास का लेखक नयी भाषा की खोज में अंग्रेजी की ओर नहीं भागा है, बल्कि अपने अंचल के जड़ों की ओर गया है और इतना विपुल शब्द भण्डार लाया है कि पाठक तृप्त हो जाता है। इस अंचल के तमाम शब्द उपन्यास में इस तरह जड़े गये हैं कि अपनी दीप्ति से भाषा को जगमगाते हैं....यह एक ऐसी खिड़की है, जिससे कूर्मांचल की ठंडी हवा आती है और जिससे वह गरीब देश और उसमें लड़ता हुआ इंसान दिखता है। इसमें कूर्मांचल की आत्मा सुरक्षित है। ब्रजेन्द्र शाह का यह पहला उपन्यास स्वागत के योग्य है।'[१]

'कवि और नाटककार श्री ब्रजेन्द्र लाल शाह ने जो न केवल पर्वतीय अंचल के हैं, बल्कि जिन्होंने अंचल के जीवन को जीया है। अपने इस उपन्यास 'शैल-सुता' में एक ऐतिहासिक प्रसंग को जिस कुशलता से विस्तार दिया है, उससे यह न केवल उपन्यास रहा है, बल्कि समाज के सबसे अधिक गरीब और प्रतिभासम्पन्न शिल्पी वर्ग की सशक्त आवाज भी बन गया है।'[२]

इस उपन्यास की सहजभाषा भावों को सहज एवं मार्मिक और हृदयस्पर्शी बना देती है। कहीं भी आरोपित भाव नहीं है। पात्रों के सरल स्वभावानुसार पात्रानुकूल भाषा उपन्यास को वास्तविकता के समीप खड़ाकर देती है। सभी घटनाएं सजीव हैं। कर्मठ, चेतनशील तथा संघर्षरत पात्रों के माध्यम से लोक-कथा को अमर कर दिया है। जिस वर्ग-समाज से कथा का चुनाव किया गया है, उनको अपनी समस्याओं, अपनी विवशता को समझने का अवसर दिया है, जिससे वे अपनी त्रुटियों का निवारण कर एक सूत्र में बँधकर अपनी समस्याएँ स्वयं हल कर सकें। उपन्यास में सभी वर्गों के पात्र हैं, प्रेम करते तरूण हृदय, लोकगीतों की सुमधुर गायिका, कुशल शिल्पकार, संघर्षरत मजदूर और चाटुकार कारिन्दे हैं, लोभी साहूकार हैं, निर्मम जमींदार है और सबसे सशक्त पात्र है आनन्द, जो अल्पायु में ही अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध आवाज बुलन्द करता है तथा नवीन प्रेरणा का संचार भी करता है। कस्तूरी नायिका है जो प्रेम, त्याग एवं श्रद्धा की साक्षात् देवी है तथा आनन्द के बताये मार्ग में चलकर उसके सन्देश में दृढ़ आधार प्रदान करती है। रघुनाथ एक कुशल शिल्पकार होते हुए अपनी बात का पक्का है। अन्तिम समय तक दायित्वों का निर्वाह करता है और झुकता नहीं, किन्तु टूटना उसकी नियति है। बंशिया नई सृष्टि का, नयी आशा का सूचक है।

कूर्मांचल की लोकगाथा पर आधारित यह उपन्यास कुमाऊँ की प्रकृति, यहाँ की

---

१. दिनमान, २१-२७ जून, १९८१ (शैलसुता एवं आंचलिक उपन्यास)

२. नवभारत टाइम्स, ४ जनवरी, १९८१

माटी, यहाँ का समाज, भाषा, शिल्प, धर्म, संस्कृति आदि को शब्द-शब्द द्वारा चित्रित करता चलता है। साथ ही दलित वर्गों को एकता के सूत्र में बाँधने का सन्देश भी देता है—'अपनी फूट के कारण ही हम गुमराह हो गये हैं, भटक गए हैं। हम काले आसमान को ताकते-ताकते बूढ़े होकर मर जाते हैं—पीढ़ियाँ बीत जाती है लेकिन रात का अंधेरा छटता नहीं····और पौ कभी नहीं फटती, सुबह कभी नहीं होती। जब तक इन थानों में, थोकों और छोटे-छोटे रजवारों में जगह-जगह बिखरे-छितरे शिल्पी और भूमिहीन खेतिहर मजूरी 'कैनी' मिलकर एकजूट नहीं होंगे, तब तक हम ढोर-ढंगरो का सा जीवन जीयेगें और तब तक सुबह कभी नहीं आयेगी।'[१]

पानू खोलिया

जिला अल्मोड़ा के एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्म लेकर निरन्तर संघर्षरत जीवन। संप्रति भरतपुर (राजस्थान) में हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं। अब तक प्रकाशित रचनायें—

(क) उपन्यास—

(१) सत्तरपार के शिखर—पराग प्रकाशन, दिल्ली

(२) टूटे हुए सूर्य बिम्ब—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

(३) जो अपने थे (धारावाहिक)— साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १९६७-६८

(४) अपना एक और (धारावाहिक)—वातायन, बीकानेर, १९७०

(ख) कहानी—

(१) एक किरती और (कहानी संग्रह)—सुषमा प्रकाशन, दिल्ली

(२) अन्ना (कहानी संग्रह)—मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

(३) दण्डनायक (कहानी संग्रह)—सरस्वती बिहार प्रकाशन, नई दिल्ली

इसके अतिरिक्त काफी संख्या में कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी हुई हैं।

सत्तर पार के शिखर (१९७८)

डॉ. पवन अपने परिश्रम, लगन से माता-पिता और सहयोगियों से उपेक्षित किये जाने के बाद भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता। एक दिन वह महाविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर पहुँच ही जाता है। उसकी पत्नी शकुन्तला एक अशिक्षित महिला है वह उस माहौल में अपने को कैद समझती है, जिसमें एक प्रवक्ता रहता है, इसलिए वह पति से भी घृणा करती है। निम्न मानसिकता के कारण उसे बच्चों से भी मोह नहीं है। निर्मोही हो जाना दरअसल घृणा है। पवन के लिए घृणा जो इस प्रकार प्रकट हो रही है। पवन के लिए घृणा क्योंकि वह अपनी दूसरी बहनों की तरह किसी हट्टे-कट्टे, ऊँचे डील-डौल वाले फौजी मर्द के साथ न ब्याही जाकर एक कूपमण्डूप किताबी कीड़े के साथ जिन्दगी भर के लिए बाँध दी गई, जो दो-एक घंटे कालेज जाकर फौरन लौट

१. शैल-सुता, ब्रजेन्द्र शाह, पृ. ५७-५८

आता है और फिर तमाम वक्त के लिए उस बेचारी की आजाद पसंदगी पर पहरा डल जाता है।'[१]

अन्ततः शकुन्तला अपने छोटे पुत्र को लेकर चली जाती है और दो बच्चियों के लालन-पालन का बोझ पवन को उठाना पड़ता है। पड़ोसियों की नुक्ताचीनी से बचने के लिए पवन माथुर के मकान पर कमरा किराये में ले लेता है। उस मकान में एक विधवा महिला कुन्दन अपनी छोटी सी पुत्री के साथ रहती है। मकान-मालिक माथुर की पुत्री सीमा एम.ए. अंग्रेजी की छात्रा है, जो पवन के पास पढ़ने आती है तथा धीरे-धीरे उसे अपनी तरफ आकर्षित भी करने लगती है। सीमा की बुरी नीयत देखकर पवन ने उसे समझाया तथा उसे पढ़ाना बन्द कर दिया। बच्चियों की परवरिश में कुन्दन ने सहयोग दिया, धीरे-धीरे वह पवन के जीवन में पत्नी के रूप में आ गई। उसे पाकर पवन को बच्चियों के लिए माँ की आवश्यकता का एहसास कम हो गया, किन्तु सात वर्ष साथ रहने के बाद एक दिन कुन्दन शहर छोड़कर चली गई तथा पवन के नाम एक पत्र लिख गई, जिसका आशय था कि हमारे साथ रहने से बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। मैं यह भी नहीं चाहती कि तुम पुत्रियों से अलग रहो क्योंकि—'परस्त्रीगामी पिता को कोई सन्तान चाह नहीं सकती।'[२]

इस घटना के दो-ढाई वर्ष बीतने पर एक दिन पवन को दिल का दौरा पड़ा और वह अस्पताल में भर्ती करा दिया जाता है। कुन्दन अस्पताल में आकर पवन से मिलती है और अचानक चले जाने का कारण बताती है कि मकान-मालिक माथुर की पत्नी व पुत्री सीमा हमारे विषय में व्यंग्य करती रहती थी—'हम दोनों के बारे में जाने क्या-क्या कह रही थी और बच्ची रूबी को इंसल्ट कर-कर के रूला रही थी, फिर मैं कैसे वहाँ रहती।'[३]

अस्पताल में पवन के माता-पिता व अन्य सम्बन्धी पहुँच गये थे और घर जाकर देखा तो वह औरत शकुन्तला भी घर पहुँची थी, जिसे देखकर पवन को दुबारा दौरा पड़ा और उसने दम तोड़ दिया।

उपन्यास का नायक पवन जीवन पर्यन्त टूटते सम्बन्धों को जोड़ने के प्रयास में स्वयं ही टूट जाता है। माता-पिता द्वारा अल्पायु में शादी, उच्च पदासीन रिश्तेदारों द्वारा क्लर्क की नौकरी से संतुष्ट रहने की प्रेरणा, पत्नी द्वारा अपेक्षा तथा कानून की सहायता से हक वसूलने की धमकी और पड़ोसियों के नुक्ता-चीनी का कटु यथार्थ ही उसके जीवन में रह जाता है। जीवन भर संघर्ष करते हुए वह मंजिल तो पा लेता है, किन्तु थकान मिटाने को विश्राम लेने की बात सोचते ही उसके अपने उसे शान्त नहीं रहने देते, अपितु चिरशान्ति में पहुँचा देते हैं, पवन के ये शब्द गवाह है—'शकुन्तला''' बेशक तू मेरे बदन के कपड़े भी उतरवा ले, मुँह का कौर भी छीन ले, पर जिन्दगी जो प्रकृति

१. सत्तर पार के शिखर, पानू खोलिया, पृ. १०६
१. सत्तर पार के शिखर, पानू खोलिया, पृ. १११
२. सत्तर पार के शिखर, पानू खोलिया, पृ. १११

का दान होती है, तू वह मुझसे मत छीन। जिन्दगी का मोह बहुत दारूण होता है, शकुन्तला इंसान को वह सिर्फ एक बार मिलती है, सिर्फ एक बार और पूरी जिन्दगी जीकर भी, जैसी भी वह बच गई है, वह तूने मुझे दी····मुझे छोड़ो····वह शकुन्तला के आगे हा-हा····खा रहा था।[१]

पत्नी के जीवनपर्यन्त के कटुव्यवहार ने पवन के सारे शरीर को तिक्त कर दिया था, शकुन्तला से उपेक्षित वह अपनी वसीयत में भी लिख जाता है कि कानून की व्यवस्थानुसार शकुन्तला ही मेरी सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी मगर मेरे शव को उस औरत को न दिया जाये।

पवन के जीवन में कुन्दन आती है मगर उसे पूर्णतया न अपनाने की कमजोरी से उसे समाज की आलोचना तथा व्यंग्य सहना ही नहीं पड़ता, अपितु संबंध भी खंडित हो जाता है। उपन्यासकार ने इस विवशता को बड़ी कुशलता से उकेरा है, जिसमें व्यक्ति की अपनी जिन्दगी भी अपनी नहीं रहती तथा उसकी कर्मठता, उसकी ईमानदारी उसे टूटने से नहीं बचा पाती। परस्पर असहयोग एवं घृणा उसे समाप्त कर देती है। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल, सहज एवं स्वाभाविक है। समसामयिक परिस्थितियों से उत्पन्न कथ्य को लेकर लिखा गया यह हिन्दी का श्रेष्ठ उपन्यास है। वर्तमान जीवन में परिवेश के टूटने-बिखरने की प्रमुख समस्या उभर रही है।

टूटे हुए सूर्य बिम्ब

प्रस्तुत उपन्यास में दो व्यक्ति जो शिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग के हैं, असमान सम्बन्धों के कारण मिलने वाली यंत्रणा के शिकार बन जाते हैं। अंग्रेजी के प्रोफेसर कौशल उसके रिश्तेदार अमीर है इसी कारण वह अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है। अपनी पत्नी तथा बच्चों के बीच उसका कोई अस्तित्त्व ही नहीं। वह एक पिता-पति के स्थान पर मात्र मशीन की तरह जीता है। जीवन में कोमलता, स्नेह उसे देखने को भी नहीं मिलता, योग्य होते हुए भी उसका मूल्यांकन आर्थिक धरातल पर किया जाता है, जिसमें अपने रिश्तेदारों से वह काफी हल्का मालूम पड़ता है। इसी यंत्रणा से वह उनसे मुक्ति की चाहना करता है। दूसरी तरफ हिन्दी का प्रोफेसर नरेश है। उसके पिता उसके नाम पर ही कर्ज लेकर उसका विवाह कर देते हैं। विवाहोपरान्त नरेश का व्यक्तित्व ही बदल जाता है। बीबी-बच्चों की जिस यंत्रणा से कौशल मुक्त होना चाहता है नरेश उसी में फँस जाता है।

उपन्यास में सम्बन्धों की उदासीनता तथा अस्तित्त्व की रक्षा के लिए बनावटीपन, व्यक्तित्वहीनता का वर्णन बड़ी कुशलता से किया गया है। पारिवारिक एवं सामाजिक तथा आर्थिक विषमता का चित्रण बड़ी बारीकी से किया गया है। आधुनिक जीवन में आये दिन ये दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। लेखक को युगबोध की अच्छी पकड़ है। भाषा सहज एवं पात्रानुकूल है। कथ्य के अनुरूप शिल्प का प्रयोग किया गया है।

---

३. सत्तर पार के शिखर, पानू खोलिया, पृ. ८९-९०

मृणाल पाण्डे

जन्म—२६ फरवरी, १९४६ टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में

शिक्षा—एम.ए. (अंग्रेजी), प्रयाग विश्वविद्यालय

कई वर्ष विभिन्न विश्वविद्यालयों (प्रयाग, दिल्ली, भोपाल) में अध्यापन के बाद टाइम्स ऑफ इण्डिया ग्रुप की वामा पत्रिका की संपादिका।

गन्धर्व विश्वविद्यालय से 'संगीत विशारद' तथा काखोस स्कूल ऑफ आर्ट, वाशिंगटन से चित्रकला तथा डिजाइन का विधिवत् अध्ययन।

प्रकाशित रचनाएँ—

कहानी संग्रह—दरम्यान, शब्दभेदी, एक नीच ट्रेजिडी।

उपन्यास—विरूद्ध पटरंगपुर पुराण, एक स्त्री का विदा-गीत।

नाटक—मौजूदा हालात को देखते हुए, जो राम रचि राखा।

'हिन्दी पारसी रंगमंच तथा उसका संगीत' विषय पर शोधकार्य जारी है।

विरूद्ध

विवेच्य उपन्यास एक उच्च शिक्षित तथा उच्चवर्गीय स्वाभिमानी नवपरिणीता रजनी के मानसिक घात-प्रतिघातों की कहानी है। उदय और रजनी का परिचय अमेरिका में विल्लो के घर होता है। यही परिचय उन्हें दाम्पत्य सूत्र में बाँध देता है। उदय एक सम्पन्न व्यक्ति है। उसके घर में आधुनिक सभी उपकरण मौजूद हैं, किन्तु रजनी को इन सबसे कोई मोह नहीं हो पाता। घर में तो वातानुकूलित व्यवस्था है, किन्तु रजनी का मस्तिष्क मानसिक ताप से तप्त रहता है। इस द्वन्द्व में रजनी को पूर्व की स्मृतियाँ घेर लेती हैं। इसी बीच पहाड़ से माँ का पत्र आता है। उसे कुछ दिनों के लिए बुलावा भेजा है। उदय उसकी उदासीनता देखकर उसे वहाँ भेजने की राय दे देता है। किन्तु वह मायके भी नहीं जाना चाहती। उदय दिन भर बाहर रहता है। वह घर भी रहता है तो उसे उतनी खुशी नहीं होती, क्योंकि वह अपनी शिक्षा और अपने व्यक्तित्व का सही उपयोग न हो पाने, मात्र एक घरेलू स्त्री बनकर रह जाने की स्थिति से दुःखी है—'कभी-कभी उसे लगता है कि उसका पूरा अस्तित्व ही दो खण्डों में बँट गया है, एक प्रचंड विद्रोह से कांपता हुआ विस्फोट को आतुर और दूसरा डर और ग्लानि से सिमटा आर्द्र। वहाँ कोई उससे निजात पा सकता है भला ? शहर में रहो या जंगल में'[१]। इसी बीच एकदिन उसे बुआ का ख्याल आया। बुआ के नितान्त औपचारिक व्यवहार से उसे बहुत बेगाना महसूस हुआ। शायद न आती तो बेहतर था। पर अब सोचने से क्या फायदा ?....रजनी की शिरायें फिर शक्त होने लगी थी। घर में घुसते ही मकड़ी की अदृश्य जालों की तरह आ लिपटा।'[२] शहर में उसे लगने लगा कि वह नितान्त अकेली है। एक दिन वह पहाड़ चली आती है। वहाँ उसे अपनी बहन मिलती है जो पति के साथ अमेरिका में है।

१. विरूद्ध, मृणाल पाण्डे, पृ. १०

२. विरूद्ध मृणाल पाण्डे, पृ. ३६-३७

पहाड़ में भी उसे शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि अन्तःमन शान्त न होने से सर्वत्र अशान्ति ही मिलती है—'कहीं भी कुछ नहीं बदला था इतने दिनों के बाद भी। वही परिवेश, वही वार्तालाप, वहीं बहसें। कितनी छलनाओं में जीते हैं हम लोग ? उसने खिड़की से बाहर झाँकते सोचा।····सामने शीशे में उसका चेहरा एकदम सपाट था भावहीन। न खुशी न दुःखी। टगा हुआ।'[१] माँ उसे लोगों से मिलने को कहती है किन्तु उसका जैसे किसी से कोई सम्बन्ध ही नहीं—'उसके भीतर कुछ तन सा गया। हर बार घर लौटने का मतलब है सामाजिक परेड। इससे मिल लेना, उसके घर हो आना, उन्हें फोन कर देना। किसलिए····।'[२]

कथानक संक्षिप्त-सा है, कोई उतार-चढ़ाव या नाटकीय मोड़ नहीं है। सीधा-सपाट कथानक है। शहर से पहाड़ तक की यात्रा वह भी छोटी सी नायिका रजनी के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी ही प्रमुख है। कथा का प्रारंभ एक अन्तर्द्वन्द्व से होता है और उसी उथल-पुथल में समाप्त। आभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित कथानक है।

उच्च शिक्षा, भौतिक साधन सम्पन्न नायिका अस्तित्त्व-बोध के कारण कुंठित एवं निराश है। भाषा सहज एवं पात्रानुकूल है। आभिजात्य वर्ग में प्रचलित अंग्रेजी, उर्दू एवं फारसी के शब्दों को यथावत् ग्रहण किया गया है। वाक्य गठन भाषागत श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है—'गुस्से के कालेपन के बीच कौतूहल की सच्ची कोपले फूट ही पड़ी।'[३]

वातावरण निर्माण में लेखिका को पूर्ण सफलता मिली है। आभिजात्य वर्ग के आवास-निवास का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है—'कोहरा घट रहा था ऊपर जहाँ-जहाँ बादल फट गये थे। आसमान झक्क नीला था इतना कि देखने में आँखों में पानी आ जाय। धूप के धब्बे नमी की परतों से टकरा कर चमक रहे थे जहाँ-तहाँ।········निर्जन शान्त पानी की छलछलाहट और कुहासे की पर्तों में खोया, डूबता उतरता।'[४] प्राकृतिक वातावरण को मानसिक स्थिति के अनुरूप प्रदर्शित किया गया है। आभिजात्य उच्चवर्गीय समाज में जीवन मूल्यों का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। स्वअस्तित्त्व को स्थापित करने की छटपटाहट, अस्तित्त्वहीन जीवन के प्रति शिक्षित नारी का उदासीन भाव बड़ी मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रित है।

पटरंगपुर पुराण

हिन्दी उपन्यास में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास अपना एक विशेष स्थान रखता है। 'हिन्दी उपन्यास की लम्बी यात्रा के दौरान शायद पहली बार यह हुआ है कि एक कुटुम्ब, एक कस्बे और एक पूरी जाति का समूचा इतिहास सतत् प्रताड़ित

१. विरूद्ध मृणाल पाण्डे, पृ. ७३
२. विरूद्ध मृणाल पाण्डे, पृ. ७५
३. विरूद्ध मृणाल पाण्डे, पृ. १०
४. विरूद्ध मृणाल पाण्डे, पृ. १११

सरल हृदया गृहस्थ औरतों की सूक्ष्म दृष्टि से देखा, और उन्हीं की विशिष्ट कथोपकथन शैली में वाँचा गया है। अपनी स्त्री सुलभ करूणा, उदार परिहासवृत्ति और पैनी पारखी दृष्टि से 'पटरंगपुर पुराण' का यह अनूठा वाचक-वृन्द हमें कुछ-कुछ ग्रीक नाटकों की याद दिलाता है, जहाँ एक जनसमूह मंच पर घट रही त्रासदी को मानव जीवन की कालातीत धारा में जोड़ता हुआ उस पर लोकमन की गहरी टिप्पणियाँ देता जाता है।'[१]

'पटरंगपुर पुराण' एक ऐसे पहाड़ी कस्बे की राम कहानी है, जो उपन्यास की केन्द्रस्थ पात्रा 'आमा' और उनके परिवार की तरह खूब ही फला-फूला और खूब ही उजड़ा भी। इस अभिशप्त इतिहास में जिसे पटरंग-पुर की स्त्रियों ने आमा की कहानियों और अपने पारिवारिक उपाख्यानों से विरासत में पाया है, सच्चाई और मिथक, परिहास और त्रासदी, जीवन और मृत्यु, पटरंगपुर के गपोड़िये जुलाहों ने तानो-बानों की तरह एक साथ ऐसे गुँथे हुए हैं कि आप उन्हें अलग नहीं कर सकते।

यह विचित्र और मार्मिक कथा, जो पटरंगपुरी बसों की तरह 'लैन की लैन' चलने के बजाय, अपने एक अलग ही तरह के घुमेरियों भरे रास्तों से चलती है, जो किताबों के पन्नों से नहीं, सीधे हमारी अपनी धमनियों-शिराओं से निकलता है। शिल्पगत वैशिष्ट्य के साथ ही दिलचस्प है उपन्यास की भाषा। पहाड़ी शब्दों की भरमार है। कहीं-कहीं पर तो आग्रह से अनायास कृत्रिमता लाने का प्रयास भी किया गया है—'चहूँदिश मरामार, हकाहाक, हो रहा ठहरा। तभी रामचन्द्र जी ने लंकापति रावण के भाई कुम्भकरण की खोपड़ी ख्याट्ट से काट के, भन्न करके दे भनकायी। इधर उत्तरदिशा की ओर तक कूर्म क्षेत्र नाम ठहरा उस जगह का।' कहीं-कहीं पर कुमाऊँनी भाषा में लोकोक्तियों का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया गया है—'आग लागौ सरकार डबल में पड़ों टोट'[३] (आग लगे सरकार तुझे जिसने ताम्बे के पैसे में भी छेद कर दिया।) हर जगह कुमाँउनी शब्दों का प्रयोग कर फुटनोट में उसका अर्थ स्पष्ट कर दिया है, जिससे कुमाऊँनी इतर भाषियों को कोई कठिनाई न हो। लेखिका ने आमा के माध्यम से समसामयिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान भी किया है। खानपान के सम्बन्ध में—'अब उतना दूध-दही कहाँ से लायेंगी तुम्हारी पटरंगपुरी बहुएँ ? दूध-पीने वाले उनके गोदी के बच्चे तक को जुटता नहीं दूध अब। सब दूध-दही होटलिए टूरिस्टों के वास्ते उठा जो ले जाते हैं। जिनके मुख में दाँत नहीं, पेट में आँत नहीं, ऐसे बुड्ढों को अन्त समय पेट का नहीं भगवान का स्मरण करना चाहिए····धरम दिल में होता है, जीभ में जो क्या ?'[४]

सारा उपन्यास महाभारत की तरह अलग-अलग पर्वों में विभक्त किया है। कुल

---

१. पटरंगपुर पुराण, मृणाल पाण्डे, विज्ञापन
२. पटरंगपुर पुराण, मृणाल पाण्डे, पृ. ७
३. पटरंगपुर पुराण, मृणाल पाण्डे, पृ. ८९
४. पटरंगपुर पुराण, मृणाल पाण्डे, पृ. ८९-९०

सोलह पर्व हैं। कथोपकथन एवं वर्णनात्मक शैली के माध्यम से कूर्माचल के रीति-रिवाज, धर्म, रहन-सहन, अतिथि-सत्कार आदि सभी गुण-अवगुणों का बड़ा सुन्दर और सजीव विवेचन किया गया है। 'बहती गंगा' उपन्यास की शैली में यह उपन्यास भी नवीन शिल्प का प्रयोग है।

मनोहरश्याम जोशी

९ अगस्त, १९३३ अजमेर में जन्मे मनोहरश्याम जोशी, लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान स्नातक हैं। आप मूलत: एक पत्रकार हैं, स्कूल मास्टरी, क्लर्की और बेरोजगारी के तजूर्बा को सँभाले-सहेजे वह पत्रकारिता में आये। प्रेस, रेडियो, टी.वी., फिल्म, विज्ञान यानी सम्प्रेषण का ऐसा कोई भी माध्यम नहीं, जिससे गहरे स्तर पर जुड़े न रहे हों। पत्रकार की हैसियत से खेलकूद से लेकर दर्शन शास्त्र तक तरह-तरह के विषयों पर उन्होंने अपनी कलम घिसाई की है।

साहित्य में जोशी जी अमृतलाल नागर एवं स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' इन दो आचार्यों के शिष्य रहे हैं। केन्द्रीय सूचना सेवा और टाइम्स ऑफ इण्डिया से होते हुए जोशी जी ६७ में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में सम्पादक होकर हिन्दुस्तान टाइम्स में आये। इसके बाद अंग्रेजी साप्ताहिक 'वीक एण्ड रिव्यू' का सम्पादन करने के बाद आजकल टी.वी. सीरियलों में कार्यरत हैं। आपके दो टी.वी. सीरियल नाटक 'हम लोग' और 'बुनियाद' काफी लोकप्रिय रहे हैं।

आपकी पहली कहानी तब छपी थी, जब आप अठारह वर्ष के थे और पहला उपन्यास १९८० में तब छपा जब वे सैतालिसवाँ वर्ष पूरा कर रहे थे, किन्तु इस बीच इनकी दुनिया अनुभवों की उष्णता से भरपूर रही। उनके लेखन में क्रमबद्धता नहीं है। कभी जमकर कविताएँ लिखी तो कभी कहानियाँ कभी महिनों तक कुछ नहीं लिखा। अक्सर कृतियाँ अपूर्ण ही रहकर लेखनी की कृपादृष्टि की चाहना करके ही रह जाती है। कायदे से 'कुरू-कुरू स्वाहा' चौथा उपन्यास है, इससे पहले के तीन उपन्यास अभी-भी अधूरे पड़े हैं। इसके बावजूद उनका एक उपन्यास 'कसप' राजकमल से १९८१ में प्रकाशित हुआ है।

कुरू-कुरू स्वाहा

जोशी जी का यह उपन्यास साहित्य जगत में काफी चर्चित रहा। कथ्य एवं शिल्प दोनों में यह विलक्षण रहा है। बम्बइया जीवन तथा परिवेश पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय व्यक्ति के जीवन की हास्यास्पद स्थिति को उकेरा गया है। 'कुरू-कुरू स्वाहा' दृश्य और संवाद प्रधान वायस्कोप है। इसके अतिरिक्त आग्रह करता है कि पढ़ते हुए देखा सुना जाय। वायस्कोप है इसलिए इसमें वर्णित सभी स्थितियाँ, सभी पात्र सर्वथा कपोल क़ल्पित हैं और सबसे अधिक कल्पित है वह पात्र जिसका जिक्र इसमें मनोहरश्याम जोशी संज्ञा और 'मैं' सर्वनाम से किया गया है।

नाम बेढप, शैली बेडौल, कथानक वेपैंदे का, कुल मिलाकर बेजोड़ बकवास। अब यह पाठक पर है कि बकवास को 'एब्सर्ड' का पर्याय माने या न माने। पहले शाट से लेकर फाइनल तीन तक यह एक कामेडी है लेकिन इसी के एक पात्र के शब्दों में 'एइसा कामेडी कि दार्शक लोग जानेगा, केतना हास्यास्पद है त्रास अउर केतना त्रासद है हास्य।'[१]

उपन्यास नायक मनोहरश्याम जोशी तिमंजिला है। पहली मंजिल में बसा है 'मनोहर' श्रद्धालु, भावुक किशोर, दूसरी मंजिल में 'जोशी जी' नामक इण्टेलेक्चुअल और तीसरी में दुनियादार श्रद्धालु 'में' जो सम्पूर्ण कथा सुन रहा है। इसकी नायिका पहूँचेली एक अनाम एवं अबूझ पहेली है जो इस तिहरे रूप के नायक को धराशायी करने के लिए ही अवतरित हुई है।

विवेच्य उपन्यास में कई कथानक होते हुए भी कथानक नहीं है, भाषा और शिल्प के कई-कई तेवर होते हुए भी कोई तेवर नहीं है, आधुनिकता और परम्परा की तमाम अनुगूँजे होते हुए भी कहीं कोई वादी-संवादी स्वर नहीं है। बहुत ही सरल ढंग से जटिल और बहुत ही जटिल ढंग से सरल यह कथाकृति तमाम मजाकों का मजाक है। एक ऐसा उपन्यास है, जो स्वयं को नकारता ही चला जाता है।

'उसने कहा—'कमीनो ! जो भी तुम लिए हो हाथ में अपने अतीत की अक्षय आचमनी वर्तमान की विदाध वर्तिश, अनागत को अमोघ अस्त्र या और कोई, झूठ-मूठ, झूठ जो भी तुम लिए हुए हो हाथ में अपने। और इस हथियार के चमत्कार को आश्वासन देने वाली सौगन्ध खाने के लिए जो भी रचा हो नाम तुमने अपनी जननी का क्रान्ति, विज्ञान, संस्कृति—जो भी जैसा भी, जब-जब रचा हो नाम तुमने। कमीनों विधवा है तुम्हारी जननी, विधवा है तुम्हारी शक्ति, और वह तुमसे सुहागन हो नहीं सकती।'[२] और महानगरीय जीवन में निम्नवर्गीय व्यक्ति की क्या दशा हो गयी है—'और यह ? कोई काला आदमी। इसे शिकायत है कि जमीन घट रही है और हाजतमन्दों की तादाद बढ़ रही है। शहर में जो भी जगह ढूँढता है हगन के लिए, वहीं यार लोग गगनचुम्बी इमारत बनवा देते हैं।'[३] उपसंहार में बम्बइया समाज के सभी वर्गों का क्रमवार विश्लेषण, वर्णन किया गया है। बाहरी दिखावे, आडम्बरपूर्ण जीवन को नकारते हुए लेखक कहता है—'लेकिन आप जोशी जी, आप में तो कस्बे के घरेलू परिवेश में डिफरेण्ट हो सकने डार का दंभ है। मध्यवर्गीय लोगों पर छाँटिये रूआब अपनी इन्टेलेक्चुअलता और कामरेडी का। और उनसे ही कहिऐ कि सिर पर आपके तेल मलें और तलुओं पर काँसे की कटोरी।'[४]

---

१. कुरू-कुरू स्वाहा, मनोहरश्याम जोशी, विज्ञापन
२. कुरू-कुरू स्वाहा, मनोहरश्याम जोशी, पृ. २३०-३१
३. कुरू-कुरू स्वाहा, मनोहरश्याम जोशी, पृ. २४२
४. कुरू-कुरू स्वाहा, मनोहरश्याम जोशी, पृ. २२१

आधुनिक परिवेश, रहन-सहन एवं नग्नता पर व्यंग्य करता हुआ लेखक लिखता है—'चतुर्दशी का दिन था। पूजा से उठकर मिस्टर तिरखा बाहर आये तो देखा अपनी नयी पतोहू को, माँड से निवास में गोया अधनंगी। बोले, 'स्ट्रेंज', कुछ सोचते रहे और फिर अपने कमरे की ओर जाते हुए हँसने लगे। यह पहला और आखिरी मौका था जब उन्होंने किसी को नहीं बताया किस बात पर हँस रहे हैं। कमरे तक पहुँचते-पहुँचते उन्हें दौरा पड़ा दिल का, हँसते-हँसते गये साहब।'[१]

कसप

'कसप' उपन्यास दो युवा प्रेमियों डी.डी. तथा नायिका बेबी (मैत्रेयी) प्रेम-कथा है। अनाथ किशोर युवक डी.डी. एक सम्पन्न घर की लाड़िली बेटी बेबी के प्रेम में पागल है, किन्तु जब बेबी डी.डी. के प्रेम को स्वीकार करने को तैयार होती है, तभी नायक भाग जाता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक रूप से हुआ है। इस प्रेमकथा में विभिन्न परिवेशों, शहरी तथा ग्रामीण अंचल की संस्कृति-सभ्यता, दर्शन आदि विभिन्न विषयों को बड़ी कुशलता से समाविष्ट किया है। इसके नूतन शिल्प एवं कथ्य को देखकर इसे प्रयोगशील उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी कतिपय साहित्यकार अपने -अपने स्थान से समय-समय पर कुछ न कुछ लिखते जा रहे हैं, जो कूर्माचली साहित्येतिहास में शुभ लक्षणों का प्रतीक है। नये उदीयमान साहित्यकारों में गोपाल उपाध्याय, गिरिराज शाह (एस.पी.) नित्यानन्द, शितांशु भारद्वाज, प्रदीप पंत, देवेन्द्र मेवाड़ी एवं बटरोही आदि का नाम उल्लेखनीय है।

अस्वीकार

गोपाल उपाध्याय का उपन्यास 'अस्वीकार' कुमाऊँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। चन्दराजाओं के युग में राजा कल्याणचन्द और उनकी रानी लली के शासनकाल में राजनीतिक उतार-चढ़ावों के बीच समाज में व्याप्त गुटबन्दी तथा राजनीतिक उठापटक को उभारा गया है। यही नहीं उपन्यास में श्रीधर जैसे त्यागी और साहसी पात्रों की अवतारणा कर इसे अमर कर दिया है। ये प्रेरणास्रोत पात्र हैं, जो व्यक्तिगत स्वार्थों को ठुकरा कर जन-सामान्य के कल्याण हेतु आत्माहुति देने को उद्यत हैं। भाषा सरल किन्तु प्रवाहपूर्ण है। उपन्यास ही नहीं गोपाल उपाध्याय ने कहानियाँ एवं नाटक भी लिखे हैं।

नीले आकाश के लिए

विवेच्य उपन्यास नित्यानन्द का एक सिख परिवार की कथा-व्यथा प्रस्तुत करता है। कालोनी के एक सिरे पर यह सिख परिवार रहता है, जिसके सदस्य अपने अभिभावकों के प्रति उपेक्षा करते हैं। नौकरी करने वाली लड़की के मन में भी माँ के

---

१. कुरू-कुरू स्वाहा, मनोहरश्याम जोशी, पृ. २४३

प्रति कोई आन्तरिक लगाव नहीं है। वह घर को एक सराय के समान मानती है। लड़के माँ-बाप को थोड़ा बहुत खर्च दे देना ही सबसे बड़ा कर्तव्य समझते हैं। एक छत के नीचे रहने जैसा ही लगता है घर में रहना, आपसी स्नेह का सूत्र कहीं दिखाई नहीं देता। इस उपन्यास में आधुनिक सम-सामयिक समस्या अलगाव विघटन को प्रमुख रूप से उभारा गया है। परस्पर सम्बन्धों में कितनी उदासीनता है। नाटकीय शैली में संवादों के माध्यम से महानगरीय जीवन की विभीषिका, संत्रास को अलग-अलग प्रसंगों द्वारा अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया है।

तीसरे शहर की तलाश

श्री गिरिराज शाह ने पुलिस अधीक्षक के पद पर कार्य करते हुए, जिस लगन एवं ईमानदारी से साहित्य सेवा का स्तुत्य कार्य भी अपने हाथ में लिया है अपितु माँ शारदे के अक्षय भण्डार की भी श्रीवृद्धि की है और करते आ रहे हैं। प्रकृति के आप अनन्य उपासक हैं। प्रथम बार फूलों की घाटी के दर्शन करते ही आपने 'बाउडरिंगस इन द वैली आफ फ्लावर्स' काव्य की रचना कर डाली, जिसका 'फूलों की घाटी' नाम से हिन्दी में पद्यानुवाद भी हो चुका है। पर्वतीय वन-उपवन पेड़-पौधों से आपका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।

'तीसरे शहर की तलाश' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें दो युवा प्रणयी एक दूसरे को असीम प्रेम करते हैं, किन्तु जातीय असमानता के कारण दोनों खुलकर मिल नहीं सकते किन्तु अन्ततः सारे नियम बन्धनों को तोड़कर पुरानी सड़ी-गली प्रथाओं को तोड़कर दोनों परिणय सूत्र में बंध जाते हैं किन्तु....। कथा की दृष्टि से इसे लघु उपन्यासिका की संज्ञा दी जा सकती है। शिल्प की दृष्टि से यह पुराने घिसे-पिटे शिल्प पर ही वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है।

हृदयेश कृति का एकमात्र पात्र है, जिसके इर्दगिर्द यह पारिवारिक और वैयक्तिक कहानी आरोह-अवरोह का आकर्षण लिए खुलती चलती है। नाटकीयता के साथ भोलापन और कोमलता के साथ आदर्श और यथार्थ के संघात से पूर्ण संयोजन कृति के आकर्षण को बढ़ाता है। प्रेमकथा के साथ ही लेखक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अपराध का भण्डाफोड़ करना भूला नही है। हृदयेश को कस्टम अधिकारी के पद पर नियुक्त कर लेखक ने अपने भोगे अनुभवों की अच्छी अभिव्यक्ति दी है। हृदयेश एक आदर्श, साहसी एवं कर्मठ पात्र है, जो अपने सही कार्य के लिए दुनिया, समाज किसी की परवाह नहीं करता। नारी के प्रति उसके मन में असीम श्रद्धा है—'मेरा भाग्य ही ऐसा है। नारी जाति ऐसे ही मेरे जीवन में आयेगी। कभी विरादरी पर लात मारकर, कभी नौकरी पर।'[१] एक सच्चे और ईमानदार अधिकारी को इस समाज में किस तरह जगह-जगह ठोकरें खानी पड़ती है, यह बात स्पष्ट होती है और अन्ततः पलायन करना ही उसकी नियति होती है।

---

१. तीसरे शहर की तलाश, गिरिराज शाह, पृ. ५८

एक नियति है—मनुष्य अपनी महत्वाकांक्षाओं को मोहक रूप देना चाहता है परिस्थितियाँ आड़े आती हैं, संघर्ष होता है कभी मनुष्य हारता है कभी जीतता है, किन्तु पुरूषार्थी इस हार-जीत से अलग सत्यं-शिवं-सुन्दरं की तलाश में हमेशा लीन रहता है। 'तीसरे शहर की तलाश' ऐसे ही युवक की कहानी है, जो परिस्थितियों से टूटने पर भी हार कर भी कभी हारता नहीं, पुनः लड़ने के लिए, नयी ऊर्जा प्राप्त करने के लिए चला जाता है तीसरे शहर की तलाश में।

डॉ. आनन्द

शितांशु भारद्वाज का समसामयिक समस्या बेरोजगारी पर लिखा गया उपन्यास है। आधुनिक युग में उच्चशिक्षा प्राप्त युवक किस प्रकार दो जून की रोटी के लिए दर-दर ठोकरे खाता है, इसका मार्मिक चित्रण किया गया है। एम.ए. पी-एच.डी. की उपाधि होने पर भी उपयुक्त नौकरी की तलाश में किस तरह भटकता रहता है। अच्छे लेखक की क्षमता रखने पर भी वह हमेशा प्रकाशकों द्वारा छला जाता है। विवेच्य उपन्यास में उच्च शिक्षा की बेकद्री तथा ईमानदार कर्मठ व्यक्ति की उपेक्षा कर गहरा व्यंग्य किया गया है। शोध छात्र-छात्राओं, अध्यापकों, सम्पादकों तथा प्रकाशकों के जीवन की कृत्रिमता तथा मुखौटेबाजी में उपन्यास नायक शंकित रहता है। चारों तरफ असुरक्षा का वातावरण देखते हुए वह अपने घर-परिवार तक ही सीमित हो जाता है।

दो बीघा जमीन

शितांशु भारद्वाज का यह उपन्यास भी कुमाऊँ अंचल से संबंधित है। उपन्यास की नायिका गोपुली अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पटवारी की नाक-कान काटकर कानून को हाथ में ले लेती है। छह माह तक सश्रम-कारावास की सजा भुगत कर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए चण्डी की भाँति नरभेड़ियों का सामना करती है। अथक परिश्रम, धैर्य एवं साहस से गोपुली विभिन्न संघर्षों को झेलती हुई अन्ततः परिवार को एक व्यवस्थित रूप में बदल ही नहीं देती वरन् दो बीघा जमीन की मालकिन होने का सपना भी पूरा कर लेती है।

सभ्यता की खोज

कूर्मांचल के कथाकारों में वैष्णव जी के बाद इस पीढ़ी में देवेन्द्र मेवाड़ी का नाम लिया जा सकता है। 'सभ्यता की खोज' उनका वैज्ञानिक लघु उपन्यास है, जिसमें सौरमण्डल से बाहर की यात्रा का रोचक वर्णन है। नायक शेखर अन्तरिक्ष यात्रा में सफल होता है। उसकी अन्तरिक्ष यात्रा के रोचक प्रसंगों से सम्पूर्ण कथानक भरा हुआ है। नवीन सभ्यता की खोज की मौलिक कल्पना की है साथ ही यंत्रमानव की अतिविकसित सभ्यता से सजीव मानव की सभ्यता को अधिक महत्त्व दिया गया है। लेखक का मत है कि यांत्रिक विकास भी मानव के लिए ही होता है, उसके अस्तित्व के बिना वैज्ञानिक अस्तित्व मूल्यहीन है। मानवमूल्यों को दृष्टि में रखते हुए पूर्ण विकसित सभ्यता की ओर अग्रसर होने का आग्रह किया गया है।

पञ्चम अध्याय

साठोत्तर हिन्दी साहित्य के कूर्माचलीय कहानीकार तथा उनकी मानक कृतियाँ

शैलेश मटियानी

साठोत्तर कथा-साहित्य में मटियानी जी का नाम एक चर्चित और लोकप्रिय लेखक के रूप में सदा स्मरण किया जाता है। पर्वताँचल के लोक-जीवन के सुख-दुःख, प्रेम-वासना, ईर्ष्या-द्वेष, आशाओं-आशंकाओं का अत्यन्त सफल चित्रण प्रस्तुत करने में आपने आशातीत सफलता पाई है। कथा, शिल्प तथा वस्तु दोनों स्तर पर अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता के लिए मटियानी जी अपनी पीढ़ी के शीर्षस्थ कथाकारों की पंक्ति में सर्वप्रमुख स्थान पर विराजमान हैं। उनके साठोत्तर रचित निम्न कहानी संग्रह अत्यधिक लोकप्रिय हुए—

मेरी तैंतीस कहानियाँ

'मेरी तैंतीस कहानियाँ यों तो प्रथम बार लिखी गई है, किन्तु ये तैंतीस कहानियाँ पिछले सात वर्षों में लिखी गई हैं। कुछ एक जासूसी रोमांचक कहानियाँ और लोककथाओं को छोड़कर ५४ से ६० सन् तक के बीच लिखी गई मेरी सभी कहानियाँ इस संग्रह में आ गई हैं।'[१] इसके अतिरिक्त 'दो दुःखों का एक सुख', 'सुहाग-बिन्दी' तथा अन्य कहानियाँ, 'बर्फ की चट्टानें', 'जंगल में मंगल', 'महाभोज', 'चील' आदि इनके कहानी संग्रह हैं।

शैलेश मटियानी की कहानियों में दो रूप मुख्य रूप से परिलक्षित होते हैं। प्रथम रूप में वे कहानियाँ आती है जो महानगरीय संत्रास, यंत्रणाओं और कुण्ठाग्रस्त लोगों की कहानी है। दूसरे रूप में आंचलिक कहानियाँ हैं, जिनमें कुमाऊँ अंचल के ग्रामांचलों की, वहाँ के रीति-रिवाजों, संस्कारों की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं।

महानगरीय जीवन से सम्बन्धित कहानियों में 'प्यास', 'इब्बू मलंग', 'भय', 'दो दुःखों का एक सुख', 'चील', 'हारा हुआ', 'शीशे के पार उगी हरियाली', 'बंदिश', 'छिलके' आदि कहानियाँ हैं। इन कहानियों में लेखक ने स्वयं बम्बई महानगर में रहकर महानगरीय संत्रासपूर्ण जीवन भोगा और देखा है, उसका खुला चित्रण किया है। आज के समय में दम्पत्ति में दायित्वहीनता, अवैध सन्तानों की समस्या, निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति, आर्थिक विपन्नता, जीवन मूल्यों का ह्रास, नारी पुरुषों के अवैध सम्बन्ध आदि का व्यंग्यात्मक तथा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। लेखक ने अपने

---

१. मेरी तैंतीस कहानियाँ, शैलेश मटियानी, भूमिका।

शिल्पगत वैशिष्ट्य द्वारा महानगरीय जीवन का हूबहू रूप सामने रख दिया है। 'प्यास' कहानी में अवैध सन्तान की भविष्यहीनता प्रदर्शित की गई है। कितनी निर्ममता के साथ कूड़े-कचड़े की तरह अबोध शिशु को भी फेंक दिया जाता है।

ये कहानियाँ ऐसे व्यक्तियों की है जो अपने बुद्धि विवेक से सही निर्णय नहीं ले पाते वरन् अन्तर्द्वन्द्व में घिरे रहते हैं—'प्यास कहानी का संकरिया अपने अन्दर की इसी तरह की उपस्थिति को स्मरण कर पाने में असमर्थ है। जीने की दारूण यातना से आक्रान्त है। संकरिया में मैंने अपनी अनुभूतिशीलता के आवेग से आगे अपने अनुभव कर सकने की असमर्थता की यातना को प्रतिरूपित करने की चेष्टा की है।'[१]

'हारा हुआ' कहानी में ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपनी जवान बेटी की अस्मत लूटते देखता ही रह जाता है। उसकी विवशता उसे कुछ करने नहीं देती। प्राण देकर भी इज्जत बचाने का मलाल उसे रह जाता है—'उसे साफ-साफ लगता है कि उसके मुकाबले में सिर्फ विधवा कैलासी का बाप दु:खहरन मोची ही नहीं है, बल्कि खुद उसके अन्दर का वह कबली का बाप भी खड़ा है, जो इसी आत्म प्रताड़ना में अपने ही सीने के अन्दर दबा हुआ रह गया था कि अपनी बेटी की अस्मत के लिए वह अपनी जान की बाजी नहीं लगा सका।'[२]

मटियानी जी की कहानियों का निखरता रूप उनकी आंचलिक कहानियों में मिलता है। इनकी कहानियों का वास्तविक स्वरूप कुमाऊँ अंचल से सम्बन्धित परिवेश, कूर्माचल में व्याप्त भ्रष्टाचार, आर्थिक विपन्नता तथा सेक्स की भावना का विकृत रूप प्रदर्शित करने में प्रदर्शित होता है। 'ब्राह्मण', 'प्रेत मुक्ति', 'नाबालिग', 'खरबूजा', 'संस्कार', 'कपिला', 'भँवरे का जाल' आदि कहानियों में कूर्माचल का सम्पूर्ण जनजीवन एवं उसके विविध कार्य-कलाप और वहाँ का सुरम्य वातावरण पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है।

कहानियाँ ही नहीं शैलश जी ने आधुनिक युग की कहानी की नयी विधा 'लम्बी कहानी' भी बड़ी श्रेष्ठ लिखी हैं। उनमें 'अहिंसा'[३] एवं 'अर्द्धांगिनी'[४] प्रमुख रूप से चर्चित एवं लोकप्रिय कहानियाँ रहीं हैं।

'अर्द्धांगिनी' में स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य जीवन को रेखांकित किया गया है, पति-पत्नी एक दूसरे के कितने पूरक है तथा उनका प्रेम-सूत्र किस तरह एक दूसरे को आबद्ध किये रखता है। स्त्री-पुरुष शब्दों की भी बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है—'स्त्री तत्त्व भी क्या चीज हुआ, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त ठहरा, कोई ओर-छोर थोड़े हुआ इनकी ममता का। अपरम्पार हुई। नाना रूप, नाना खेल।'[५] प्रेम में समय व्यतीत होते पता नहीं चलता

---

१. मेरी प्रिय कहानियाँ, शैलेश मटियानी, भूमिका, पृ. ९-१०

२. हारा हुआ, शैलेश मटियानी, 'सारिका', अगस्त १९६५, पृ. ४५

३. अहिंसा, शैलेश मटियानी, 'हंस', नवम्बर १९८६

४. अर्द्धांगिनी, शैलेश मटियानी, 'हंस', जून १९८७

५. अर्द्धांगिनी, शैलेश मटियानी, 'हंस' जून १९८७, पृ. २६

कब कपूर की तरह दिन उड़ जाता है और क्षण में ही रात्रि व्यतीत हो जाती है। प्रेम वास्तव में समय के घेरे में नहीं बँधा रहता, लेखक इसी बात को स्पष्ट करता है—'कुछ क्षण होते हैं, विस्तार पकड़ते जाते हैं और कुछ विस्तार जो धीरे-धीरे क्षणिक होते जाते हैं। रास्ते का एक दिन कटना पर्वत, लेकिन घर पर महीने भर की छुट्टियाँ कपूर हो जाती हैं। पक्षियों सा उड़ता समय कान में आवाज देता रहता है लो आज का दिन भी बीता तुम्हारा, अब बाकी कितने हैं,[१] लाम से छुट्टी में आये सुबेदार के लिए सुबेदारनी कितनी अधीरता करती है उसकी आवभगत में, कहीं कुछ त्रुटि न रह जाय उसकी सेवा में। इसी उत्सर्गपूर्ण प्रेम को सात्विक प्रेम कहते हैं, सब कुछ समर्पण के बाद प्रतिदान में कुछ भी चाहना नहीं है—'सोचते जाओ, तो जीवन के पर्क पीठ पर सवार होते जाते हैं। सुबेदारनी से कुछ छिपा नहीं रहता, कभी अड़ोस-पड़ोस में घूमने लगा देती है, कभी नमकीन और प्याज सामने लगा देती है। खाने-पीने की चीजों में कुछ छूट न जाये। दो चार दिन घरेलू व्यंजनों की हौस, कभी भट-मदिरा का जौला और लहसुन हरीधनियाँ का नमक है, कभी चौमास से रबी करड़ी-ककड़ी का रायता, गड़ेरी का भांग पड़ा रसदार साग और पूरियाँ। कभी मुट्ठीभर लहसुन पड़ी और घी में जम्बू से छौंकी मसूर की दाल है, हरी पालक लाही का टपकिया और ताजे-ताजे ओखल कूटे घर के चावलों का भात।'[२]

'अहिंसा' लम्बी कहानी में महानगरीय परिवेश में एक मजदूर की करुण कथा है जो अपनी पत्नी के इलाज के लिए रात-दिन एक कर कुछ धन जुटाता है, किन्तु शहर में डाक्टर मरीज को देखते ही नहीं, दलाल, चपरासी के माध्यम से सरकारी अस्पताल के डाक्टर के निवास पर पत्नी को दिखाता है, किन्तु फीस ढाई हजार की पूरी व्यवस्था न होने के कारण निर्ममता से डाक्टर मुँह फेर लेता है। अन्ततः एक हजार रुपये घूस देकर उसे सरकारी अस्पताल में एक सीट मिल जाती है। आपरेशन के बाद हड़ताल से पत्नी दम तोड़ देती है और डाक्टर एक हजार रुपये हड़प कर भी देखने नहीं आता। ......के स्मरण दिलाने के बाद भी वह ऐसा भाव बनाता है जैसे कुछ हुआ ही नहीं 'एक तारा टूटा तो क्या हुआ' पर उसकी निर्ममता एवं व्यवहार से क्षुब्ध होकर हथौड़े वाले झोले से डाक्टर के सिर पर ऐसा वार करता है कि वह वहीं ढेर हो जाता है। सही माने में उसकी हिंसा, हिंसा न होकर अहिंसा ही है जो व्यक्ति को विवश कर देती है। सम-सामयिक कथ्य पर लिखी गई यह कहानी बेजोड़ है।

हिमांशु जोशी

नयी पीढ़ी के कथाकारों में हिमांशु जोशी सबसे अधिक चर्चित कथाकार हैं। डॉ. भगतसिंह के शब्दों में—'वर्तमान हिन्दी साहित्यकार में हिमांशु जोशी टिमटिमाते तारे की भाँति नहीं वरन् ध्रुव की भाँति एक निश्चित स्थान पर प्रकाशमान नक्षत्र की तरह अपनी चमक से जगत को आलोकित कर रहे हैं।[३] जोशी जी की कहानियों में समाज

१. वही, पृ. २७
२. वही, पृ. २७-२८
३. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगतसिंह, पृ. ३२१

का यथार्थ चित्रण जिस रूप में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कहानी के विषय में हिमांशु जी के विचार—'कहानी जीवन का प्रतिबिम्ब है जिसे पढ़कर पाठक भींग न जाए, बह न जाए, कुछ सोचने के लिए विवश न हो जाए,, वह कहानी कहानी नहीं, लेकिन आज लेखकों की हर कथनी ऐसी नहीं होती। इसका कारण है आत्ममंथन का अभाव और व्यक्ति या समाज की समस्याओं के प्रति पैनी दृष्टि का अभाव।'[१] 'जीने के लिए', 'वह कैदी', 'कपास के फूल' और 'अभाव' आदि इस तरह की कहानियों में उनका कथन स्पष्ट दिखाई देता है। जोशीजी ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कहानियाँ भी लिखी हैं—'अन्तिम सत्य', 'दो हाथ जमीन', 'बुझता तारा' आदि इस वर्ग की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त सम-सामयिक समस्याओं पर भी आपने अपनी लेखनी चलाई है।

आँचलिक कहानियों में भी लेखक पीछे नहीं है। 'ठंडा सूरज', 'माटी-माटी' आदि कहानियाँ इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। आँचलिक कहानी के विषय में लेखक के विचार द्रष्टव्य हैं—'जिसमें किसी अंचल विशेष की माटी की गन्ध हो, उस समाज विशेष का प्रतिरूप हो, अंचल विशेष होते हुए भी जो जग-विशेष की हो। केवल अंचल-विशेष या शैली रख देने से कोई रचना आंचलिक नहीं हो सकती।' यही नहीं 'दंश', 'रक्तरंग', 'कागज के टुकड़े', 'रक्त की रेखाएँ' आदि मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं।

हिमांशु ने चाहे पर्वतीय अंचल की समस्याओं को उठाकर कहानियाँ लिखी हों या आधुनिक शहरी सभ्यता को, उसके संत्रास में जी रहे व्यक्तियों के सुख-दुःखों को लेकर कहानियाँ लिखी हों। सर्वत्र गहन अनुभूतियों की छाप छोड़ गयी हैं, जो पाठक के हृदय के अन्तर्तम में गहराइयों तक अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं। पाठक का पात्रों से ऐसा तादात्म्य हो जाता है कि वह पात्रों के साथ ही प्रसन्न और दुःखी होने पर मजबूर हो जाता है। यह साधारणीकरण की स्थिति पैदा करना किसी कुशल लेखक का कार्य ही हो सकता है। हिमांशु जोशी इस कार्य में कुशलता से खरे उतरते हैं।

हिमांशु जोशी के प्रमुख कहानी संग्रह "अन्ततः", "मनुष्यचिह्न" तथा "जलते हुए डैने" हैं।

(क) अन्ततः—

इस कहानी संग्रह में सबसे सशक्त कहानी "अन्ततः" ही है। इस कहानी का नायक बावला विरजू मानसिक द्वन्द्व में जी रहा है। वह उन व्यक्तियों में से है जो आज भी भौतिकता से दूर हैं, किन्तु वह समाज की कुरीतियों को तोड़ने के लिए कृत संकल्प है। अपनी धुन में उसे अपने शरीर की सुध-बुध भी नहीं रहती। समाज ऐसे व्यक्तियों को पागल की संज्ञा दे देता है, किन्तु उसके मन में गहन आध्यात्मिकता का प्रतिबिम्ब होता है। कृत्रिमता एवं रूढ़िवादिता को समाप्त करने के लिए लगे हुए भोले-भाले

१. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगतसिंह, पृ. ३२३।

व्यक्तियों की समाज में किस प्रकार दुर्गति होती है और अन्ततः उन्हें उपहास का पात्र बनना पड़ता है और एक दिन अपने संकल्प को अधूरा छोड़ कर इस मायावी संसार से विदा लेनी पड़ती है।

आदमी जमाने का

विवेच्य कहानी में राजनीतिक दाँव-पेंचों द्वारा गाँव की निरीह जनता को गुमराह करने से सम्बन्धित है। आधुनिक युग में जन-सेवक कहलाने वाले घुग्घु बाबू सदृश तथाकथित लोग भ्रष्टाचार के चरम शिखर तक पहुँच गए हैं तथा प्रशासक वर्ग भी कितना दब्बू और विवेकशून्य है जो अनपढ़ नेताओं के कहने पर उलटफेर करने को तैयार हो जाते हैं, इसका स्पष्ट चित्रांकन किया गया है। बुद्धिजीवी वर्ग किस तरह सही मार्ग में चलने में ठोकरें खाता है और समाज में कितना पिछड़ गया है, इसका भी लेखक ने बखूबी चित्रांकन किया है। आधुनिक समय में राष्ट्रीय योजनाओं का लाभ वास्तविक व्यक्ति को न मिलकर कुछ इने-गिने लोग किस तरह दुरुपयोग करते हैं इस पर बड़ा व्यंग्य किया गया है।

स्वभाव—यह लेखक की मनोवैज्ञानिक कहानी है। ग्रामीण बाला गिलहरी शहर में भाई के पास जाती है। उम्र अधिक होने पर भी उसमें ग्रामीण जीवन की सहजता एवं सरलता है, जिसे शहरी सभ्यता के लोग उच्छृंखल की संज्ञा दे देते हैं। विवेच्य कहानी में मनोवैज्ञानिक कसौटी पर स्वभाव का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

अभाव—इस कहानी में ग्रामीण परिवार की आर्थिक विपन्नता का बड़ा मार्मिक विवेचन किया गया है। नायक बिन्नू अपनी वृद्धा माँ, छोटे भाई के पास बिना माँ के पुत्र को छोड़कर आजीविका की तलाश में शहर चले जाते हैं, किन्तु यहाँ से घर को कोई मदद न पहुँचा सकने की कुण्ठा से दुःखी एक दिन घर में वापस लौट आता है। घर का खर्च किसी तरह छोटा भाई ट्यूशन करके चलाता है। कई वर्षों बाद घर आकर भी बिन्नू गुमसुम बैठ जाता है। उसे महसूस होता है कि हर तरफ से अभावग्रस्त जीवन कितना दुष्कर है। इस परिस्थिति में व्यक्ति का जीवन जड़वत हो जाता है, जिसकी मूल वेदना फिर समझने की वस्तु रह जाती है। कथानक संक्षिप्त होते हुए भी पाठक के मन में एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर कुछ सोचने हेतु विवश कर देता है।

परिणति—प्रस्तुत कहानी भारतीय आदर्श नारी की कहानी है, जो पतिव्रता होते हुए भी पति का प्रेम पाने के लिए कितनी तरसती है। वितस्ता का पति चिरंतन होटलों, सिनेमाघरों तथा पार्टियों में मौज उड़ाता है, किन्तु पत्नी को प्रेम नहीं करता। वह किसी न किसी बहाने से अवकाश के दिन भी बाहर रहता है और परस्त्री गमन करता है परन्तु वितस्ता को जब वस्तुस्थिति मालूम होती है तो वह भी मॉडर्न नारी का नाटक रचकर चिरन्तन को आत्मग्लानि के लिए बाध्य कर देती है। अंततः अपना अधिकार लेने में सफल हो जाती है। आधुनिक भौतिकता के युग में व्यक्ति किस तरह वितस्ता जैसी सती-सावित्री को त्यागकर क्लबों में डाँस करने वाली आधुनिकाओं के पीछे दीवाना हो

रहा है तथा वासना के पंक में डूबता जा रहा है। इसे व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत कहानी में विवेचित किया गया है। अन्ततः विशुद्ध प्रेम की वासना पर, स्थायित्व की अस्थिरता पर, त्याग की भोग पर विजय होती है। वितस्ता भी अपने त्याग, लगन एवं आस्था द्वारा चिरंतन का हृदय जीत लेती है। उसे पवित्र प्रेम की शिक्षा भी दे देती है। पवित्र प्रेम हृदय और आँखों तक ही सीमित होता है उसमें वासना की दुर्गन्ध नहीं अपितु पवित्र हृदय की सुगन्ध होती है।

नई बात

'नई बात' कहानी का कथ्य निम्नवर्गीय जीवन से सम्बन्धित है, लेखक अपने शिल्प वैशिष्ट्य से कहानी को साकार रूप दे देता है। पारिवारिक शोक, विभिन्न उत्तरदायित्वों का बोध आदि समस्याओं का निराकरण मनोनुकूल नहीं हो पाता तो उसकी सिकुड़ती सिमटती भावनाएँ एक दूसरे से टकरा-टकरा कर बिखर जाती है तब व्यक्ति 'नई बात' सोचने पर विवश हो जाता है।

दंश—इस कहानी में दो भाईयों की कथा है, जिसमें बड़े भाई की मृत्यु हो जाती है। यहीं दंश छोटे भाई इन्दर के लिए असह्य हो जाता है। उसका सारा उत्साह समाप्त हो जाता है। जीवन जीने की ऊर्जा भी उसमें नहीं रहती है। परकटे पक्षी की तरह छटपटाता रह जाता है।

इसके अतिरिक्त इस संग्रह में 'बूँद पानी' घर के प्रति व्यक्ति का आत्मसमर्पण हैं, इस कहानी में लेखक का मानवतावादी स्वर मुखर हुआ है। 'सिमटा हुआ दुःख, 'किनारे के लोग' तथा 'किसी एक शहर में' आदि महानगरीय परिवेश को उजागर करने वाली कहानियाँ हैं।

(ख) मनुष्य चिह्न—

इस कहानी संग्रह में 'अपने कस्बे में' लेखक ने अपने गाँव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कुमाऊँ के ग्रामों की दीन दशा का बड़ा स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण लेखक ने किया है—'मोटर का पिछला पहिया कहीं मेरे सीने में धँस गया है। मुझे लगता है सड़क कागज के फीते की तरह जगह-जगह से मुड़कर कट गई है, सामने बर्फीली नदी का चौड़ा पुल धनुष की तरह मुड़ गया है। मैं झटके से देख रहा हूँ कस्बा सचमुच पीछे छूट गया है।'[१]

अक्षाँश—इस कहानी में महानगरीय जीवन मूल्यों एवं अव्यवस्थित जीवन पर व्यंग्य है। महानगरों में अपराधवृत्ति, किसी का दोष किसी सरल व्यक्ति के गले कितनी आसानी से मढ़ा जा सकता है, इसका सुन्दर विवेचन किया है।

इस संग्रह में 'यह सब असंभव है', 'एक सुकरात और', 'झुका हुआ आकाश', 'बरस बीत गया', 'लिखे हुए शब्द' आदि मर्मस्पर्शी कहानियाँ हैं।

---

१. मनुष्य-चिह्न, पृ. ९

(ग) रथचक्र—

इस संग्रह की कहानियों में आम आदमी के संघर्ष की कहानियाँ हैं। 'रथचक्र', 'कोई एक मसीहा', 'देखे हुए दिन', 'जीना-मरना', 'रास्ता रूक गया है', 'छोटी इ', 'एक समुद्र भी', 'हरे सूरज का देश', 'अनचाहे', 'सीमा के कुछ और आगे', 'भेड़िया और न जानना' इस कहानी संग्रह में संकलित कहानियाँ हैं। सर्वहारा वर्ग के जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ हैं।

(घ) जलते हुए डैने—

इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ हैं—'जलते हुए डैने', 'अंतराल', 'समुद्र' और 'सूर्य के बीच', 'एक बटवृक्ष था', 'तरपन', 'स्मृति चिह्न', 'जो घटित हुआ', 'पाषाण गाथा', 'आदमियों के जंगल में' तथा 'तलाश' कहानियाँ संकलित हैं। हिमांशु की कहानियों में क्रमशः कथ्य के साथ-साथ शिल्प भी नया चाहिए। जिससे अधिक गहराई से, अधिक प्रभावशाली ढंग से पाठक को प्रभावित किया जा सके। यहाँ तक की लेखक की नई कहानियाँ फैन्टेसी के समीप लगती है यथा—'समुद्र और सूर्य के बीच', 'जो घटित हुआ' और 'तलाश' आदि कहानियाँ। लेखक ने स्वीकार किया है कि—'फेन्टेसी को मैंने फैशन के लिए नहीं एक माध्यम के रूप में लिखा है। 'जलते हुए डैने', 'एक वट वृक्ष था' आदि कहानियों में राजनीतिक विडम्बना के स्वर अधिक मुखर होकर उभरे हैं।'[१]

शिवानी

साठोत्तर महिला कथाकारों में शिवानी का नाम अग्रगण्य है। शिवानी के प्रमुख कहानी संग्रह ये हैं—'लाल हवेली', 'पुष्पहार', 'उपहार', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'स्वयंसिद्धा', 'ठौढा'। शिवानी की कहानियों में अधिकांश पात्र आभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित हैं, किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है। 'जिलाधीश' कहानी में सुमन कलक्टर के पद पर आसीन होकर भी अत्याधुनिक नारी के रूप में चित्रित है। उसका अहंभाव, प्रकृति के प्रतिकूल रहने का निश्चय, गम्भीरता का अभाव आधुनिक शिक्षित उच्च पदासीन महिलाओं के खोखलेपन को उभारती है। रणधीर सिंह का आतंक, अमानवीयता उसकी पारिवारिक परिस्थितियों की देन हैं। 'माँ को बचपन में ही खो दिया, पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। न मुझे माँ की ममता मिल पाई न बाप का दुलार, मेरी कुण्ठा ने मुझे विद्रोही बना दिया। चाहो तुम ही अपने रूप, प्रतिभा और स्वभाव से मुझे····।[२] प्रस्तुत कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यक्ति के मानसिक पतन में पारिवारिक वातावरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'दो बहनें' जया और विजया दो सगी बहनों में परस्पर प्रतिस्पर्धा का चित्रण है। बड़ी बहन जया लम्बी और साँवली है, किन्तु शालीनता की प्रतिमूर्ति। इसके विपरीत

१. रथचक्र, दो शब्द,
२. उपहार (कहानी-जिलाधीश), पृ. ३०

विजया चंचल एवं तेज-तर्रार स्वभाव की है। इसीलिए बुआ द्वारा भेजा गया आई.ए.एस. केशव विजया के स्थान पर जया को अपना जीवन साथी चुनता है। शिवानी के शब्दों में—'छब्बीस वर्ष तक एक दूसरे से रक्त मज्जा मांस की डोर से बँधी जुड़वा-सी बहनों को पलभर में केशव ने किसी कुशल सर्जन की सी शल्यक्रिया से सदा-सदा के लिए विलग कर दिया। कहते हैं ऐसी शल्य क्रिया से विलग की गई दो बच्चों में से एक ही जीवित रह जाती है। पता नहीं इन दोनों में से कौन जी पायेगी छोटी या बड़ी....।'[१]

'अपराधी कौन' में नारी के गहनों के प्रति मोह का बड़ा स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। गहनों के मोह में पड़कर मीना के समान शिक्षित नारी भी चोरी जैसी जघन्य कृत्य कर बैठती है। अन्ततः आकर्षक करधनी उसके सूटकेश से उसकी भाभी कमला चुरा लेती है। गहनों को लेकर परिवार के सदस्यों में ईर्ष्या और द्वेष का स्वाभाविक चित्रण किया है।

'उपहार' कहानी में शंकालु पति द्वारा परित्यक्ता उपेक्षित पत्नी के विक्षिप्त होने की कहानी है। 'तर्पण' भ्रष्ट राजनेताओं के काले-कारनामों का भण्डाफोड़ करती है। कथा नायिका प्रेमी पीताम्बर से कहती है कि—'जानते हो, मैंने हत्या क्यों की ? आज से वर्षों पूर्व उस दानव ने मेरा सर्वस्व हरण किया था, उसी लज्जा ने मेरे पिता के प्राण लिए, माँ को दिल का दौरा पड़ा और वह भी चली गई। आज इतने वर्षों में मैंने पुत्री होकर भी माता-पिता का तर्पण किया पीताम्बर।'[२]

'करिये छिमा' में श्रीधर अपने गाँव के जज की हैसियत से हीरावती को अपने जीजा से प्रेम करने के आरोप में गाँव से निष्कासन का फैसला सुनाता है। निष्कासित हीरावती को एक दिन श्रीधर दिखाई देता है। अपनी गुफा में श्रीधर का सत्कार करती है। श्रीधर उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। वह गर्भवती हो जाती है तथा नवजात शिशु में श्रीधर की सूरत देखकर उसे अलकनंदा की गोद में सुला देती है। मंत्री श्रीधर इसका कारण पूछते हैं तो वह कहती है—'वह शिशु आपकी ही शक्ल का था, इसलिए आपकी बदनामी की डर से मैंने उसे बहा दिया। हीरावती का उत्तर सुनकर श्रीधर का मन कराह उठता है।

'स्वयंसिद्धा' कहानी कुमाऊँनी नारी के धैर्य, साहस और शौर्य की कहानी है। 'अपराजिता' एक रूपवंचिता नारी के प्रबल एवं दृढ़ व्यक्तित्व को निखारती है। ऋणमुक्ति की विवशता के कारण शालिनी जिन्दगी से उबरने के लिए चोरी करने को प्रवृत्त होती है। भाई की मजबूरी जानकर उसका आक्रोश बिखर पड़ता है। अपने उच्च संस्कारों से जुड़ी रहने के कारण सत्य की राह पर चलने के लिए प्रेरित होकर छटपटाती रह जाती है। एक असहाय कन्या की विवशता पूर्ण जीवन की झलक सहज रूप में प्रदर्शित हो जाती है। एक ओर उच्च संस्कारों का जीवन दूसरी ओर वर्तमान आर्थिक मजबूरियों के

१. करिए छिमा (कहानी-दो बहनें), पृ. ८६
२. करिए छिमा (कहानी-तर्पण), पृ. १९२

बीच शालिनी सदृश कई युवतियाँ भटक कर रह जाती है। व्यक्ति न चाहते हुए भी पतन की ओर उन्मुख हो रहा है। 'नव-दर्पण में साधु-सन्यासियों का वास्तविक और यथार्थ चित्रण किया है, जो चमत्कारों की आड़ में कितना पाप करते हैं। इसी तरह 'निर्माण' कहानी में भी साधुओं के काले-कारनामों का भण्डाभोड़ किया गया है। पुष्पहार, जेष्ठा, सती, गजदन्त, अभिनव, लाठी, बन्दघड़ी आदि कहानियाँ काफी चर्चित रही हैं। शिवानी की अधिकांश कहानियाँ निजी अनुभवों के आधार पर आधारित हैं। इनमें उच्चवर्गीय नारियों के प्रेम, परिवार, चरित्र आदि को मुख्य रूप से उजागर किया है। 'शिवानी की कहानियों में आये सभी पात्र उच्चवर्ग जन्य, धर्म और समाज का ही चित्रण है।'[१] ऐसा कतिपय आलोचकों ने आरोप लगाया है। किन्तु यह सर्वत्र नहीं दिखाई पड़ता है। प्रारंभिक रचनाओं में इस वर्ग के पात्रों की बहुलता अवश्य है। शिवानी की भाषा तत्सम प्रधान और अंग्रेजी, कुमाऊँनी, बंगला शब्दों से अलंकृत है। सभी कहानियाँ चरित्र प्रधान या घटना प्रधान है। कहानियों में रोचकता, नाटकीयता तथा कौतूहल सजीवता पैदा कर देते हैं। कहानी पढ़ते-पढ़ते दृष्टिपटल पर एक-एक कर चित्र उभरने लगते हैं।

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

मूलतः वैज्ञानिक कथाकार होते हुए भी 'अशोक' जी की कहानियों में पर्याप्त विविधता है। आपने विज्ञान, समाज, अंचल, मनोविज्ञान, इतिहास आदि विभिन्न क्षेत्रों का स्पर्श किया है। आपके निम्न कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं— (१) अस्थिपिंजर, (२) शैलगाथा, (३) भेड़ और मनुष्य, (४) अप्सरा का सम्मोहन, (५) श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, (६) श्रेष्ठ वैज्ञानिक कहानियाँ।

हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक कहानियाँ सर्वप्रथम पाश्चात्य साहित्य से अनुवादित होकर आई। सन् १९०० में 'सरस्वती' में प्रकाशित केशवप्रसाद सिंह की कहानी 'चन्द्रलोक की यात्रा' आदि तथा १९०८ में स्वामीसत्यदेव परिव्राजक की कहानी 'आश्चर्य जनक घंटी' सरस्वती में प्रकाशित हुई। किन्तु वे सभी कहानियाँ पाश्चात्य कहानियों के अनुवाद के रूप में ही थी। मौलिक वैज्ञानिक कथालेखन में सर्वप्रथम श्री राम शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी की 'विशालभारत' में प्रकाशित कहानियों से होता है। इसके बाद 'सरस्वती' पत्रिका इस दिशा में सक्रिय रही—डॉ. नवलबिहारी मिश्र, डॉ. ब्रजमोहन गुप्त एवं श्री यमुनादत्त वैष्णव की वैज्ञानिक कहानियाँ इसमें प्रथम वैज्ञानिक कहानियों के रूप में प्रकाश में आयी। आज भी इस क्षेत्र में अधिक नाम नहीं गिनाये जा सकते हैं। रमेश वर्मा, कैलाश साह एवं देवेन्द्र मेवाड़ी इस दिशा में और आगे आये हैं।

'अप्सरा का सम्मोहन' वैष्णव जी का पूर्णतया वैज्ञानिक कथाओं का संग्रह है। 'अस्थिपंजर' में वैज्ञानिक तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित कहानियाँ संगृहीत हैं। वैष्णव जी की कहानियों के विषय में डॉ. विश्वनाथ शर्मा का कथन—'.... वैष्णव जी की कहानियाँ वैज्ञानिक तत्त्वों पर आधारित है, उनसे कथा-रस के साथ-साथ वैज्ञानिक

१. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, डॉ. भगतसिंह, पृ. ३१२

जीवन दर्शन की उपलब्धि होती है। अंधविश्वास खण्डित होते रहते हैं, भ्रमों का निवारण होता जाता है और तर्कशील जीवनदृष्टि प्राप्त होती जाती है। स्वयं वैज्ञानिकों के लिए भी इन कहानियों में नई दिशाओं, नूतन क्षेत्रों की ओर अग्रसर होने के लिए संकेत हैं।'[१]

'अस्थिपिंजर' यथार्थ की चेतना को लोक व्यवहार से भिन्न अर्थ देने का प्रयास करने वाली अस्थिपंजर कहानी संग्रह की प्रतिनिधि कहानी है। 'वैज्ञानिक की पत्नी' कहानी में लेखक को १९३७ में प्रयाग विश्वविद्यालय की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। निर्णायक जैनेन्द्र कुमार के शब्दों में—'उसमें व्यंग्य या तो व्याप्त मर्म था तो कहीं एक या अनेक स्थल पर नहीं,. मानो कहानी स्वयं व्यंग्य थी। कथा थी तो सर्वथा उच्छ्वासहीन और अन्तर्लीन।'[२]

साठोत्तर कहानी साहित्य में 'अप्सरा का सम्मोहन' बहुत चर्चितसंग्रह रहा है। 'अप्सरा का संग्रह' अनुगामिनी बाल मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है। प्रस्तुत संग्रह में प्रथम कहानी पहाड़ी प्रदेश में चीड़ की पत्तियों का उपयोग स्वादिष्ट व्यंजन तथा वाद्य-सामग्री बनाया जाना एवं प्रयोगशाला में उनका परीक्षण आदि लेखक की मौलिक कल्पना है। वास्तव में चीड़, देवदार, बांश की पत्तियाँ निरर्थक गिरती रहती हैं, उनका किसी कार्य में लाकर उपयोग होना चाहिए।

'अप्सरा का सम्मोहन' कहानी समाज में व्याप्त अंधविश्वासों तथा परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह है। भूत-प्रेत आदि से संबंधित मान्यताओं की पुष्ट प्रमाणों के द्वारा खिल्ली उड़ाई गई है। नयनार घाटी में मदनमोहन की मृत्यु का कारण अप्सरा का सम्मोहन मान लिया जाता है। घाटी के निवासी यहाँ पर होने वाली मृत्यु को अज्ञात अप्सरा की कामुक दृष्टि का परिणाम समझते हैं, मेडिकल कालेज के दो छात्र इस रहस्य का कारण एक चमगादड़ के परीक्षण से करते हैं। यह चमगादड़ वैम्पायर या जो रैबीज से पीड़ित होने पर ही काटता है। उसके मस्तिष्क में हाइड्रीफीथिया के कीटाणु भी पाए गए। 'खाछरी आछरी' का रहस्य अब उन्मुक्त हो गया।

इस प्रकार कहानी समाज में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ परम्पराओं पर कसकर प्रहार करती है। 'कौन खाँसता है', 'शव लड़ते थे' कहानियाँ भी इसी तरह की कहानियाँ हैं, जिनमें सामाजिक अंधविश्वासों पर प्रहार किया गया है।

रेडियो रोग

संचार के साधनों के निर्माण के क्षेत्र में नूतन वैज्ञानिक संभावनाओं एवं परिकल्पनाओं को आधार बनाकर लिखी गई प्रस्तुत कहानी जासूसी दुनिया में विज्ञान की दखलन्दाजी का रोचक उद्घाटन करती है। दो पड़ोसी देशों में परस्पर संघर्ष हो जाता है। एक दूसरे की गुप्त बातों को मालूम करने की जिज्ञासा उन्हें जासूसी के कर्म में प्रवृत्त करती है, किन्तु कोमा जिस यंत्र की स्थापना करता, कनिका को उसका पता

१. अप्सरा का सम्मोहन, भूमिका,

२. अस्थिपिंजर, भूमिका,

चल जाता और कनिका के उपकरण का कोमा को। इस बार कोमा को अद्भुत सफलता मिलती है जब वह शत्रु-देश के प्रधानमंत्री के शरीर में ही विद्युत-यंत्र स्थापित कर उससे ही ट्रांसमीटर का लाभ लेना प्रारंभ कर देता है। इधर कनिकावासियों को समझ में नहीं आता कि यंत्र कहाँ स्थापित है। अन्त में अनेक उपायों के बाद डॉ. पिथेर ने एक रेडियो क्रियाशील पदार्थ को प्रधानमंत्री के सिर में पहुँचाकर गीगर काउन्टर यंत्र से यह ज्ञात कर लिया कि यंत्र उनके बायें जबड़े में स्थापित है। तब प्रधानमंत्री को स्मरण आया कि विदेश में उनके दाँत में दर्द हुआ था तब डॉक्टर ने दाँत में सीमेन्ट के बहाने रेडियो ट्रांसमीटर स्थापित कर दिया था, जिसे आसानी से निकाल लिया गया। कथा अत्यन्त रोचक तथा प्रस्तुतीकरण अत्यन्त सुन्दर है।

'न्यूटनिया का यात्री' कहानी में ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों में अति विकसित मानव की कल्पना है। वे मनुष्य की इच्छाशक्ति को वश में कर लेते हैं तथा अदृश्य रूप से उड़नतश्तरियों के आधार पर व्याप्त हुई है, इन्हें अज्ञात नक्षत्रों का विज्ञान कहा गया है। इन्हीं उड़नतश्तरियों को आधार बनाकर लेखक ने कल्पना के माध्यम से न्यूटनियावासियों की कल्पना कर उनकी उपलब्धियों के सन्दर्भ में उर्वर वैज्ञानिक कल्पना की है।

नील के धब्बे

संश्लेषित नील को आविष्कार का आधार बनाकर लिखी गई इस कहानी में वैज्ञानिकता और सामाजिकता का अपूर्व सामंजस्य है। भारतीय व्यक्ति ब्रजमोहन द्वारा मधुपर्णिका का अर्क बनाना तथा जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा गुणों को आधार बनाकर 'न्यूकोजाइड' को समझ कर कृत्रिम नील बनाना साधारण घटना होते हुए भी असाधारण खोज का कारण बनती है। कहानी से स्पष्ट होता है कि विज्ञान समय, शक्ति और धंन की बचत करता है। कोई भी आविष्कार अत्यधिक लगन एवं परिश्रम की अपेक्षा करता है। लेकिन कभी-कभी छोटी सी बात या घटना बड़े-बड़े आविष्कारों को जन्म देती है।

'कोंदों की रोटी' पर्वतीय अंचल में छुआछूत तथा साम्प्रदायिकता का चित्रण करती है, पहाड़ी गाँव में अमेरिकी कर्नल को बर्तन में खाना न देकर कोदों की रोटी में ही सब्जी रख कर दे देते हैं, जिसे कर्नल प्लेट समझता है, किन्तु जब उसे मालूम हुआ कि यह खाद्यान्न है तो वह अमेरिका जाकर इस प्रकार के बर्तन बनाता है, जो भोजन के साथ खाये भी जा सकें, जिससे बर्तनों की बचत एवं साफ करने का श्रम बच सके। 'श्रेष्ठ आंचलिक कहानियों' में अशोक जी की उन्नीस कहानियाँ हैं 'काश्मीर के बचे हुए ग्यारह', परितुष्टा, शुक्र की संध्या, नकचङ डाक्यो, संधि और अभिसंधि 'विकास के पत्थर', 'ग्यात्से की रात', 'आरक्षित', 'पटवारी का बोध' आदि प्रमुख कहानियाँ हैं। इन कहानियों में कुमाऊँ का इतिहास, कुमाऊँ का समाज वहाँ के रीति-रिवाज, परम्पराएँ और अंधविश्वास, वहाँ की राजनीति, वहाँ की गरीबी और आभिजात्य—ये सभी तथा और भी बहुत कुछ अपनी पूरी विविधता के साथ मूर्त हुए हैं। साथ ही कहानियों की रोचकता, कौतूहल पाठक को भावविभोर कर देते हैं। वैष्णव जी की कहानियों में आंचलिकता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाव भी निहित रहते हैं। वैज्ञानिक शब्दों के साथ

कुमाऊँनी शब्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता रहता है। वर्णनात्मकता के कारण पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ा है। सभी कहानियाँ अपने उद्देश्य में सफल हुई हैं।

शेखर जोशी

शेखर जोशी साठोत्तर कहानीकारों की टीम में सशक्त हस्ताक्षरों में जाने जाते हैं। भले ही परिमाण में उनका साहित्य कम है, किन्तु आधुनिक कहानियों की सम्पूर्ण विशेषताओं के कारण वे साठोत्तर कहानी के सभी वर्गों से जुड़ जाते हैं। आपकी कहानी का प्रमुख कथ्य संत्रास, कुण्ठा, घुटन, हताश, भय, असुरक्षा आदि की भावना से ग्रस्त व्यक्ति की कहानी है। मोहभंग, असंगति, बेकारी आदि जोशी जी की कहानियों के अंग है।

जोशी जी ने आंचलिक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं। आपका कहानी संग्रह 'कोसी का घटवार' बहुत चर्चित कथा संग्रहों में गिना जाता है। इसके बाद 'साथ के लोग' दूसरा कथा संग्रह प्रकाश में आया जिसमें 'दाज्यू', 'कोसी का घटवार', 'उस्ताद', 'कविप्रिया' एवं 'शुभो दीदी' भी पहले प्रकाशित संग्रह से यथावत् ग्रहण की गई हैं। स्वयं लेखक के शब्दों में—'कहानियों का वर्गीकरण उनकी परिवेशगत समानता के आधार पर किया गया है।[१]

प्रथम संग्रह में 'दाज्यू', 'व्यतीत', 'रास्ते', 'कोसी का घटवार' 'आदमी का डर', 'समर्पण' और 'बोझ' आदि कहानियाँ आंचलिक कहानियों की श्रेणी में आती हैं। जिसमें कूर्माचल की विभिन्न झांकियों के साथ वहाँ के निवासियों के विभिन्न मनोभावों का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

द्वितीय संग्रह की कहानियों में 'आखिरी टुकड़ा' 'बदबू', 'उस्ताद', 'मेन्टल' तथा 'सीढ़ियाँ' वर्कशाप, मशीनों तथा कारखानों में काम करने वाले विभिन्न वर्गों के चरित्रों को उजागर किया है। यह वर्णन लेखक ने स्वयं इलाहाबाद की सैनिक कार्यशाला में कार्यरत होकर देखा है, झेला है, इसमें कल्पना का पुट अधिक नहीं है। जोशी जी ने 'निम्नवर्गीय व्यक्तियों का मानसिक अन्तर्द्वन्द आदि का सूक्ष्म चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। आपने आंचलिक कहानियों से शुरूआत कर महानगरीय कोलाहल, मशीनीकरण आदि को समेटते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक की कहानियाँ लिखी हैं। कई कहानियाँ अतीत की स्मृतियों को लेकर लिखी गई हैं और कुछ कहानियों में पीढ़ी अन्तराल को विषय बनाया गया है। 'रास्ते' कहानी यही पीढ़ी अन्तराल की कहानी है। 'कथाव्यथा' में पर्वतीय प्रदेश की नारी की मनोदशा को स्थान दिया है तो 'बाबा' कहानी में सांसारिकता एवं वैराग्य की गुत्थी सुलझाई है। 'आदमी का डर' बाल मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है।

कहानी लिखने की प्रेरणा के विषय में लेखक के विचार–'पर्वतीय प्रदेश की अपनी निजी आत्मीयता तथा उर्वर कल्पना वाले लेखकों द्वारा पर्वतीय नारी के अयथार्थ

१. 'साथ के लोग', शेखर जोशी, भूमिका,
२. कोसी का घटवार, शेखर जोशी, पूर्व-कथन

और वीभत्स चित्रण ने इस दिशा की कहानियों को लिखने की प्रेरणा दी है।[२] प्रारंभ का यही आत्मीयता का भाव धीरे-धीरे विस्तार पाता गया और नगर-महानगरों से होता हुआ कल-कारखानों से सम्पूर्ण देश के समाज में विकसित हो गया। 'आखिरी टुकड़ा', 'बदबू', 'सीढ़ियाँ', 'प्रश्नवाचक आकृतियाँ', 'साथ के लोग' और 'मृत्यु' आदि में उनका यही विस्तारवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

शेखर जोशी ने कहानियाँ वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक एवं प्रतीक शैली में लिखी हैं। कथ्य सहज एवं सरल होते हुए भी प्रभावोत्पादक है। भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग आंचलिक कहानियों में स्वाभाविकता के साथ ही परिवेश के चित्रण में भी सहायक हुआ हैं।

'हलवाहा' जोशी जी का तीसरा कहानी संग्रह हैं। इन कहानियों में पूँजीवादी व्यवस्था में मानव-मूल्यों का ह्रास चित्रित किया गया है। पात्र अपने स्वाभिमान और अस्तित्व हेतु संघर्षशील दिखाई देता है।

मनोहरश्याम जोशी

मनोहरश्याम जोशी जी का एकमात्र प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व' है। संग्रह की प्रथम कहानी 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व. ही है, जिसका नायक रोशन लाल शर्मा स्वयं को महान समझता हैं। उनके प्रत्येक कार्यकलाप इसी मानसिकता से सम्पन्न होते हैं, किन्तु यथार्थ में यह प्रवंचना ही है। उसे अपने प्रमोशन की चिन्ता लगी रहती है दूसरी तरह अफसरों की पत्नियों की दृष्टि में अपने को तूफान समझने की बेवकूफी उनके व्यक्तित्व को उपहास का पात्र बना देती है। कुछ पुस्तकों की एक-आध लाइन याद कर प्रतिष्ठित व्यक्तियों में महान् होने का सपना देखते हैं अपने पुत्र-पत्नी की श्लाघा करते हुए नहीं अधाते, जिससे परिवार के व्यक्ति भी उनसे संतुष्ट नहीं रहते। उनकी कामुक दृष्टि कहारिन की जवान बेटी पर लगी रहती है। अन्त में वे अपना अन्तिम समय घोषित कर उपहास का पात्र बन जाते हैं। अपने मित्र से अपनी डायरी के पन्नों पर उपन्यास लिखने की बात करते हैं। उपन्यास का शीर्षक 'एक दुर्लभ व्यक्तित्व' स्वयं रख देते हैं। आधुनिक युग में व्यक्ति का कितना नकली चेहरा सामने आता है तथा अपनी कोरी प्रतिष्ठा के लिए कितना प्रपंच करता है, यह सब बड़ी व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है। वाह्य चमक-दमक, धन कमाने की, प्रतिष्ठा पा जाने की, कैसी घृणित जिन्दगी जी रहे हैं।

'मेडिरा मैरून' भी इसी तरह की व्यंग्यात्मक कहानी है, जिसमें ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो बाह्य चमक में ही अपने वास्तविक स्वरूप को खो देता है। ये कहानियाँ आधुनिक उच्चवर्ग के बनावटी मुखोटों को बेनकाब करती हैं। इसके विपरीत 'उसका बिस्तर', 'धुवाँ', और 'जिन्दगी के चौराहे पर' आदि कहानियाँ परिवारों की आर्थिक व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करती हैं। 'उसका बिस्तर' का नायक एक छोटी सी नौकरी पाने के लिए घर से दिल्ली जाता है। वहाँ पहुँचकर वह ग्रामीण संस्कारों के

स्वर्णजाल को तोड़कर बाहर मजदूरी के लिए जाता है, तब वह महानगरीय जीवन में खोकर दिशाहीन रास्तों में चला जाता है। घर के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है। छः सदस्यों का परिवार आर्थिक दरिद्रता से कभी ऊबर नहीं पाता। पूरे परिवार की आशा का दीपक एक बिस्तर बड़ी कठिनाई से जुटा पाता है, वह भी चोरी चला जाता है। तब अपना पुराना मैला फटा बिस्तर लाकर जीवन निर्वाह करता है। प्रस्तुत कहानी महानगरों के मोह में ग्राम छोड़कर आने वाले युवकों की दशा का सजीव चित्रण करने के साथ निम्नवर्गीय आर्थिक विपन्न परिवार का भी चित्रण सामने रख देती है।

'धुवाँ' कहानी भी निम्नवर्गीय चरित्रों को उजागर करती है, इसके साथ ही किस तरह यह वर्ग अज्ञानता के कारण बड़ा परिवार बनाकर उसका उचित पोषण न कर पाने से कैसे टूटकर बिखर जाता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। हीरा भंगी पोता देखने की उत्कट अभिलाषा में नवजात शिशु का पोषण भी नहीं कर पाता, वह कालकवलित हो जाता है। खाना भले ही न हो पर पोता अवश्य देखेंगे यही मनोवृत्ति दरिद्रता को जन्म देती है।

'जिन्दगी के चौराहे पर' कहानी आज के आपाधापी के युग में एक क्षण शान्ति की तलाश की चाह है, जो पूरी नहीं हो पाती। एक दिन अवकाश का मिलता है वह भी मुहल्ले की गन्दगी, रागद्वेष से अशान्त हो जाता है।

'गुड़िया' कहानी आंचलिकता का पुट लिए हुए है। उच्च और निम्न वर्ग की वैचारिक दूरी का बड़ी कुशलता से दिग्दर्शन कराया गया है। 'धरती बीज और फल' कहानी प्रकृति की निरन्तरता की कहानी है, नायक क्षयरोग से ग्रस्त होने के साथ ही हीनभावना से भी घिरा हुआ है। पत्नी उसकी हीनभावना दूर करती है। इसी बीच पुत्र की प्राप्ति प्रकृति के सनातन चलने वाली प्रक्रिया को व्यक्त करती है जो निरन्तर 'धरती बीज और फल' के समान कभी नष्ट नहीं होता। स्वयं कथाकार के शब्दों में 'कितना निरर्थक है मानव जीवन का व्यापार और कितना तीव्र, कितनी सार्थक है यह निरर्थकता'[१]।

'मंदिर के घाट की पैड़ियाँ' मध्यवर्गीय अभाव और विडम्बनाओं को लेकर लिखी गई है। मुरली अपनी विवशतावश अपनी प्रेमिका से अलग हो जाता है, किन्तु अपना सब कुछ लुटाकर भी उसे पत्नी की प्राप्ति नहीं हो पाती। 'शक्कर पारे' कहानी में बाल मनोविज्ञान का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

सीमित कहानी लिखने के बाद भी कहानीकार ने शिल्प एवं कथ्य की विशिष्ट रचनाधर्मिता के कारण एक अलग पहचान बना ली है।

पानू खोलिया

रचनाकार खोलिया के सम्बन्ध में—'न किसी तरह की सांस्कृतिक परम्परा, न परिवेश, और न लेखकीय वातावरण की वह समकालीनता, जो रचना की मूलभूत ऊर्जा को सर्जनात्मक उन्मेष का धरातल देती है मगर प्रतिभा के कारण निरपेक्षता

१. एक दुर्लभ व्यक्तित्व, पृ. ९५

अपनी जगह एक बहुत बड़ा सच होता है। लेखक होने के सारे परम्परागत और समकालीन कारणों और स्थितियों के न होने के बावजूद प्रतिभा अपना अस्तित्व सिद्ध करती है। अल्मोड़ा के साहित्य परम्परा से नितान्त शून्य एक छोटे से गाँव से आज अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी कथा साहित्य में प्रतिष्ठित पानू खोलिया का नाम प्रतिभा की इसी कोटि की स्वयंसिद्धता का पर्याय है।'[१]

खोलिया जी का प्रथम कहानी संग्रह 'एक किरती और' है। इसकी प्रथम कहानी 'हस्ती' का नायक प्यारे भंगी जाति का है, किन्तु वह इस पेशे से चिढ़ता है इसलिए वह डुगडुगी पीटने का काम करता है किन्तु अपनी बाल सखा मंजुला के घर की निलामी की डुगडुगी न पीटकर नौकरी ही छोड़ देता है। पुनः भंगी कार्य करने को तत्पर हो जाता है। आर्थिक परिस्थितियों के कारण अशिक्षित रहने के कारण उसे विवश होकर न चाहते हुए भी भंगी का कार्य करना पड़ता है।

'अकास बेल' का नायक चरण आक्सफोर्ड से डाक्टरी करने के बाद भी स्वयं अपनी पत्नी को ही ठीक नहीं कर पाता। नास्तिक होते हुए भी पत्नी के स्वस्थ होने हेतु ज्योतिषी से अपनी कुण्डली दिखाता है। रुग्ण पत्नी से छुटकारा पाना चाहता है। 'इसे देखकर के जरा मालूम कर दें कि उनकी शादिया····कि हेम की उम्र कितनी हैं।'[२] पत्नी के मरणासन्न स्थिति में भी व्यक्ति अपने स्वार्थ और अपने हित की कामना में डूबा रहता है।

'फर्क' कहानी में वृद्ध अध्यापक की कठिनाइयों एवं पढ़ाने से जी चुराने की आदत को दर्शाया गया है। क्रोध में आये शास्त्री जी को शोक-दिवस की छुट्टी की खबर मिलते ही सारा क्रोध दूर होकर प्रसन्नता झलकने लगती है। कहानी का नामकरण यों सार्थक हो जाता है—'आदमी तो रोज ही मरते हैं जी, छुट्टी आज ही कैसे हुई तुम्हें ....समझ लो छोटे-बड़े का यही फर्क होता है। वर्ना सभी बड़े नहीं बन जाते ससुरे ?[३]

'एक ही चाहना' कहानी में अंधे पूना को मालूम है कि उसके छोटे भाई की साली कानी है, जिसकी शादी पूना से हो सकती है, किन्तु उसके छोटे भाई तथा बहू में परस्पर संघर्ष होने से उसे अपनी पत्नी की चाह धूमिल लगने लगती है। तब उसकी एक ही चाहना है कि भाई और बहू का प्रेम बना रहे, जिससे उसे अपनी भी धूमिल आशा पूर्ण होने की संभावना लगती है। अपंग व्यक्ति को कहीं से भी प्रेम नहीं मिल पाता। यदि कहीं से कोई सूत्र मिलता है तो वह उसे छोड़ना नहीं चाहता है।

'शीशकटी' कहानी में एक स्त्री की मनोदशा का वर्णन किया है जो परपुरुष के साथ रंगरलियाँ करते पकड़ी जाती है किन्तु उसके पति द्वारा उचित दण्ड न दिये जाने से वह और भी दुःखी एवं कापुरुषता पर अपने को शीशकटी महसूस करती है। नारी पुरुष की तभी तक इज्जत करती है, तभी तक उसका भय बना रहता है, जब तक उसे

१. विकल्प कथा: साहित्य विशेषांक, नवम्बर, १९६८, पृ. २४
२. एक किरती और, पानू खोलिया, पृ. ४६
३. एक किरती और, पानू खोलिया, पृ. ४६

उसकी शक्ति पौरूष पर विश्वास बना रहता है—'उसे लग रहा है कि अपने ही द्वारा ठगी गई है। उसके सिर पर जो छत्र था वह उठ गया है, जिसे वह अपना शीश समझकर माथे पर धारण किये थी वह तो चमार की जूती निकला.... ।'[१]

'रिश्ते' कहानी में विधुर पति अपनी पत्नी के वार्षिक श्राद्ध को श्रद्धा से करना चाहता है, किन्तु पुत्र मरे व्यक्ति के लिए खर्च निरर्थक समझता है। इस भावना से पिता का मन दुःखी हो जाता है तथा पुत्र से मनमुटाव हो जाता है, किन्तु पुत्र जब पिता की भावनानुसार कार्य करता है तो प्रसन्न हो जाते हैं। भावनाप्रधान कथानक है।

'दुश्मन' कहानी भी इसी तरह के मनोभावों की है। आर्थिक जर्जर परिस्थितियों से पिता पुत्र की दवादारू नहीं कर पाता, पुत्र की मृत्यु के बाद उसे मानसिक आघात लगता है, वह अपने मृत पुत्र को अपना दुश्मन समझने लगता है। इस संकलन में सबसे चर्चित और महत्त्वपूर्ण कहानी 'एक किरती और' है। कथा-नायक पिरमिया कुरूप और श्यामवर्ण का है। उसकी बहन किरती भी इसी तरह कुरूपा है। कुरूपता के कारण उसका विवाह भी नहीं हो पाता। पिरमिया की पत्नी मंजुला पिरमिया से शारीरिक संबंध नहीं रखना चाहती, उसकी जिद पर वह उसे फटकारते हुए कहती है—'अगर कल को इस घर में एक किरती और जनम गई तो मुझे दोष न देना'।[२] पति के प्रति प्रेम होने पर भी वंश की बदसूरती से घबराकर उससे शारीरिक संबंध नहीं रखना चाहती। वह दूसरों से शारीरिक संबंध को बुरा नहीं मानती—'यह तो हम लोगों में चलता ही है, पुरूखों से चलता आ रहा है। इसमें नाक कटने की बात ही क्या है।'[३]

खोलिया जी ने अपनी कहानियों में भिन्न-भिन्न समस्याओं को उकेरा है, एक ओर आर्थिक कठिनाइयों से उत्पन्न समस्याएँ तो दूसरी ओर मानसिक द्वन्द्वों की कहानियाँ हैं। मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएँ तो लेखक ने स्वयं झेली तथा भोगी हैं। प्यारे का भंगी का कार्य करने की विवशता (हस्ती), पिरमिया की पत्नी का दूसरों से शारीरिक संबंध रखने की विवशता आर्थिक रूप से अभिशप्त जीवन जीने की विवशता है।

'दण्डनायक' खोलिया जी का दूसरा कहानी संग्रह है।

लक्ष्मण सिंह विष्ट बटरोही

कूर्माचलीय साठोत्तरी कथाकारों में लक्ष्मण सिंह विष्ट बटरोही का नाम एक विशिष्ट स्थान रखता है। उनका कहानी संग्रह 'दिवास्वप्न' एक चर्चित कहानी संग्रह है। इसमें कुल १७ कहानियाँ संगृहीत हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'बर्फ पर पड़ते कदम' में कुमाऊँ के उन परिवारों की कहानी हैं, जिनके सपूत देश रक्षा हेतु सीमा पर बर्फ में, आँधी तूफान में रात-दिन जगकर प्रहरी बने हुए हैं और उनके आत्मज चार-चार बेटों के रहते हुए भी बुढ़ापे में अकेले असहाय के समान एकाकी जीवन जी रहे हैं। दुःखदर्द में कोई दवापानी देने वाला भी नहीं है, ऐसे ही एक

१. एक किरती और, पानू खोलिया, पृ. ९८-९९

२. एक किरती और, पानू खोलिया, पृ. १६३

परिवार का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है। सबसे छोटा पुत्र भी अपने भाईयों का अनुकरण करता हुआ फौज में भरती हो जाता है, किन्तु उसके मन में तथा उसके जाने से घर में एक रिक्तता, एक सूनापन छा जाता है। पाठक भी उस रिक्तता को महसूस करने लगता है। लेखक ने बड़ी कुशलता के साथ कहानी मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी बना दी है।

'लेम्पपोस्ट' कहानी भी कूर्माचल के परिवेश से जुड़ी है। कथानायक निर्धन परिवार का है। पिता के द्वारा बड़ा आदमी बनने का स्वप्न दिखाकर वह चाचा के साथ अध्ययन करने शहर चला जाता है। शहर में चाचा रात-दिन ताड़ी पीकर बेहोश पड़े रहते हैं। चाची एक नौकर की भाँति उसे घरेलू कार्य में जोती रहती हैं। कभी-कभी चाची के हाथों मार भी खानी पड़ती है अन्ततः वह भाग जाता है। रास्ते में मिलिट्री में भरती होने का विचार बनाता है जो ट्रेनिंग में रंगरूटों पर पड़ती मार को देखकर विचार बदल देता है फिर चाचा के घर लौट आता है, सोचने लगता है—'ऐसे थोड़े ही घर की हालत सुधरेगी। उसकी आँखों के आगे घर का यह वातावरण घूम गया, जिसके एक-एक कोने में कीड़ों की विलविलाहट, पतिंगों की हाय-काय मची रहती है।'[१] 'उसका बच्चा' कहानी में जातिवाद का चित्रण किया गया है। जातीय कट्टरता के कारण दो पक्षों के ठाकुर होने पर भी सोवन की शादी उसकी प्रेमिका से नहीं हो पाती। उसकी प्रेमिका देवा की शादी दूसरे व्यक्ति से हो जाती है। जब वह उसके बच्चे की माँ बनने वाली होती है, जिसका स्पष्टीकरण इस रूप में कहानीकार ने किया है: देवा का पति सोवन से कहता है—'एक लड़का हुआ साला आठ महीने में ही....तब से कोई बच्चा नहीं है, लेकिन पहला बच्चा है बड़ा सन्तोषी। पता नहीं किस पर गया है हमारे घर में तो कोई नहीं था ऐसा....क्या कहता सोवन सिंह ? अन्त में सोवन उसके बच्चे के लिए गुड़िया खरीद कर ले जाता है मगर दे नहीं पाता है।'[२]

'संक्रमण' कहानी पीढ़ी अन्तराल की कहानी है। परतिया दीदी अपनी जिस छोटी बहन को पालपोष कर बड़ा करती है वह उसकी बिमारी में शिरीष के साथ हँसी-मजाक में व्यस्त रहती है, बीमार दीदी को पूछती तक नहीं'। 'अप्रत्याशित की मौत' कहानी में बिल्ली के द्वारा चूहे को मुँह में दबाकर ले जाने को देखकर 'म' को भी मौत के अप्रत्याशित आने का भय व्याप जाता है।

'आकृति' कहानी में नायक अपनी माँ की मौत पर अपने रिश्तेदारों का बनावटीपन देखकर खिन्न है। उसे चमगादड़ की आकृति से मिलती आकृति लगती है उन लोगों की। मात्र औपचारिकताएँ निभाते अपने लोग, अपनेपन का कहीं लेश भी नहीं है। 'कुत्ते' कहानी में भूख से पीड़ित व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण किया गया है जो गिद्ध और कुत्तों के साथ मरे बैल को खाकर क्षुधा शान्त करना चाहता है, किन्तु

---

१. दिवास्वप्न, पृ. २२

२. दिवास्वप्न, पृ. २८

लोगों के देख लेने के भय से खा भी नहीं पाता—'उसने सोचा यदि लोग यहाँ पर नहीं होते और अँधेरा थोड़ा अधिक बढ़ गया होता तो वह जरूर निश्चित रूप से कुछ माँस काट लाता।'[१] 'वह रात्रि की प्रतिक्षा में है।'

'माध्यम' कहानी में उस व्यक्ति की मनोदशा चित्रित की गई है, जिसका एक मात्र बेटा कत्ल कर दिया गया है। कुछ दिनों में रिश्तेदारों के चले जाने के बाद सूने, एकाकी जीवन में कुछ विक्षिप्त सा हो गया है। खूनी के प्रति उनका आक्रोश बढ़ता जाता है। एक दिन वह अपने कुत्ते को छुरे से मारने का प्रयत्न करता है। संभवतः उसके माध्यम से बेटे के खून का प्रतिशोध कुछ मिटे।

'अभिनेता' कहानी उन ठगों का चित्रण करती है, जो विभिन्न अभिनयों के द्वारा लोगों की सहानुभूति जीतकर लूटते हैं, छल से पैसा बटोरते हैं।

'मुक्ति' कहानी में कुमाऊँ के उन किसानों की मनोदशाओं का वर्णन है जो रात-दिन मेहनत करके भी दो माह का भोजन नहीं पैदा कर पाते हैं इसलिए उनके मन में तराई (भावर) में जाकर बसने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इन्हीं लोगों में कुछ शिवनाथ जैसे भी हैं जो गरीबी देखकर वहाँ से जाना चाहते हैं, किन्तु अपने धरती का मोह उन्हें जाने नहीं देता। सब तैयारी होने पर भी यह मोह-बन्धन उन्हें वहीं रहने पर विवश ही नहीं करता अपितु वे एक निश्चय का, मुक्ति का अनुभव भी करते हैं। 'कायर', 'सहपाठी', 'कोहरा पारदर्शी क्यों नहीं होता' आदि कहानियों में अमूर्तता के साथ-साथ प्रतीक शैली का प्रयोग किया गया है।

'खोह' कहानी में लेखक ने समाज के विकास में बाधक उन परम्पराओं, रूढ़ियों का खण्डन किया है जिसे मोहग्रस्त व्यक्ति छोड़ना नहीं चाहता, अपनी अज्ञानता अपनी अशिक्षा के कारण। 'कुछ भी तो सच नहीं' में लेखक ने उन आधुनिकाओं का चित्रण किया है, जो भावना में आकर प्रेमसंबंध रचा लेती हैं, किन्तु वैचारिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर अलग-अलग होने के कारण सामन्जस्य नहीं बना पाती। अन्ततः वे तिरस्कृत कर दूसरी तरफ आकर्षित होती हैं, किन्तु सन्तुष्टि वहाँ भी नहीं मिलती, इस तरह यंत्रणा में जीकर उन्हें 'कुछ भी सच नहीं' लगता है।

'महाभारत' इस कहानी में लेखक ने मनोभावों का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है। आज की दुनिया में हर क्षण महाभारत छिड़ा रहता है। कहीं न कहीं व्यक्ति के मन में भी एक ऐसा ही महाभारत रात-दिन चला करता है। एक खबर ने उसे और भी भयभीत कर दिया जब उसे मालूम पड़ता है कि किशनपुर में कीर्तिसिंह सुबेदार के बेटे ने अपने बाप के तीन टुकड़े कर दिए उसे महाभारत का वह प्रसंग स्मरण होता है—'मैं कुछ दिनों पहले महाभारत पढ़ रहा था···उसमें एक जगह यक्ष महाराज कहते हैं—पिता आकाश के समान महान और विशाल होता है।'[२]

---

१. दिवास्वप्न, पृ. ५०

२. दिवास्वप्न, पृ. १६६

'दिवास्वप्न' कहानी में एक शोध-छात्र के दिवास्वप्नों का विश्लेषण है जो दूर पाँच वर्ष से शोध कार्य में लीन है, न जाने कितने पेड़-पौधों की जानकारी कर ली है किन्तु अपने पास ही उगनेवाले देवदार के वृक्ष को और अपने दादा को वह समझ नहीं पाता। 'मेरा सारा वन विज्ञान शायद अतीत बन गया है पेड़ों पर काम करते-करते उम्र बीत गई है, लेकिन यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि देवदार कैसे उगता है? कौन-सी शक्ति उसे इतना विशाल बनाती है? कौन-सी शक्ति ढहा देती है? बचपन में सुना था कि किसी एक आदमी ने देवदार को उगते और बढ़ते नहीं देखा है, लेकिन मेरा कुलदेवता देवदार क्या सचमुच ढह जायेगा।'[१]

इस संकलन की सभी कहानियाँ आधुनिक युग-बोध की कहानियाँ हैं। वर्तमान समाज एवं समाज में व्याप्त संत्रास, यंत्रणा, कुण्ठा को कहानी का प्रतिपाद्य बनाया है। इसके साथ ही कूर्माचल की गरीबी, सादगी एवं निश्छलता को भी बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। प्रत्येक कहानी का अपना अलग वैशिष्ट्य है। कुछ कहानियाँ एक ही परिवेश को लेकर लिखी गई हैं, किन्तु कथ्य भिन्न-भिन्न है। कूर्माचली कहानियों में आधारभूत समस्याओं को स्थान दिया गया है। 'बर्फ पर बढ़ते कदम', 'लेम्पपोस्ट', 'उसका बच्चा', 'मुक्ति', एवं 'दिवास्वप्न' में आंचलिक परिवेश के साथ कूर्माचल की संस्कृति, सभ्यता एवं आर्थिक स्थिति का बड़ा सफल चित्रण किया गया है। विवेच्य संकलन में कई कहानियाँ फैन्तासी की तरह रची गई है। 'किं पुरूष' में व्यवस्था की दबोच में आकर नपुंसक हो जाने वाले व्यक्ति की नियति को जिस परिकल्पना के साथ रेखांकित करने की कोशिश की गई है वह बटरोही के प्रति संभावना आने की दिशा में काफी आश्वस्त करती है।'[२] 'किं पुरूष' में आधुनिक परिवेश का चित्रण जिसमें हम जीवन जीने को विवश हैं—किं पुरूष। जाकेट पहने हुए अधेड़ लाल कम्बल ओढ़े हुए युवक। तार से बँधे आग की डिब्बी को घुमाते बच्चे। खोमचा। भारी मांसल और गोरे स्तनवाला आदमी। व्यवस्था। काले पहाड़ के ऊपर देवदार का पेड़। हरी नदी। लाल रंग के तीन विशाल पत्थर। सीमेन्ट की सड़क। अँधेरा और प्रकाश। सफेद अँधेरा, काला प्रकाश। सलेटी कोहरा। काले पत्थर के टुकड़े को फेंकता हुआ पुरोहित। जख्म। व्यवस्था। किं पुरूष।.....व्यवस्था को किं पुरूष ने दफना दिया।'[३]

इस प्रकार छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से नूतन शिल्प विधान से लेखक ने इस फन्तासी के माध्यम से आधुनिक समाज व्यवस्था का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

मृणाल पाण्डेय

साठोत्तर महिला कहानीकारों में मृणाल पाण्डेय का नाम विशिष्ट सन्दर्भों में याद किया जाता है। आक्रोश और विद्रोह के स्वर, सपाट बयानी और नूतन शब्द संसार,

१. दिवास्वप्न, पृ. १७५
२. विकल्प ६, पृ. १२८
३. विकल्प ६, पृ. १३५

मोहभंग युक्त राजनीतिक लगाव, नई संवेदना तथा व्यंग्यात्मक स्वर आपकी कहानी की प्रमुख कसौटी है। एक ओर आदमी के दु:ख-दर्द की अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर शोषण और वर्गभेद के प्रति तीखा आक्रोश। मानवीय सम्बन्ध और उनका विघटन आपकी रचनाओं में सर्वत्र परिलक्षित होता है।

'दरम्यान' आपका प्रथम कहानी संग्रह है, जिसकी अधिकांश कहानियाँ औपचारिक शब्दों को व्यंजित करती हैं। इस संग्रह की 'कोहरा और मछलियाँ' में नारियों के चरित्र एवं मनोभावों का बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। रति और बानो को अपनी माँ के संदेहास्पद चरित्र पर आक्रोश है। पश्चिम सभ्यता से ओतप्रोत लड़कियों को माँ की शिक्षा अच्छी नहीं लगती, वे अपनी बीमार तथा असहाय पति के साथ ढेर से फोटो खिंचवाना ही पतिव्रत धर्म का मापदण्ड मानती है। पति का होना समाज में बच्चों के बाप होने की गारन्टी मात्र है। नैतिक चरित्र का कोई मूल्य नहीं है। मात्र औपचारिक रिश्ते हैं किन्तु अपनापन का अभाव है।

'चिमगादड़ें' कहानी में भी इसी तरह रूपवंचिता, विवाह की विवशता, अर्थाभाव, बेरोजगारी की यातना और संबंधों के अलगाव की कहानी है। सामान्य सी नौकरी वाली सोनिया बदसूरत मरिया एवं रूग्ण ममा की जिन्दगी एक बोझ के समान हो गई है। बीमार ममा के प्रति ऊब एवं उपेक्षा का कारण अर्थाभाव की समस्या है। 'ओडर' कहानी में पुत्र शोक सन्तप्त माँ-बाप का करूणाजनक चित्र प्रस्तुत किया गया है। उन्हें उनकी खुशी कहीं से वापस मिलती नहीं दिखती, सब जगह धुंध भरा लगता है। सब कार्य मात्र खानापूरी से लगते हैं। 'व्यक्तिगत', 'चेहरे', 'धूप-छाँव' तथा 'ढलवान' कहानियाँ भी जीवन तथा उसके संबंधों की तटस्थता, औपचारिकता, व्यर्थताबोध एवं एक सूनापन को प्रदर्शित करती है। मानवीय मूल्यों का ह्रास परिलक्षित होता है।

'शरण्य की ओर' कहानी में नारी मुक्त होने के लिए छटपटा रही है। आधुनिक युग में नारी भी हर क्षेत्र में स्वतंत्र अस्तित्व की अपेक्षा चाहती है। सामाजिक प्रतिबन्धों से उसे चिढ़ है। शरण्य में पशु-पक्षी निर्भय घूमते हैं, किन्तु मानव, मानव के सामाजिक अंकुशों के कारण स्वतंत्र नहीं हैं।

'कगार पर' कहानी दो संस्कृतियों के अलगाववादी प्रवृत्ति को उजागर करती है। विष्णु हिन्दुस्तानी होकर अमेरिकी लड़की से विवाह तो कर लेता है, किन्तु इस विवाह से जहाँ एक ओर वह अपने परिवार से, स्वजनों से कट जाता है वहीं दूसरी ओर जिन्हें अपनाता है, वह भी उसे अपना नहीं समझते। इस तरह वह धोबी का कुत्ता घर का न घाट का रह जाता है। अन्त में पत्नी द्वारा तलाक मिलने पर इन शब्दों के साथ— 'बेशक बच्चे तुम्हारे भी हैं, तुम हर महिने उन्हें मिलने एक बार आ सकते हो। अगर चाहो तो।'[१] विष्णु आत्महत्या के लिए विवश हो जाता है। अपने लोगों की उपेक्षा व्यक्ति को सबसे अधिक कष्ट देती है। 'कैंसर' कहानी का मुख्य पात्र दामोदर रोग-

१. दरम्यान, पृ. १२४

शय्या पर अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए अपने परिवार, घर, घर के लोगों के बारे में सोच-सोच कर और अधिक दु:खी हो जाता है। बिना आत्मीयता के, अपनापन के अपने पुत्र का, पत्नी का, औपचारिकता दिखाना रोग से भी अधिक त्रासदीपूर्ण होता है।

'दुर्घटना' कहानी पर आधुनिक युग में मूल्यहीनता पर करारा व्यंग्य किया गया है। एक नवविवाहित व्यक्ति कार ड्राइव करने में पिता को कुचल देता है तथा निर्ममता से घटनास्थल पर छोड़कर चला आता है, दूसरा लड़का पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर जरा भी विचलित नहीं होता, वरन उनके रूपये पैसे की जानकारी करने हेतु उत्तेजित है। कार दुर्घटना से पिता की मृत्यु पर लेशमात्र भी शोक न करके पत्नी का यह कथन—'हमारी कार का तो मडगार्ड काफी पिचक भी गया, पर हमने सोचा कि छोड़ो भी। अब जरा-जरा-सी चीज का हर्जाना क्या भरवायें।'[१] पाषाणहृदय हो गई, विचार शून्य व्यक्तियों का घर है आभिजात्य वर्ग।

'आततायी' उच्चवर्गीय युवकों के संस्कारों, कार्यकलापों पर तीखा व्यंग्य है, जहाँ विवाह जैसा पवित्र संस्कार भी क्षणिक कामतृप्ति का साधन बन गया है। आज शादी करेगें, एक माह बाद तलाक हो जायेगा। नैतिक मूल्य चरित्र सब ह्रासोन्मुख है, इसीलिए युवक की शादी पर उसे अच्छी साड़ी देने से पूर्व सोचना पड़ रहा है—काहे उस पर छह-सात सौ की साड़ी वारें ? इन लोगों की शादियों का क्या ठिकाना कि कब तक टिके ? अब तो गंगाभवन वालों की अंग्रेज बहू आयी तो थी। माथुर साहब ने पाँच तोले के कंगन दिये।....वहाँ से गये छह महिने बाद चिट्ठी आ गई कि तलाक हो गया। गहना उसी के साथ गया तो गया।'[२]

'दरम्यान' इस संकलन की सशक्त कहानी है। मनोहर अमेरिका जाकर एक साधारण सी नौकरी करता है। जब-जब उसने अपना जीवन स्तर उठाने की सोची तभी शान्ता कुछ न कुछ बहाना कर पैसे की मांग करती है। अन्तत: अपने पति के साथ अमेरिका ही आ जाती है और जोंक की तरह चिपक जाती है। दिल्ली में उसकी दो बहनें हैं और माँ हैं। उनके विवाह की चिन्ता भी है और उसके बाद उनसे भी इसी तरह की आशंका है कि वह भी अपने-पतियों को लेकर यहीं चिपक न जाये—'तो अन्तत: व्याह कर शीला भी पति समेत यहाँ ही आ जायेगी और क्या पता कुछ महिनों या सालों बाद गया भी ? तो क्या वहाँ जो एक निपट अजनबी देश में तंगदस्ती में दिन काटता हुआ पैसा सेत रहा है, इसीलिए कि अन्तत: उसी पैसे से व्याही जाकर उसकी बहनें भी यहीं आ बसें और जोंक की बेशर्मी से किसी ऐसी-वैसी नौकरी में पति समेत चिपक कर खुद भी पैसा जोड़ना चालू कर दें ? कैसा अजीब कुचक्र है यह भी।'[३] पारिवारिक दायित्व भी जब सीमा से अधिक बोझ बन जाते हैं, जिनसे दबकर व्यक्ति की स्वतंत्र जिन्दगी का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। आजकल मध्यवर्गीय परिवारों में यही होता

१. दरम्यान, पृ. १६५
२. दरम्यान, पृ. १७२
३. दरम्यान, पृ. १३९

है। परिश्रम करने वाला व्यक्ति श्रम करते-करते थक जाता है, टूट जाता है, किन्तु कुछ लोग केवल मौज लेते रहते हैं। इसी तरह मनोहर की जिन्दगी गधे के समान दायित्व बोझ से दबने पर हो चुकी है। वह अपने घर वालों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है— 'तुमने सालों तक जोंक की तरह मेरा तो भूत-भविष्य सब चूस डाला है, अब एक निरपराध नासमझ लड़की पर चिपटना चाहते हो ? चले जाओ यहाँ से वरना वह एकदम शान्ता को लिख देगा कि भोला की शादी तय करने से उसे कोई वास्ता नहीं।'[१] किन्तु वह यह सब कह नहीं पाता। कहानी मनोहर के मकान-मालिक के माध्यम से विदेशी संस्कार एवं ममता रहित संबंधों का भी बड़ा स्वाभाविक चित्रण है— 'एक पिंजड़े में बन्द दो खूँखार जंगली जानवरों की तरह दोनों रात-दिन एक-दूसरे को नोचते-काटते रहते हैं।'[२]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में टूटते सम्बन्धों का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। इस टूटन के लिए हम स्वयं भी जिम्मेदार हैं और इस अर्थप्रधान युग में अपना सारा दायित्व दूसरे के कंधे में डालकर अपना तटस्थ बन जाना उचित भी नहीं है।

इसके बाद आपका दूसरा कहानी संग्रह 'एक नीच ट्रेजिडी' राजकमल प्रकाशन से १९८१ में प्रकाशित हुआ, जिसमें 'बर्फ', 'अँधरे से अँधरे तक', 'यानि कि एक बात थी', 'पितृछाया', 'कुत्ते की मौत', 'प्रतिशोध' और 'एक नीच ट्रेजिडी' आदि प्रमुख कहानियाँ हैं। इस संग्रह में भी परस्पर संबंधों की उदासीनता, अलगाववादी स्वर और युग जीवन के संत्रास का स्वर ही प्रमुख है। व्यक्ति 'स्व' पर केन्द्रित हो गया है 'पर' की किसी को लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। यही 'स्व' और 'पर' की दूरियाँ आज के समाज में बढ़ती जा रही हैं।

जगदीशचन्द्र पाण्डेय

'कहा था सुना था' पाण्डेय जी का प्रथम कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानियाँ मध्यवर्गीय जन-जीवन की अव्यवस्था, आर्थिक अभावमय जीवन, बेबसी तथा कल्पित आशंकाओं को लेकर लिखी गई है। चाहे वे शहरी क्षेत्र के हों या ग्रामाञ्चल की। 'यात्रा', 'पुरखिया' तथा 'कहा था सुना था' कहानियाँ कूर्माचल से संबंधित हैं। 'यात्रा' कहानी में गाँव से शहर आने की रोमाञ्चक अनुभूति के साथ-साथ सहेली का बाल-विवाह एवं विधवा होना आदि घटनाएँ चित्रित की गई हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यह व्यक्त किया है कि ग्रामों की सादगी भरी शान्तिपूर्ण जिन्दगी से शहरी आपाधापी की जिन्दगी अच्छी नहीं है। 'पुरखिया' में वृद्ध दम्पत्ति की आशा आकांक्षाओं में पुत्र तिलुवा के दूर रहने के साथ ही बेरोजगार रहना पानी फेर देता है। पुत्र की असफलता तथा निरीहता से वृद्ध माता-पिता के मन में उठती व्याकुलता, बेचैनी एवं टीस का बड़ी सजीवता से चित्रण किया है, कितनी बड़ी विडम्बना होती है

१. दरम्यान, मृणाल पाण्डेय, पृ. १४०
२. दरम्यान, मृणाल पाण्डेय, पृ. १३७

जब उच्च शिक्षा प्राप्त पुत्र चेक और जैक के अभाव में नवजवान बेटा घर में ही पड़ा रह जाता है। 'कहा था सुना था' कहानी में व्यक्तियों के परस्पर ईर्ष्या, द्वेष तथा बदले की भावना का चित्रण किया गया है। बिना सोचे समझे लोग कहीं-सुनी बातों में विश्वास मानकर आपस में संघर्ष पर उतारू हो जाते हैं। 'किस प्रकार से लोग बिना किसी बात की सच्चाई जाने भेड़ों की तरह एक के पीछे चलने लगते हैं। रमेश के पिता से बदले की भावना से प्रेरित होकर उदेसिंह रमेश की कहानी के पात्रों को गाँव वालों पर आरोपित कर उसे जाति-बिरादरी से बाहर करना चाहता था, जिससे सारे गाँव वाले एक होकर रमेश के पिता का विरोध करने लगे, किन्तु रमेश के दोस्त द्वारा वास्तविकता बताने पर सभी गाँव वाले कहीं-सुनी बात पर विश्वास करने के प्रायश्चित स्वरूप मौन हो जाते हैं। 'ठहरो मत बढ़ो आगे अब इसे। सही नही जाती—अन्दर से जसोदा की बुढ़िया गुर्रा सी उठी, कौन कहता है कि इसमें रमेश ने हमें बदनाम किया ? उसने तो····अब सब खामोश थे। जसोदा भी खामोश थी। सारा चारण खामोश था।'[१]

'फासला', 'अन्तर्द्वन्द्व', 'इवनिंग न्यूज', शोकेस' में खड़ी आकृतियाँ, पत्थर की प्रतिमा, कहानियाँ हमारी जिन्दगी के आस-पास की कहानियाँ हैं। जिन्हें हम पिछले कई वर्षों से लगातार जी रहे हैं या देख रहे हैं। एक आम आदमी जो घर से दफ्तर के बीच के फासले को लगातार नापता आ रहा है। एक आम आदमी का छटपटाहट और आक्रोश से गिरते हुए मानवमूल्यों के बीच देखना ही इन कहानियों की विशेषता रही है। एक ओर नौकरी पेशा आदमी की छटपटहाट है तो दूसरी ओर व्यवस्था के शिकंजे में फँसने की विवशता झलकती है। अन्तर्द्वन्द्व का 'मैं' इवनिंग न्यूज का रम्भू और उसकी असहाय बहन कौए और सियार का युद्ध जो अनाज के दाने के लिए तरसते हैं। बच्चे के लिए तड़पता साहनी (पत्थर की प्रतिमा) एवं आर्थिक तंगदस्ती तथा नौकरी में पिसते आम आदमी हैं। इंसान मशीनी पुर्जे की तरह भावशून्य हो गया है। 'हम अखबार के प्रेस में ऐसे पुर्जे हैं, जिनके ऊपर परेस चलता है। अखबार चलता है····पर हमें बदल कर दूसरे पुर्जे से भी काम चल सकता है।'[२] (इवनिंग न्यूज)

तुषिता की सारणी कुँवारेपन में ही पुत्रवती होकर विवाहोपरान्त उसे भिखारी के पास देखकर न अपना सकने के कारण छटपटाती रह जाती है। 'मौत' की कहानी में अनूप अपने प्रतिस्पर्धी हरीश को प्रथम न आने देने के लिए शतरंज आदि में उलझाए रखता है, किन्तु अन्त में अपनी करनी पर पश्चाताप करता है।

हमारे आसपास के आम आदमी की छटपटाहट, विवशता और विडम्बनाओं को बड़ी सहजता के साथ चित्रित ही नहीं किया अपितु मर्मस्पर्शी भी बना दिया है। साथ ही वर्तमान व्यवस्था पर करारे व्यंग्य के साथ पाठक को कुछ सोचने-समझने के लिए विवश भी कर देती हैं।

१. कहा था सुना था, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, पृ. १०६
२. कहा था सुना था, जगदीशचन्द्र पाण्डेय, पृ. ३३

श्री नित्यानन्द

साठोत्तरी कथा-साहित्य में नित्यानन्द का नाम एक विशेष अर्थ में स्मरण किया जाता है। रोजमर्रा की जिन्दगी का, स्वाभाविक घटनाओं का सजीव वर्णन आपके कथा साहित्य की विशेषता है। आपका प्रथम कहानी संग्रह 'आसपास जाते हुए' है, जिसमें जीवन की आपाधापी में फँसे व्यक्ति की छटपटाहट, उसकी अवश तनावग्रस्त स्थिति एवं असन्तोष की कहानियाँ हैं। मध्य एवं निम्नवर्गीय व्यक्ति का संघर्ष एवं उपेक्षापूर्ण प्रवृत्ति कथा को मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी बना देती है। 'जीने से पहले' कहानी में पारिवारिक दायित्वबोध, दफ्तर की खींचतान की राजनीति, व्यक्ति के अथक संघर्ष की कहानी है। 'दीदी' कहानी पारिवारिक संबंधों की कहानी है। बहिन अपने भाई के प्रति कितना स्नेह रखती है। किन्तु पति की कर्कशता से व्यक्त नहीं कर पाती, अपने ही अन्दर मसोसती रह जाती है। मध्यम परिवार की इस कहानी में जीती-जागती तस्वीर उभर कर आती है। एक तरफ पति की कर्कशता एवं जीवन का सम्बन्ध, दूसरी तरफ सहोदर के प्रति ममता का खिंचाव दीदी को न सुख से जीने ही देता है और न मरने। यही मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बना है। 'एक ही फ्लैट में' कहानी महानगरीय जीवन की कहानी है, जिसमें एक ही फ्लैट में रहने वाले एक परिवार के व्यक्तियों को क्षणभर भी मिलने का, आपस में बातचीत करने का अवकाश नहीं है। अर्थ-संचय में आधारभूत समस्याओं की पूर्ति हेतु पति-पत्नी किसी दिन खुलकर मिल भी नहीं सकते। कितनी बड़ी विडम्बना है। 'कैथरीना आती है, विलियम चला जाता है, विलियम आता है, कैथरीना चली जाती है। दोनों घड़ी भर के लिए मिलते हैं और विदा हो जाते हैं। रोज यों ही होता है।'[१] इतना ही नही मध्यनगरीय जीवन जीने के लिए, व्यक्ति को एक इंसान की तरह रहने के लिए सीमित आय को बढ़ाने के लिए किस तरह भटकना पड़ता है—'विलियम ओवरटाइम की रट लगाता है, कैथरीना पार्ट-टाइम जॉब ढूँढती है। विलियम बॉस को खुश रखता है। कैथरीना डाक्टर के पीछे घूमती है। डरोथी रात के अँधेरे में लोगों के द्वार टटोलती है।'[२] विवेच्य कहानी में महानगरीय जीवन की सारी विवशता के साथ अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश लोगों का यथार्थ एवं सजीव चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है।

'सपने' कहानी में धर्म की आड़ में निरीह लोगों को लूटने-खसोटने वाले पण्डे-पुजारियों का बड़ा सजीव चित्रण मिलता है। किस प्रकार ये धर्म के ठेकेदार भोले-भाले लोगों को लूटते हैं इसकी जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत की है। 'क्यों' कहानी के माध्यम से लेखक ने वर्तमान परिस्थितियों में लेखक की विवशता प्रदर्शित की है। किस प्रकार लेखक श्रम करता हुआ प्रकाशकों, सम्पादकों के शोषण का शिकार होता है और पैसे के बिना परिवार में भी अस्तित्वहीन हो जाता है।

---

१. आसपास जीते हुए, नित्यानन्द, पृ. ८

२. आसपास जीते हुए, नित्यानन्द, पृ. १०

'खण्डहरों के बीच' कहानी पीढ़ी अन्तराल की कहानी है। एक तरफ प्राचीन बुर्जुआ परम्पराएँ, मान्यताएँ, अंधविश्वास का घटाटोप और दूसरी तरफ शिक्षितवर्ग का आक्रोश, समस्त परम्पराओं को नकारने का आग्रह। इन दोनों के बीच पिसता वर्तमान पीढ़ी का नवयुवक। न एक को पूर्णतया अपना सकने की तथा दूसरे को पूर्णतया न त्याग पाने की विडम्बना से अभिशप्त जीवन जीने को विवश है। 'विवश' कहानी आज के शिक्षित बेरोजगार युवक के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है। काम की तलाश में घर से बाहर तो आ गया पर काम न मिलने पर घर जाने की हिम्मत नहीं बना पाता, क्योंकि उसे डर है उसके खाली हाथ बिना नौकरी घर पहुँचने पर सभी के सपने खण्डित हो जायेगें, माँ-बाप के, भाई-बहनों के और पत्नी-बच्चों के। कैसी विवशता है न जी पाने की न मर पाने की।

'लोग और लोग' में लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण किया है। 'कलई' के माध्यम से पारिवारिक संबंधों के बदलाव को उभारने का प्रयास किया गया है। 'मरणोन्मुख' कहानी में लेखक ने बड़ी कुशलता से शहरी जीवन और उसमें जीने की विवशता प्रदर्शित की है, साथ ही पुलिस की बर्बरता का चित्र भी उभारा है। एक मरणोन्मुख व्यक्ति को कोई इसलिए भी सहारा नहीं देना चाहता कि मरने या कुछ गम्भीर स्थिति आ जाने पर देश निकम्मी पुलिस सुराक ढूँढने में असमर्थ बचाने वाले व्यक्ति को ही तंग करेगी और एक अच्छी खासी मुसीबत खड़ी कर देगी। दूसरा समय भी किसी के पास इतना नहीं है कि वह सड़क पर गिरे किसी इंसान की सहायता कर सके। इन परिस्थितियों में व्यक्ति को संवेदनहीन बना दिया है। उसमें दया, माया, ममता सब समाप्त हो गई है।

नित्यानन्द की कहानियों की विशेषता है कि उनके छोटे-छोटे कथानक कहानी में नाटकीयता पैदा कर देते हैं। इन चुस्त, संक्षिप्त संवादों से कहानियाँ अत्यधिक हृदयस्पर्शी हो गई है। अनुभूति की तीव्रता कहानियों को सजीव एवं साकार बना देती है। प्रस्तुत कहानी संग्रह में आस्था, अनास्था, नये जीवनमूल्य, विघटन, विद्रोह आदि के साथ कथ्य एवं शिल्प में भी ताजगी एवं नवीनता है। मध्यवर्गीय जीवन का बड़ा सूक्ष्म एवं सजीव चित्र उभारने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। 'इनिड का त्यागपत्र', 'प्रतिध्वनि', 'मरणोन्मुख' कला और कथ्य दोनों ही दृष्टि से सशक्त कहानियाँ हैं।'[१]

नये कथाकारों की टीम में नित्यानन्द का नाम काफी चर्चा का विषय बन गया है। निःसन्देह ये उभरते कहानीकारों में से एक हैं।

पंकज विष्ट

विष्ट जी का प्रथम कहानी संग्रह 'अंधेरे से है' जिसमें असगर बजाहत की कहानियाँ भी संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में विष्ट जी की छह कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों में 'पन्द्रह जमा पच्चीस' कहानी बड़ी चर्चित रही, जिसमें एक ऐसे युवक की

१. राजेन्द्र धरमना, जनयुग, १३, १, १९७४

कहानी है जो क्षय रोगी होने पर भी अपने भाई के बच्चों का भरण-पोषण करने को विवश है। स्वयं पौष्टिक भोजन के नाम पर भैंसे का मीट खाता है, जो सस्ता मिल जाता है। जीवन की शून्यता एवं नीरसता तथा आर्थिक विपन्नता का बड़ा यथार्थ चित्रण किया गया है।

'कीचड़' कहानी में अर्थाभाव से दु:खी एक जवान औरत के जिस्म का व्यापार करने की विवशता को रेखांकित किया गया है। 'हिमदंश' कहानी पर्वतीय जीवन की समस्याओं को उजागर करती है। दूर पर्वतांचलों में यातायात की असुविधा एवं चिकित्सा आदि सुविधा न मिल पाने की विवशता है। अर्थाभाव से एक पिता अपने पुत्र को किस तरह मौत के मुँह में जाने को न बचा पाने की विवशता को सह रहा है। 'खोखला' कहानी आधुनिक जीवन में बनावटीपन पर करारा व्यंग्य करती है। यह एक प्रकार से अमूर्त कहानी है मात्र विचारों का द्वन्द्व प्रमुख रूप से उभारा गया है। 'अर्थी' और 'क्यों' कहानियाँ पारिवारिक संबंधों के विघटन को उजागर करती है। आज के संबंध मात्र औपचारिक रह गये हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ आर्थिक पक्ष को लेकर लिखी गई है। अधिकांश कहानियों के पात्र परिस्थितियों के आगे झुकते नजर आते हैं। इन विषम परिस्थितियों से जूझने का उनमें दम नहीं है। पंकज विष्ट नये युग के उभरते रचनाकारों में हैं।

कैलाश शाह

वर्तमान पीढ़ी के वैज्ञानिक कथाकारों में नये हस्ताक्षर के रूप में कैलाश शाह का नाम स्मरण किया जाता है। कुमाऊँ के कथाकारों में यमुनादत्त वैष्णव के बाद कैलाश शाह ने इस पक्ष में पहल की है। आपका कहानी संग्रह 'मृत्युञ्जयी' बहुचर्चित कहानी संग्रह है। जिसे कहानीकार प्रथम वैज्ञानिक कथा संग्रह की संज्ञा देता है—'मृत्युञ्जयी' हिन्दी में विज्ञान कथाओं का पहला संग्रह है। इस संग्रह में ९ कहानियाँ संकलित हैं।

'पूर्वजों की खोज' कहानी मानव जाति के पूर्वजों की खोज का काल्पनिक तथा वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। प्रोफेसर के नेतृत्व में रेनबो स्टेशन ८ से अनुसंधान, १०७ के माध्यम से पृथ्वी के पूर्वज, अंतरिक्ष के मानवों की खोज है। भारतीय एवं जापानी वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी के मानवों से अन्य मानव अधिक विकसित हैं।

कहानी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो वैज्ञानिक कहानी के लिए अपरिहार्य ही है। विभिन्न देशों के वैज्ञानिक का एक लक्ष्य पर एकत्रित होना, अन्तर्राष्ट्रीय एकता को प्रदर्शित करता है। अनुसंधान १०७ के बंद हो जाने, जनरेटरों का ठप पड़ जाना, चुम्बकीय चक्र तथा वैज्ञानिकों का पारदर्शी गुम्बज में बंद हो जाना आदि के द्वारा लेखक अतिविकसित मानवों का चित्र खींचता है। विज्ञान से नीरस विषय पर इस तरह की कौतूहलवर्धक, ज्ञानवर्धक कहानी लिखना लेखक की कुशाग्र बुद्धि का परिचय देता है।

'टोनी' कहानी के माध्यम से लेखक ने व्यस्ततम जीवन में नौकर-चाकर पर ही जीवन निर्भर हो गया है, किन्तु उनकी विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न ही है। अत: लेखक जीवन के हर कदम पर सहयोग हेतु यंत्रमानव 'टोनी' की कल्पना करता है। आज विकसित देशों में यह बात साकार देखने को भी मिल रही है। हर कल-कारखाने में यंत्र-मानव समयानुसार काम कर रहे हैं। इस कहानी के माध्यम से पाठक को विज्ञान के चमत्कारों का पता चल जाता है।

'असफल विश्वामित्र' में समुद्रतल में भी मानव जीवन होने की संभावना एवं वैज्ञानिक अनुसंधान से चित्रित कर लेखक ने समुद्र के गर्भ की जानकारी दी है, जो बहुत दिलचस्प है। 'सर्वोच्च मानव' ऐसे मनुष्यों की कहानी है, जो सांसारिक राग-द्वेष से मुक्त, वैज्ञानिक कार्यों में अत्यधिक कुशल हैं। ये सर्वोच्च मानव पृथ्वी के अलावा अन्य दूसरे ग्रहों में हैं, जिनका पता पृथ्वी के मानव अभी तक नहीं कर पाये हैं। लेखक पृथ्वी के बच्चों को सांसारिक राग-द्वेष से दूर रखकर वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा विकसित मानव में परिणत करना चाहता है। वैज्ञानिक प्रयोग इस अर्थ में करना चाहता है— 'मस्तिष्क के उन हिस्सों को कार्यरत करना है, जिनका उपयोग आदमी नहीं करता।'[१] इनका उपयोग विकसित मनुष्य कर रहा है। लेखक का दावा है कि—'वह दिन दूर नही जब हमारी बस्ती की आबादी काफी बढ़ जायेगी और हमारे युवक अपनी सामूहिक मस्तिष्क तरंग शक्ति से संसार के नवजात शिशुओं को विवेकी बनाकर सर्वोच्च मानवों से धरती को भर देगें।'[२] प्रस्तुत कहानी में रोमांचक वैज्ञानिक चमत्कारों का उद्घाटन किया है जो भविष्य में साकार हो सकते हैं यथा—अदृश्य दीवार के भीतर बस्ती को छिपाना, पहाड़ की आणविक संरचना को ढीला करना, समय का क्रम बदल देना, मानवों की कल्पना को समझ लेना आदि।

'मशीनों का मसीहा' अंतरिक्ष यात्री निथाम्बू के द्वारा ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों में धर्म प्रचार का वर्णन है। सूर्य सौरमण्डल से बाहर निकलते समय सोबारा-५ चुम्बकीय लपेट में आ जाता है फिर ध्यान मग्न हो जाता है। नये ग्रह में निथाम्बू को एक बौने आदमी की सहायता मिलती है, जिससे वह एक नये शहर का निर्माण कर लेता है। बौने के साथ अध्यात्म वार्ता करने के बाद वह बौना (मशीनी मानव) उसकी गर्दन तोड़कर आत्मा को अपने अन्दर प्रवेश करा लेता है। इस प्रकार कम्प्यूटरों में आत्मा का प्रवेश कराकर एक अजीब कौतूहलपूर्ण कहानी का निर्माण किया है।

'जहाज के पंछी' कहानी में लेखक ने मानव को एक लम्बे अन्तराल तक सुप्तावस्था में रखना, अंतरिक्ष यानों के लिए ठोस ईंधन आदि से संबंधित अनेक तथ्यों को उजागर करता है। 'अधूरी कहानी' में अतीत को साक्षात् देखने की ललक है।

'मृत्युञ्जयी' कहानी ब्रह्माण्ड में नये ग्रहों की खोज तथा वहाँ के मानवों की मृत्यु

---

१. मृत्युञ्जयी, कैलाश शाह, पृ. ६५
२. मृत्युञ्जयी, कैलाश शाह, पृ. ७४

पर विजय की कहानी है। वहाँ की 'कम्प्यूटराइज्ड' सभ्यता का बड़ी रोचकता से वर्णन किया है। उड़नतश्तरियों की कहानी बड़ी दिलचस्प है। वैज्ञानिक युग में नये से नया पा लेने की जिज्ञासा स्वाभाविक भी है। यह जिज्ञासा अतिविकसित मानव बनने के लिए निरन्तर चलती रहती है। इसी जिज्ञासा के परिणामस्वरूप विज्ञान हमें आगे के पथ पर ले चलता है। यही आगे बढ़ने को लेखक भी आशान्वित है और पाठक भी।

देवेन्द्र मेवाड़ी

आठवें दशक के उभरते कथाकारों में देवेन्द्र मेवाड़ी सर्वप्रथम गिने जाते हैं। अब तक दो दर्जन से ऊपर कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'बलि का बकरा'[१], 'दाड़िम के फूल'[२], 'खड़कदा'[३], 'मानुख जोन'[४], 'अलगाव'[५], 'क्रोचवध'[६] आदि कहानियाँ पर्वताञ्चल से संबंधित हैं। इन कहानियों के माध्यम से लेखक ने कूर्माचल का जीवन्त चित्र खींचा है।

'बलि का बकरा' गाँव के उस सरल किसान की कहानी है जो धर्मभीरूता के कारण अपने द्वारा पाले गये बकरे को 'गोल्ल देवता' के मन्दिर में चढ़ा देता है, किन्तु उसके बाद भी उसकी पत्नी बच नहीं पाती, विश्वास खण्डित होने लगता है।' 'दाड़िम के फूल' परित्यक्त पति-पत्नी के मन में उठते भावों के वेग की कहानी है साथ ही इसमें कूर्माचल के रीति-रिवाजों, संस्कारों का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'क्रौञ्च वध' लोकगाथा पर आधारित कहानी है, जिसे बालकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है धुधुत (पक्षीविशेष) तभी बोलता है जब उसका प्रेमी बिछुड़ जाता है एवं धुधुती बोलती नहीं वरन् रोती है। पक्षी के स्वभाव को मानव स्वभाव से जोड़ने का प्रयास किया है। 'खड़कदा' मानव जीवन के निर्बल वर्ग की समस्या को उकेरती है और 'मानुख जोन' में मानव जीवन की निस्सारता का वर्णन है। 'देशान्तर'[७] तथा 'अलगाव' कहानी में आज के युग में स्वतंत्र विचारों के पति-पत्नियों की परस्पर बढ़ती दूरी को व्यक्त किया है, चाहे वह शहरी परिवेश हो या देहाती। सामंजस्य के अभाव में वे दूरियाँ खाई बनती जा रही हैं, जिन्हें पाटना असंभव होता जा रहा है।

देवेन्द्र मेवाड़ी ने आंचलिक ही नहीं वैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं। 'प्रेतलीला' इनकी चर्चित वैज्ञानिक कहानी है। ग्रामवासियों का यह अन्धविश्वास है कि पीपल के पेड़ में भूत-लीला होती है वहाँ भूत का अड्डा है, कथाकार वैज्ञानिक प्रमाण देकर पुष्टि

१. माध्यम, अप्रैल, १९६६
२. माध्यम, मई, १९६५
३. त्रिपथगा
४. कहानी, इलाहाबाद
५. कहानी, इलाहाबाद
६. कहानी, इलाहाबाद
७. उत्कर्ष, कहानी विशेषांक, १९६७

करता है कि रात्रि में पेड़ कार्बन-डाई-आक्साईड गैस छोड़ता है। इस कारण आग बुझ जाती है और दम घुटने लगता है। चौपाये'[१], 'एक बाप की मौत'[२], 'दायरों से घिरा एक व्यक्ति'[३] ''फुटपाथों पर''[४] आदि कहानियों में मानसिक द्वन्द्व के साथ स्त्री-पुरूषों के अवैध संबंधों की कहानियाँ हैं।

इस प्रकार नये दशक के उभरते हुए हर विषय पर लेखनी चलाने वाले नये कथाकारों में देवेन्द्र मेवाड़ी का नाम लिया जाने लगा है।

शितांशु भारद्वाज

शितांशु भारद्वाज ने लगभग दो दर्जन कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से प्रमुख कहानियाँ—'रूपसी'[५], 'जुवेदा'[६], 'सती सालणी'[७], 'कोयला'[८], 'धुवाँ घुटन का'[९] और 'मृत्युजयी'[१०] है।

'रूपसी' कहानी एक रूपगर्विता नारी की कहानी है, जो अपने रूप को सजाने-सँवारने में लीन रहती है, किन्तु विवाहोपरान्त पति के मित्र की कुदृष्टि का कारण अपना रूप समझ कर रूप के प्रति मोह का बंधन ढीला पड़ जाता है। तब उसे यथार्थ का बोध होता है। बाहरी चमक-दमक ही मूल्यवान् नहीं है, जबकि आन्तरिक हृदय भी स्वच्छ न हो।

'जुवेदा' कहानी की नायिका एक वेश्या के जीवन की कहानी है, जिसे एक पुरूष अंगीकार कर लेता है, उसके बाद उसका सम्पूर्ण जीवन बदल जाता है। पति की मृत्यु के बाद वह कठिन संघर्ष कर पुत्र को पढ़ाती है, किन्तु घृणित पेशा नहीं अपनाती। नारी विवशतावश ही वेश्या जीवन व्यतीत करती है। 'सती सालणी' वीर सेनापति कीर्तिसिंह की सहधर्मिणी की वीरता से संबंधित है। 'कोयला' कहानी सादा जीवन उच्च विचार की पोषक है। 'धुवाँ घुटन का' कहानी उन छात्र-छात्राओं की कहानी है जो दिग्भ्रमित हो जाते हैं। किशोरावस्था में प्रेम के बीज अंकुरित कर फिर उन्हें फलता-फूलता न देखकर कुण्ठित मन की कथा-व्यथा है। ऐसी स्थिति के आने पर नशा आदि कर चिन्तामुक्त होने का प्रयास करते हैं। अन्ततः भयानक रोग के चपेट में आकर सब कुछ खो देते हैं। इसलिए आवश्यक है भावुकता को विवेक के अंकुश में बाँधा जाय। 'मृत्युजयी' के दादा अपने पुत्र की मृत्यु से विचलित नहीं होते अपितु पोते के लिए जिजीविषा बटोरते हैं। अन्ततः हारते नहीं, वरन् संघर्ष करते हैं। कहानी बड़ी प्रेरणादायक एवं मर्मस्पर्शी है।

१-३. उत्कर्ष, १९६७
४. त्रिपथगा
५. दैनिक हिन्दुस्तान, ३,१२,१९७२
६. दैनिक हिन्दुस्तान, १४,१०,१९७३
७. साप्ताहिक सैनिक समाचार, १,२,७६
८. योजना, २२,७,१९७६
९. इतवारी पत्रिका, जयपुर, ५,६,१९७७
१०. नवभारत टाइम्स, ३१,१२,१९७८

इन कहानीकारों के अतिरिक्त कूर्माचल के उभरते कथाकारों में गोपाल उपाध्याय, प्रदीप पंत, देवेश ठाकुर, बलवन्त सिंह मनराल, देवेन्द्र उपाध्याय, अकुलेष परिहार, दिनेश पाठक, प्रेमसिंह नेगी, लक्ष्मीदत्त विष्ट, रमेश शाह आदि कहानीकारों की कहानियाँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

❖

कूर्माचल के साहित्यकारों का साठोत्तर हिन्दी साहित्य (काव्य)

कविवर सुमित्रानन्द पन्त

लोकायतन

साठोत्तर हिन्दी साहित्य में 'लोकायतन' महाकाव्य सर्वाधिक विशाल तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ बाह्य परिवेश तथा अन्तश्चैतन्य दो खण्डों में विभाजित है। विस्तृत सांस्कृतिक तथा विश्व पटल पर आधारित लोकायतन की कथावस्तु अत्यन्त विरल है। इसमें पात्र सीमित हैं तथा गाँधी के अतिरिक्त सभी काल्पनिक हैं।

प्रारंभ में कथा के प्रमुख पात्र राम, सीता, लक्ष्मण, रावण आदि के साथ युग तथा सभ्यता-संस्कृति का चित्रण प्रतीक रूप में किया गया है। शान्ति जोशी के शब्दों में—'रामराज्य कृषि युग की सभ्यता का प्रतीक था। सीता का निर्वासन उस काल की नारी-मर्यादा का, रावण अहंवृत्ति का, लंका दुर्मति गढ़ का तथा धनुषभंग उत्तर-दक्षिण, वैष्णव-शैव संस्कृति के समन्वय का सूचक था'[१]। जन-जन की दुःखगाथा से व्यथित मन बाल्मीकि को सम्बोधित करती हुई सीता कहती है कि—

नवयुग के बाल्मीकि निकल बॉबी से।
गढ़े छंद में चिन्मूल्यों का आशय।[२]

पूर्व स्मृति के बाद बाह्य परिवेश है, जिसमें जीवन द्वार, संस्कृति द्वार तथा मध्य बिन्दु हैं। जीवन द्वार में युग भू, ग्राम शिविर तथा मुक्तियज्ञ समाहित है। युग भू की वास्तविक विपन्नता का वर्णन सुन्दरपुर ग्राम राज्य के वर्णन में किया गया है। यह सुन्दरपुरग्राम ह्रासोन्मुख ग्रामों का प्रतीक है। वंशी को हरि द्वारा सूचित किया जाता है कि शिरी ने माता-पिता की इच्छा के विरूद्ध भी सेवा-व्रत लिया है। वंशी इसका समर्थन करता है। इसी सर्ग में कवि गाँधी जी के प्रयत्नों का चित्रण करते हुए स्वाधीनता का महत्त्व प्रदर्शित करता है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास करता है कि स्वाधीनता संग्राम में पुरुषों ने ही नहीं, स्त्रियों ने भी पूर्ण सहयोग दिया है।

ग्राम शिविर की स्थापना स्वतंत्रता संग्राम के फलस्वरूप होती है। इसमें सिरी कला शिविर का संचालन करती है। हरि की इस युगपरिवर्तनकारी योजना से अनपढ़, संकीर्ण मनोवृत्ति के ग्रामवासी कुण्ठा, राग, द्वेष और संदेहों से भर उठते हैं, इनका प्रमुख राजकवि माधव है। माधवगुरु राज्य के दंभ एवं चाटुकारी प्रवृत्ति के कारण उन्हें हरि का परोपकारी मिशन रास नहीं आता। फलत: वह इसका प्रतिरोध करते हैं।

१. जीवन और साहित्य, द्वितीय खण्ड, सुमित्रानन्दन पंत, पृ. ५१६
२. लोकायतन, प्रथम-संस्करण, पृ. २२

'मुक्तियज्ञ' में गाँधी दर्शन का विवेचन है। नमक आन्दोलन, सत्याग्रह एवं डाँडी-यात्रा से मुक्ति का आन्दोलन तेजी पकड़ता गया। द्वितीय विश्वयुद्ध एवं उसके बाद भारत की आजादी। स्वतंत्रता के बाद भारत का विभाजन एवं गाँधी जी की मृत्यु तक का वर्णन मुक्ति-यज्ञ में हुआ है। विश्व एकता की बात अधूरी ही रह जाती है—

राष्ट्र मुक्ति रे केवल प्रथम चरण भर
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुंफित
स्वर्ग-पीठ करनी भू मन पर स्थापित। (लोकायतन, प्र.सं.पृ. ११५)

संस्कृति द्वार में आत्मदान, संक्रमण तथा मधुस्पर्श है। आत्मदान के अन्तर्गत गाँधी जी की मृत्यु को आत्मदान की संज्ञा दी गई है। गाँधी जी की हत्या को लेखक निम्न प्रकार से स्पष्ट करता है—

इस रक्त-काण्ड के पीछे
थे मध्य युगों के खण्डहर
उच्छिष्ट जीर्ण संस्कृति के
स्वार्थों के कट्टर पत्थर।[१]

'संक्रमण में भारतीय संस्कृति सभ्यता का संक्रमण काल है, जबकि संस्कृति, सभ्यता, मानवता का पतन एवं नैतिक विघटन है। इस ह्रास एवं विघटन को वंशी, हरि एवं सिरी अपने सांस्कृतिक संस्थान के माध्यम से दूर करना चाहते हैं। 'मधुस्पर्श' में मानव प्रेम को सबसे अधिक महत्त्व का बतलाया गया है।

मध्य-बिन्दु ज्ञान के अन्तर्गत धरती में स्वर्ग की स्थापना का स्तुत्य विचार प्रस्तुत हुआ है। इसे विभिन्न मत-मतान्तरों, विचारधाराओं एवं अध्यात्म के द्वारा व्यक्त किया गया है। पंत जी जगत को सत्य मानकर इसे आनन्दमय बनाने का आह्वान करते हैं—

ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असंशय
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय।[२]

यही नहीं, कवि की मान्यता है कि नर के रूप में स्वयं नारायण ही अवतरित होकर संसार में व्याप्त हैं—

प्रभु सृष्टि न रचते, स्वयं सृष्टि बन जाते
निज से ही निज में अभिव्यक्ति वह पाते।[३]

द्वितीय खण्ड में अन्तश्चैतन्य चेतना के विकास पर प्रकाश डालता है। इस खण्ड में तीन अध्याय हैं—कलाद्वार, ज्योतिद्वार एवं उत्तर-स्वप्न।

कलाद्वार का संबंध संस्थान, द्वन्द्व व विज्ञान से हैं। हरि द्वारा स्थापित कलापक्ष

१. लोकायतन, प्रथम-संस्करण, पृ. ११२
२. लोकायतन, प्रथम-संस्करण, पृ. २३१
३. लोकायतन, प्रथम-संस्करण, पृ. २३३

का विस्तार तथा सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना, जिसमें सभी सदस्य निष्ठापूर्वक वृहद् सामाजिक आदर्श की स्थापना कर कर्म में लीन हैं। संस्थान के सेवा कार्य से सरकार का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट होता है। संस्थान के उत्कर्ष से राजकवि माधव को ईर्ष्या हो गई। परिणामस्वरूप स्वयं भी एक आश्रम की स्थापना कर लेते हैं। परस्पर संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

विज्ञान सर्ग में वंशी द्वारा विभिन्न देशों का भ्रमण कर वहाँ की भौतिक उन्नति का विवरण है। संसार के भौतिक चकाचौंध से वंशी ऊबकर भारत लौट आता है तथा अरविन्द दर्शन कर उनसे अत्यधिक प्रभावित है।

'ज्योतिद्वार' में तीन खण्ड हैं—अंतर्विकास, अंतर्विरोध एवं उत्क्रान्ति। विश्व भ्रमण के बाद वंशी अंतर्विकास, नैतिक संयम आदि पर विचार करता है। स्त्री-पुरुष के संबंधों की व्याख्या कवि नारियों के विभिन्न समाज का वर्णन कर करता है। माधो पंडित वंशी की हत्या करने का प्रयास करते हैं किन्तु हरि हर बार अपने ऊपर लेकर, प्राण देकर भी वंशी को बचा लेता है। इस घटना से दु:खी होकर अन्तत: माधो गुरु भी प्राण त्याग देता है।

उत्क्रान्ति में मानवीय मूल्यों की स्थापना की गई है। वंशी नवयुग की चेतना का प्रतीक बन जाता है। सुन्दरपुरकला ग्राम अणु युद्ध से ध्वस्त होकर पुन: संस्कृति पीठ के रूप में स्थापित होता है।

उत्तर-स्वप्न सांस्कृतिक संचरण एवं नई गति को जन्म देता है। इस सर्ग में सारे पात्रों का चित्रण सम्पन्न हो जाता है। केवल मैरी और अतुल ही आगे बढ़ पाते हैं। अन्त में संयुक्ता (मैरी) हिमालय के मंचन में लोकायतन नामक नया संस्कृति संस्थान स्थापित करती है। वह कला केन्द्र का ही नवीन रूप है। अणु युद्ध से बचे हुए लोग समस्त विश्व से एक स्थान पर आकर नवीन मानवता का निर्माण करने में व्यस्त हो जाते हैं। अतुल प्रकृति की अनुपम छटा देखकर निमग्न हो जाता है। अन्त में समाधिस्थ हो जाता है। संयुक्ता भी ईश्वरप्रेम में विलीन होकर विश्व चेतना के रूप में विकसित होती है।

लोकायतन नवीन चेतना को लेकर निर्मित हुआ है। इस महाकाव्य में प्राचीन सभ्यता से लेकर वर्तमान नैतिक उत्थान-पतन एवं संभावित भावी विश्वचेतना का विकसित रूप लोकायतन में विद्यमान है। इतना विशाल कलेवर होते हुए भी इसका कथानक संक्षिप्त है। कवि ने प्रौढ़ावस्था में अपनी सारी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए ही कथानक निर्मित किया है। इसमें चेतना का एक अविरल बहता स्रोत है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में—'लोकायतन परम्परागत रसों की लीक से हटकर सर्वथा नये रसों की योजना करता है, जिसे डॉ. नगेन्द्र ने 'महारस या आनन्द-रस'[१] कहा है। कवि मानव के उच्चतम जीवन की कामना एवं कल्पना करता है—

विधि लक्ष्य न आत्मिक शुद्धि मात्र यम संयम
मन के तंग भू-प्रांगण का ही हरना तम

१. आस्था के चरण, डॉ. नगेन्द्र, पृ. ५४१

जग-जीवन में ही संभव ईश्वर दर्शन
सुन्दर हो सुन्दरता हो जन भू प्रांगण ।[१]

लोकायतन की शिल्प रचना के विषय में—'लोकायतन की उदात्तता के बारे में उनके कथ्य और भाव के अनुरूप संदेह नहीं किया जा सकता है। लोकायतन में शैली का परम उदात्त रूप 'पूर्व स्मृति', 'ज्योति-द्वार' तथा 'उत्तर-स्वप्न' में देखा जा सकता है, जहाँ कवि कल्पना की अद्भुत समृद्धि एवं ऐश्वर्य के कारण बिम्ब योजना की कलात्मकता पाठक को मुग्ध किये रहती है।'[२]

स्वर्ग सभ्यता लोट धरा रज पर
जीवन सर्जन में होती कुसुमित
स्वप्न शिराओं में रस चैतन्य की
ज्योति रुधिर गात प्रहर्ष झंकृत ।। [३]

स्वर्ग की स्थापना भूतल पर करना ही कवि का लक्ष्य है। महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों का प्रयोग इसमें बड़ी कुशलता से हुआ है। प्रारंभ में वन्दना, सर्गबद्धता, सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन, यात्रा के चित्रण में नगरों, पर्वतों तथा समुद्र प्रकृति आदि का मनोहारी चित्रण इसे एक सफल महाकाव्य की श्रेणी में रख देता है।

यही नहीं 'लोकायतन' में विभिन्न दर्शनों, विचारों का बड़ा सूक्ष्म विवेचन मिलता है। ब्रह्म, आत्मा, जगत आदि की सुन्दर व्याख्या की गई है। कवि 'मानव तुम सबसे सुन्दर' की बात यहाँ भी दुहराता है—

नर नारी से बढ़ और कौन स्वर्गिक धन
उन्नयनशील निज जिनका अंतश्चेतन ।।[४]

लोकायतन में सबसे अधिक गाँधीदर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है—

घृणा, घृणा से नहीं मरेगी
बल प्रयोग पशु साधन निर्दय
हिंसा पर निर्मित भू-संस्कृति
मानवीय होगी न मुझे भय ।[५]

शिक्षा के प्रति भी कवि का स्पष्ट दृष्टिकोण है—

वही शिक्षा जो आँखें खोल
मनुज सीमाओं का दे ज्ञान
कहाँ अब मानव जीवन वृत्त
सभ्यता संस्कृति का अभियान ।[६]

---

१. लोकायतन, पृ. ५४३
२. सुमित्रानन्दन पंत का नव-चेतना काव्य, प्रेमनारायण जोशी, पृ. १६३
३. लोकायतन, पृ. २२५
४. लोकायतन पृ. २२५
५. लोकायतन पृ. ८९
६. लोकायतन पृ. २७५

नारी के प्रति पंत का प्रारंभ से ही उदार एवं श्रद्धापूर्ण विचार रहा है—

देख रूप वैभव कहता कवि मन
नारी तुम भू शोभा हो अक्षय
भू पर अभय फिरेगी जब शोभा
स्वर्ग उतर आयेगा तब निश्चय ।[१]

सत्यकाम

इस प्रबंध काव्य की सम्पूर्ण कथा ग्यारह खण्डों में विभाजित है । प्रथम तीन खण्ड जिज्ञासा, जाबाल तथा दीक्षा सत्यकाम के जीवन तथा उनकी मन:स्थितियों को व्यंजित करते हैं । मन की निर्जन, प्राण, ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्मलीन, आत्मब्रह्म और जीवब्रह्म सत्यकाम की चेतना के उत्कर्ष के सोपान हैं । अन्तिम खण्ड गुरुकुल और मातृशक्ति, आध्यात्मिक उन्नति के क्रियान्वयन पर आधारित है । जिज्ञासा खण्ड में बौद्धिक पृष्ठभूमि तथा बरगद वृक्ष के नीचे जाबाल की ध्यानमग्न मुद्रा है । जाबाल का जन्म एक रहस्य बना रहता है, कवि उषा और ब्रह्म की चर्चा करता है । इससे ऋषि-महर्षियों की काम-तृष्णा भी झलकती है । दीक्षा खण्ड में सत्यकाम द्वारा सत्य के अन्वेषण की तीव्र झलक के साथ पशु एवं मानवीय सृष्टि के वैषम्य का चित्रण मिलता है ।

'मन का निर्जन' में भी सत्यकाम को मानसिक निर्जनता की स्थिति से गुजरना पड़ता है—

ऐसे ही भावोद्वेलन से अभिप्रेरित हो
सओल्लास में मग्न खोजने लगा सत्य-मुख ।[२]

'प्राण-ब्रह्म' में प्रकाश की ओर अग्रसर होने का वर्णन है । वृषभ की अवतारणा करवा कर काम तथा धर्म के भावों का संतुलन स्थापित किया गया है । साक्षात्कार में मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के सिद्धान्तों को व्याख्यायित किया गया है । सत्यकाम सद्य:स्नाता के दर्शन से नारी के प्रति आकर्षित होता है । ब्रह्माग्नि खण्ड में रक्ताभ सूर्य, परकटा गिद्ध, शृंगालों का वेदन आदि शुभ-अशुभ लक्षणों का वर्णन किया गया है । आत्मब्रह्म खण्ड में सत्यकाम का संघर्षरत कर्मठ व्यक्तित्व लोकमंगल के लिए कटिबद्ध दिखाई पड़ता है । जीव ब्रह्म में काम की अजेयता तथा अहिंसा का महत्त्व बतलाया गया है । गुरुकुल में जाकर वह ज्ञान प्राप्त करता है । गुरु उसे ऋचा के बारे में बताते हैं कि वह योगमाया थी । अन्त में हिमालय में चला जाता है । अन्तिम उपखण्ड मातृशक्ति में गौतम ऋषि सत्यकाम तथा ऋचा के समान ज्वाला इच्छामृत्यु को प्राप्त होती है ।

विवेच्य प्रबंध-काव्य गीतात्मक है । सम्पूर्ण काव्य अतुकान्त तथा लयबद्ध है । कथास्रोत छांदोग्य उपनिषद् है—'सत्यकाम में साधना का राज्य तथा काव्य का सत्य एकाकार हो गए हैं । कथाभाग का कृश पंजर मुख्यत: छांदोग्य उपनिषद् से लिया गया है, जिसके अनुसार सत्यकाम निर्जन में वृष, अग्नि, हंस और भृगु चार देवों से दीक्षा लेता है । शेष कल्पना तथा अनुभूतिप्रसूत है ।'[३]

१. लोकायतन पृ. ४५१
२. सत्यकाम, पृ. ६८
३. सत्यकाम, विज्ञप्ति

सत्यकाम का कथानक अत्यन्त क्षीण है। सम्पूर्ण घटना घर, गुरुकुल तथा वन में सम्पन्न होती है। सम्पूर्ण घटनाक्रम बीस वर्षों में घटित होता है। कथानक में गतिशीलता हेतु नाटकीयता परिलक्षित होती है। काल्पनिक पुट भी बड़ा सुन्दर दिया गया है।

डॉ. हरिवंशराय बच्चन के शब्दों में—'सत्यकाम वैचारिक दृष्टि से भारतीय भाषाओं में एक प्रौढ़ कृति है। पंत जी की इस कृति को मैं उनकी प्रतिनिधि रचना मानता हूँ। अरविन्द दर्शन की पृष्ठभूमि पर पंत जी ने मौलिक विचार सृष्टि किये। प्रकृति के उपादानों से मानव मन के अज्ञात बोलों के संस्कारों और प्रवृत्तियों का जैसा स्वच्छ और ज्ञानस्फूर्त विश्लेषण इस कृति में हुआ है, वह हिन्दी की किसी आधुनिक कृति में उस स्वर पर उपलब्ध नहीं है.....।'[१]

स्वयं पंत जी भी इसे अपनी अनूठी कृति मानते हैं—'मुझे सत्यकाम लिखने से पहले छह वर्षों तक उपनिषदों का अध्ययन तथा उन पर आधारित साहित्य की छानबीन करनी पड़ी थी। अंतर्बोध की दृष्टि से उस राम युग को मन की आँखों में मूर्त कर सकने के पश्चात् मुझे भविष्य के लिए उसकी अनिवार्य उपयोगिता प्रतीत हुई।'[२] पंत जी ने वर्ण व्यवस्थाहीन समाज और काम-क्षुधाग्रस्त मानव के सहज मुक्ति आन्दोलन की प्रक्रिया के लिए छान्दोग्य की उपकथाओं के कथ्य को संयोजित कर सत्यकाम की रचना की। अतः सत्यकाम आरण्यक पृष्ठभूमि पर आधारित आधुनिक बोध काव्य कहा जाएगा।

ऋचा के साथ ऋषि का परिचय मात्र मानसिक भ्रम है। कवि ने बड़े कौशल से इसका उद्घाटन कराया है—

कौन ऋचा ? कैसी ? वह कहाँ मिली थी तुमको ?
ऋषि ने प्रश्न किया परिहास भरे स्वर में फिर।
वत्स योग माया थी वह, आश्चर्य मत करो।

परा प्रकृति की माया, योग-साधना में पथ निर्देशन करने को—

समय-समय पर वही गुह्यपथ से गोचर हो
सूक्ष्म रूप धर प्रकट हुई थी मन के भीतर।[३]

विवाह संस्था की सामाजिक अनिवार्यता बताते हुए कवि कहता है—

पुत्र, त्रेता तुम दोनों मिलकर जीवन रथ के
युगल चक्र से साथ रहे नित करुणामय प्रभु
सफल बनाएँगे संयुक्त तुम्हारा जीवन।
श्रद्धा, निष्ठा, तप की त्रेता मूर्त प्रतिमा है

---

१. पंत का सत्यकाम, डॉ. विष्णुदत्त राकेश, भूमिका,
२. पंत का सत्यकाम, डॉ. विष्णुदत्त राकेश, दो शब्द
३. सत्यकाम, पृ. १९७-१९८

तुमने जो उपलब्ध किया इसमें पाओगे।[१]

गौतम ऋषि भी इसका समर्थन निम्न रूप से करते हैं—

जीवन हो सफल तुम्हारा।
सृष्टि चक्र में पड़कर अब तुम
पूर्ण रूप से ब्रह्म सत्य चरितार्थ कर सको।[२]

सत्यकाम का सम्पूर्ण कथानक में द्वन्द्व चलता रहता है। द्वन्द्व का शमन कथा की परिसमाप्ति पर ही होता है। प्रारंभ में मात्र द्वन्द्व का उल्लेख है, किन्तु साक्षात्कार, आत्मब्रह्म तथा जीवन खण्ड में व्यापक रूप से मानसिक समायोजन परिलक्षित होता है जब ऋचा के संभोग के आमन्त्रण को सत्यकाम ठुकरा देता है। किन्तु ऋचा के माँ बनने के समाचार से वह विचलित हो जाता है। परकीय नारी मानकर उसे प्रेमिका के रूप में भी स्वीकार नहीं कर पाता और अन्त में गुरुकुल लौटकर माँ ज्वाला के द्वारा छांटी गई सुन्दरी ऋचा से विवाह कर लेता है। कवि इसे ही अपना अभीष्ट मानता है— 'सत्यकाम की यह उपलब्धि विवाह संस्था की सर्वमान्य स्वीकृति के रूप में ही कवि को अभीष्ट है, माँ के द्वारा कर में कर दिये जाने की प्रक्रिया का सामाजिक मूल्य है और यह पाणिग्रहण की वह परिपाटी है, जिसमें दो परिस्थितियों और इच्छाशक्तियों के द्वन्द्व का शमन होता है। शमन के इस बिन्दु पर पहुँचकर भावोत्तेजन की धारा निम्नगामी हो जाती है। 'और यही' ज्वाला की इच्छा-मृत्यु मानो जीवन एकांकी के इस भाव मंच पर पर्दा गिरा देती है।'[३]

सरल ऋचा को अपने पास बुला कर माँ ने
सत्यकाम के कर में उसका मृदु कर देकर
आशीर्वाद दिया दोनों को गद्गद स्वर में
बोली 'मेरी' अन्तिम साध पूर्ण होती अब।[४]

सत्यकाम में दाम्पत्य जीवन की सार्थकता का प्रतिपादन किया गया है। विवाह सन्तानोत्पत्ति एवं आनन्दधर्मिता दोनों के लिए आवश्यक है। सत्यकाम इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वह नारी के त्याग से अत्यधिक प्रभावित होता है, जो संतति-पालन में किसी भी सामाजिक उपेक्षा और ग्रंथि से त्रस्त होकर कर्मच्युत नहीं होती।

मातृ प्रकृति की ममता से पोषित होते जन
कोई ग्रन्थि नहीं पड़ती माता के मन में।
कोई संकट नहीं मनुज के पथ में यदि वह
मनुज प्रेम के अमर सूत्र में बंधा रहे नित।
तुमने पुत्र स्वयं जो निज अनुभव से भोगा

---

१. सत्यकाम, पृ. २२२

२. सत्यकाम, पृ. २२३

३. पंत का सत्यकाम, डॉ. विष्णुदत्त 'राकेश', पृ. ५२

४. सत्यकाम, पृ. २२२

धरा सत्य में उसे प्रतिष्ठित करो प्राण-प्रण ।[१]

सत्यकाम में जीवन के प्रति आस्था, विश्वास और उसकी सार्थकता पर विशेष बल दिया गया है । सत्यकाम अवैध सन्तान होने के कारण द्वन्द्व और अतृप्ति में हीन भावना के कारण अनिवार्य जीवन विरक्ति का अनुभव अधिक कर सकता था, वरन् वह निराश नहीं होता । मानव स्वभावजनित ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से ग्रस्त होता हुआ भी संघर्षशील रहकर मानव चेतना से ऊर्ध्वगमन कर विश्व प्रकृति में लीन दिखाई देता है—

मातृ प्रकृति में देखो मुझको मातृ अंक में,
जो मेरी चेतना सृष्टि जीवन में प्रसरित ।
ब्रह्म सत्य निज पूर्ण रूप में, माँ कहती थी
जाओ माँ के पास पिता भी वही तुम्हारी ।।[२]

सत्यकाम में दार्शनिक अभिव्यक्ति में विभिन्न दर्शनों-अरविन्द दर्शन, फ्रायड का मनोविज्ञान, वैदिक दर्शन के मिले-जुले प्रभाव देखने को मिलते हैं । 'निःसन्देह सत्यकाम में वैदिक औपनिषदिक सत्य धरती के अंचल को पाकर मूर्त हो उठे हैं । दार्शनिक सत्य की ऐसी मर्मस्पर्शी अनुभूति पंत की अपनी थाती है, जो उनके काव्य के माध्यम से मानवता को साथ बनने को मचल उठती है, अथवा सत्यकाम में उन्होंने औपनिवेशिक पृष्ठभूमि की कसौटी में ही आधुनिक जीवनमूल्यों को आँकने का प्रयास किया है ।'[३]

किरणवीणा

प्रस्तुत संग्रह में विभिन्न विषयों से संबंधित कविताएँ संकलित हैं । कवि मानव जीवन के नवोन्मेष की आकांक्षा रखता है । कवि को आध्यात्मिक जगत पर अधिक विश्वास है ।

सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश में न देखता जग को ।
भौतिक लोचन दीपित करते वस्तु जगत के मग को ।।

कवि की आस्था बाह्य चमक-दमक में नहीं है—

मानव भीतर से विकसित हो बर्हिजगत पर पा जय ।[४]

विवेच्य संग्रह में प्राकृतिक उपादानों, जीवन मूल्यों आदि से संबंधित कविताओं के अलावा आत्म चैतन्य होने की कविताओं का आधिक्य है । कवि वैज्ञानिक विकास के पथ पर रचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करता है—

अन्तर के प्रकाश से संचालित हो
वैज्ञानिक श्रम को दे
सृजन दिशा विकास की ।[५]

---

१. सत्यकाम, पृ. २३४
२. सत्यकाम, पृ. २०७
३. सुमित्रानन्दन पन्तः जीवन और साहित्य, शान्ति जोशी, द्वितीय भाग पृ. ६११
४. सुमित्रानन्दन ग्रन्थावली, भाग-४ पृ. १७
५. सुमित्रानन्दन ग्रन्थावली, भाग-४ पृ. ८३

इस संग्रह की प्रमुख कविता 'पुरुषोत्तम राम' के माध्यम कवि ने स्वानुभूत सुख-दुःखों का भी बखान करता चलता है। कवि को भौतिक अर्थप्रधान युग से जीवन-सारल्य की कोई आशा नजर नहीं आती। इस युग को कवि ह्रास, नैतिक पतन का युग मानता है। भौतिकता शान्ति नहीं प्रदान कर सकती है—

महाह्रास संकट छाया जन भू-जीवन में
मरणोन्मुख मानव अतीत पद स्खलित हो रहा।
कल जो भौतिकता विकास-गति की द्योतक थी
आज प्रगति अवरोधक वह दुर्जेय काल गति
भौतिक वैज्ञानिक विकास के संग मानव की
आध्यात्मिक उन्नति न हो सकी।[१]

कवि हमेशा समसामयिक परिस्थितियों पर चिन्तन करता है। वर्तमान अदूरदर्शी शिक्षा नीति पर विचार व्यक्त करते हुए उसमें आमूलचूल परिवर्तन की अपेक्षा रखता है—

शिक्षा ने पथभ्रष्ट कर दिया नवयुवकों को,
कुण्ठा का दिग् अन्धकार ही उनके सम्मुख।
क्या भविष्य है उनका? थोथी शिक्षा के वे
बलि पशु बनकर मनुष्यत्व को आज खो रहे।

इतना ही नहीं; कवि शिक्षा-नीति पर आगे और विचार व्यक्त करते हुए कहता है—

जो शिक्षा धरती की जीवन वास्तवता से
संबंधित ही न हो, न जन भू की संस्कृति से
जिसे प्राप्त कर युवक न अपना घर सँजो सके
और न देश सेवा कर पाये–किसे लाभ।[२]

वर्तमान पीढ़ी में समाज दिशाहीन हो रहा है। कवि इस पर चिन्तित है। उसे यह धुन्धता साहित्य में भी परिलक्षित होने लगी है—

जीवन की गतिविधि विघटित होती जाती अब
मुक्त नहीं साहित्य जगत भी ह्रास-धुन्ध से।[३]

आलोच्य संग्रह में वर्तमान युग की विसंगतियों, जीवनमूल्यों के ह्रास पर एवं विघटन, दिशाहीनता पर आक्रोश व्यक्त करने के साथ ही कवि इन समस्याओं से उबर कर आत्म उत्थान के लिए प्रेरित करता है। पाश्चात्य अन्धानुकरण कर भौतिकता के पीछे भागकर नैतिकता खोने, संस्कृति-सभ्यता के नष्ट होने की टीस कवि को है,

---

१. सुमित्रानन्दन ग्रन्थावली, भाग-४ पृ. १००
२. सुमित्रानन्दन ग्रन्थावली, भाग-४ पृ. ११०
३. सुमित्रानन्दन ग्रन्थावली, भाग-४ पृ. ११२

इसलिए अपनी कविताओं के माध्यम से इस ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है।

पौ फटने से पहले

इस संग्रह के विषय में—'इन रचनाओं में आज के ह्रासयुगीन भावात्मक संघर्ष का गहन अंधकार तथा काल की संवेदना का साधारण प्रकाश संगृहीत है। साथ ही राग चेतना के सामाजिक विकास की सूक्ष्म रूप-रेखा भी अन्तर्निहित है।'[१] वर्तमान युग में निहित स्वार्थ में व्यस्त व्यक्ति किस प्रकार अहंकारी बन बैठा है, देखिए—

हाय दर्द से चूर चूर
अब मानव मन,
विद्या मद, धन मद
कुलवंश मद,
सभी उसे मोहान्ध किये
उन्मत्त उठा फन।
भूल गया वह मानवीय गुण
निष्ठा आस्था सहृदयता
तप त्याग समर्पण।[२]

आज का व्यक्ति हर क्षण संशय में, द्वन्द में जी रहा है। इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

छाया बहिरन्तर संघर्षण
आन्दोलित जग का उपचेतन
बहिर्भ्रान्त युग मानव जीवन
भय संशय से जन मन उन्मन।[३]

आज व्यक्ति की व्यथा उसके नीरस प्रेमरहित जीवन से अधिक हो गई है। प्रेम का महत्त्व व्यक्तित्व के विकास हेतु अत्यधिक है। विना प्रेम के व्यक्ति अपूर्णता महसूस करता है। यह प्रेम किसी भी रूप में, किसी से भी प्रस्फुटित हो सकता है—

मुझे अधूरा कम ही भाता
हृदय पूर्णता के प्रति जाता
तुम्हें प्यार करता मैं मन से
हृदय सुखी तुम बड़ी बहन से।[४]

कवि एक आदर्श प्रेम की स्थापना करता है। पवित्र प्रेम हृदय और आँखों तक

---

१. पौ फटने से पहले, विज्ञापन (पंत)
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-४, पृ. २९०
३. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-४, पृ. ३२०
४. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-४, पृ. ३२४

ही सीमित होता है। उसमें वासना की दुर्गन्ध नहीं, अपितु हृदय की पवित्रता की सुगन्ध होती है, इसे ही कवि चाहता है—

क्षुधा काम को
मानवीय गौरव दो भू पर
रज कर्दम में
कृमि से डूबे रहें न स्त्री नर।[१]

अतीत के व्यामोह में न पड़ा रहकर हम वर्तमान में जीयें, कवि इसी बात को बार-बार कहता है। वर्तमान की नींव में ही भविष्य का महल खड़ा होगा तथा आज का वर्तमान ही कल का सुन्दर अतीत भी बन जायेगा—

मृत अतीत से
क्रान्त दृष्टिमन
तुम विद्रोह करो क्षण-प्रतिक्षण।[२]

पतझर (एक भाव-क्रान्ति)

संग्रह के विषय में स्वयं कवि के विचार—'प्रस्तुत संग्रह में मेरी अनेक प्रकार की नवीनतम रचनाएँ संगृहीत हैं। अधिकतर रचनाएँ भाव-प्रधान तथा युगबोध से प्रेरित हैं, कुछ विचार-प्रधान भी हैं, जिनमें मैंने आज के आत्मकुंठित युग में लाउड थिंकिंग करना आवश्यक समझा है। संग्रह का नाम 'पतझर : एक भाव-क्रान्ति' भी युग-संघर्ष का ही द्योतक है। भावक्रान्ति मेरी दृष्टि में क्रान्तियों की क्रान्ति है।'[३]

भावप्रधान कविताओं में युगसंघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। विद्रोही यौवन की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है—

मचल रहा भू-यौवन।
मचल रहे नव तरुण,
मचलती तरुणी, कुंठित जीवन।
××××××××××××××××××××××
उग्र क्रान्ति चाहिए आज
जीवन का हो रूपांतर
यौवन स्वप्नों से हो मुकुलित
मन का मुक्त दिगंतर।
×××××××××××××××××××
रूढ़ि रीतियों में पथराया
बंदी जन भू-जीवन,
धरा-धैर्य का बाँध टूटता
आने को युग-प्लावन।[४]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-४, पृ. ३५९
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-४, पृ. ३६८
३. पतझर : एक भाव-क्रान्ति, पंत, विज्ञापन
४. पतझर : एक भाव-क्रान्ति, पंत, पृ. १५६-१५७

कवि मानव को ही जीवन का प्रतिनिधि मानते हुए उसके कल्याण की कामना करता है—

जीवन का प्रतिनिधि हो
मनु सुत मानव,
श्रेय इसी में–
ऐसा मेरा अनुभव ।

साथ ही पुरानी रूढ़िग्रस्त, अंधविश्वासी परम्पराओं को तोड़कर नये युगधर्म के अनुसार जीवन मूल्य स्थापित कर उनमें चलने का आह्वान करता है—

अन्तर्मूल्य मनुज का
तब होगा परिवर्तित
नव्य संगठित जीवन स्थितियाँ
हो जब विकसित
नव संस्कृति प्रासाद गढ़ेगी
दिग् भू विस्तृत
उपयोगी वैचित्र्य
जगत् का रख संरक्षित ।[१]

कवि ने कहीं-कहीं पर पीढ़ी के अन्तराल की कविताऐं भी लिखी हैं। प्राचीन जंग लगी परम्पराओं को ध्वस्त कर नवीनता का स्वागत किया है।

वे जिस अर्थहीन जीवन के
मृत प्रवाह को ढोते आए हैं, अब उसको
तरुणों पर भी लाद रहे, निज-सुख-सुविधा हित ।
कौन शासकों के अतिरिक्त सुखी भारत में ?
युग युग की जड़ रूढ़ि रीतियों से संचालित
रिक्त विचारों, आदर्शों की धूल झोंकते
वे भावी स्वप्नों से अपलक नवयुवकों की
दीप्त चमत्कृत आँखों में । उनको छलते हैं
बाह्य प्रदर्शन से सत्ता के । जो भीतर से
कब की खोखली हो चुकी मनुज-सत्य से ।[२]

इतिहासभूमि कविता में कवि मानसिक दासता से जकड़े अंग्रेजी के पक्षपोषकों पर व्यंग्य करते हुए कहता है—

छाई अब आकाश बेलि अंग्रेजी भाषा
प्राण शक्ति भू-जीवी तरु की जिससे शोषित,
मुंड-भक्त अब देश, धरा चेतना पराजित

---

१. पतझर : एक भाव क्रान्ति, पंत, पृ. १८८-१८९
२. पतझर : एक भाव क्रान्ति, पंत, पृ. ९६-९७

देह अन्न से, मन विदेश की मति से पोषित।
कहाँ रहा अस्तित्व हमारा ? परान्न सेवी
पर-विचार जीवी, निज भू-आत्मा से वंचित
परधन पोषित, आत्म-तेज विश्वास-हीन जन
पंख मोर के लगा, स्वयं को कहते शिक्षित।[१]

प्रस्तुत संग्रह युगबोध के प्रति कविवर पंत के विचारों से ओत-प्रोत है। पंत जी के युगबोध की पकड़ के संबंध में शिवदान सिंह चौहान के विचार—'पंत जी सचमुच व्यावहारिक और दुनियादार आदमी नहीं हैं, लेकिन युग के विचार संघर्षों के प्रति जितने जागरूक हैं, उतने कम साहित्यकार हैं। युगचिन्तन उनके कोमल स्वभाव का सहज गुण है।'[२]

गीत हंस

यह पंत जी के विभिन्न गीतों का संग्रह है। अधिकांश कविताएँ गेय हैं। ये कविताएं कथ्य एवं शिल्प दोनों में अपना पृथक् अस्तित्व रखती हैं। मानवीय चेतना का विकास, संस्कृति भावबोध, जागरण आदि नवीन रूप में कवि देखना चाहता है। कवि का व्यापक दृष्टिकोण सर्वत्र झलकता है, कहीं संकीर्णता नहीं है—

टूट रही तन मन की सीमा
आत्म मुक्त फिरता समग्र
भू पर संदेह संस्कृत नर।[३]

मानव के नव-जागरण हेतु कवि कहता है—

बन हृदय-चेतना
मातृ हृदय में
विश्व-सृजन की
जगे वेदना।[४]

कवि जीवन में सत्य एवं प्रेम की अनिवार्यता के साथ जीवन की पूर्णता के लिए हृदय चेतना के विकास की अनिवार्यता स्वीकार करता है—

मैं न ध्वंस करने वाला हूँ
था मानव जीवन ही खण्डित
उसे पूर्ण, पूर्णतम बनाने
आया हूँ कर नव संयोजित।[५]

---

१. पतझर : एक भाव-क्रान्ति, पंत, १८०-८१
२. सुमित्रानन्दन पंत : स्मृति चित्र, पृ. १४९
३. गीत हंस, प्रथम-संस्करण, पृ. १०
४. गीत हंस, प्रथम-संस्करण, पृ. १२
५. गीत हंस, प्रथम-संस्करण, पृ. ४६

अपनी कविताओं के माध्यम से कवि ने बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा अन्तर्मन की सुन्दरता को महत्त्वपूर्ण माना है, कवि की मान्यता है कि हमें बाह्य बनावटीपन से दूर रहकर अपने अन्तर्जगत् को विकसित करना चाहिए।

अन्दर का सौन्दर्य
बाह्य जड़ सुन्दरता से
कहीं महत्तर
ईश्वरमुख का दर्पण।[१]

'गीत हंस' की कविताओं के बारे में शान्ति जोशी के विचार 'सत्य को मानव के निकट लाना, देश-काल का अतिक्रमण करने वाले को धरती पर प्रतिष्ठित करना, ताकि धरती अपनी हरीतिमा में मुस्करा उठे, उसकी फसल मानव जाति को आनन्द-प्लावित कर दे'। यही गीत-हंस की उपलब्धि है। गीत-हंस के कवि के लिए सापेक्ष और निरपेक्ष एक ही है।[२]

विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप आज व्यक्ति चाँद पर भी कदम रख चुका है। इसे पंत मानव जाति की एक ऐतिहासिक घटना बताते हुए कहते हैं—

दिग् विजयी मनुसुत निश्चय
यह महद् ऐतिहासिक क्षण,
भू-विरोध हो शान्त
निकट आएँ सब देशों के जन।[३]

गीत-हंस मानवीय जीवन मूल्यों का काव्य है, इसमें मानवतावादी स्वर मुखर हुआ है। कवि मानव कल्याण एवं सुख समृद्धि को देखना चाहता है, इसलिए वह बाह्य प्रदर्शन से दूर रहकर अन्दर के सौन्दर्य को पहचानने का आग्रह भी करता है। वैज्ञानिक उन्नति को रचनात्मक कार्यों में लगाकर मानव कल्याण की ओर उन्मुख करना चाहता है। विश्व को प्रेम-सूत्र में अनुस्यूत देखने की महत् लालसा व्यक्त हुई है।

शंख-ध्वनि

यही पंतजी की अतुकान्त कविताओं का छन्द-मुक्त तथा छन्दबद्ध संकलन है। मानवतावादी दृष्टिकोण प्रमुख रूप से उभरा है। स्वयं कवि के शब्दों में—'इन रचनाओं में मुख्यत: नये जागरण के स्वरों को तथा विश्व-जीवन के भीतर उदय हो रहे नये मनुष्यत्व की रूपरेखाओं को अभिव्यक्ति मिली है। कुछ रचनाओं में वर्तमान युग जीवन की विसंगतियों के प्रति मेरे मन की प्रतिक्रिया तथा कुछ में मेरे व्यक्तिगत सुख-दु:ख की अनुगूंजों को भी वाणी मिली है।'[४]

---

१. गीत हंस, प्रथम-संस्करण, पृ. ४७
२. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन ओर साहित्य, द्वितीय-खण्ड पृ. ६०८-६०९
३. गीत-हंस, पृ. २३८
४. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. ७

प्रकृति पर मनुष्य की अनधिकार चेष्टा को कवि का कोमल मन स्वीकार नहीं कर पाता—

मुझे नहीं अच्छा लगता कि चाँद में जाकर
चन्द्र-पटल को खोद कर भू-मानव नीचे
शशि के चाँदी के दर्पण-सा हँसमुख आनन
घायल कर उसका कोमल लोह नखों से ।[१]

वर्तमान समय में व्यक्ति बुद्धिवादी हो गया है। भावना, सरसता समाप्त होती जा रही है। कवि इसे मानव के लिए हितकर नहीं स्वीकार करता है—

कम्प्यूटर ही कम्प्यूटर अब रह जायेंगे
कल के जड़ जग में विस्थापित कर मनुष्य को ।[२]

पश्चिम का अन्धानुकरण देश के विनाश का कारण होगा। कवि को इस तरह अपनी संस्कृति-सभ्यता मिटाकर पश्चिमीकरण की चमक में खोना कष्टप्रद प्रतीत हो रहा है—

औंधे मुँह गिर पश्चिम के जगमग प्रवाह में
अंध अनुकरण करते नव-शिक्षित पग-पग पर
भूल गई भू अपना अंतर आलोकित मुख
जीवन स्थितियाँ होती जाती प्रतिदिन दुस्तर ।[३]

कवि संकेत करता है 'हम कौन थे क्या हो गये हैं'। इसलिए बार-बार वह अपने आत्म-विकास, अध्यात्म-उन्नति पर बल देता है, हम बाह्य दिखावे से नहीं; वरन् आत्मज्ञान से, आत्मिक विकास से ही आगे बढ़ सकते हैं—

मुझे नहीं सन्देह
सहायक होगी यह भौतिक विकास में
ज्ञात मुझे
अन्तर्मुख आत्मा के प्रकाश में ।[४]

वस्तुतः पंत प्रेम, प्रकृति के कवि हैं। उनका प्रेम व्यापक प्रेम है; जो मानव ही नहीं वरन् चर-चराचर तक व्याप्त है। कवि उसी प्रेम का सर्वत्र फैलाव देखना चाहता है—

मैं भी संयुक्त निखिल जग से
अज्ञात हर्ष से आन्दोलित
गाते मेरे शोणित के कल
क्षमा के स्पर्शों से प्रेरित ।[५]

---

१. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. १४
२. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. १६
३. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. ३७
४. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. ७५
५. शंख ध्वनि, भूमिका, पृ. १०६

नि:सन्देह वह हिन्दी साहित्य जगत को कवि की अनुपम भेंट हैं।

शशि की तरी

प्रस्तुत संग्रह बाला अनुपमा के जीवन से संबंधित सौन्दर्य एवं वात्सल्य के मार्मिक वर्णन से भरा हुआ है। एक तीन-चार साल की बाला को कवि ने इलाहाबाद के अनाथालय में देखा था, उसे देखते ही कवि के मन में वात्सल्य का सागर हिलोरे भरने लगा—

चन्द्र-किरण से उतर तुम्हारी
स्मित लेखा उर करती पुलकित
जीवन क्षण तारों से रहते
तुम्हें देखने को अपलक नित
मैं भावों की धूप छाँह में
तुम्हें सतत् करता परिधानिक
मधुर कल्पना दुहिते, प्रिय स्मृति
उर तंत्री को रखती झंकृत।[१]

अल्प वय में ही अनुपमा एनिस्थीनिया का शिकार हो जाती है और कवि को एकाकी छोड़कर एक अवसाद, एक टीस मन में छोड़ जाती है—

सिमट गया जग तुम में
जो पहले लगता था विस्तृत
समा गई जबसे तुम उर में
और न कुछ करता आकर्षित
मूक व्यथा का बादल अहरह
झरता चुपके उर के भीतर
स्मृति की छाया-सा छाया जो
भूल न पाता तुमको अन्तर।[२]

कवि कटु यथार्थ का उद्‌घाटन भी करता है, जिसमें अवैध संतानों की समस्या भी उभरती है, जिससे अबोध अनुपमा जैसे बच्चे जीवन के प्रारंभ में भयानक रोग से ग्रस्त होकर दम तोड़ देते हैं—

क्वारी माँ ने औषधि भी
खाई हो घातक
भ्रूण-पात कर
जग से गुह्य छुपाने पातक

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. ७६
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १०४

इसलिए तुम रुग्ण
जन्म से ही निरन्तर
तुम्हें सताया घुटने की
हड्डी ने बढ़कर ।[१]

अनुपमा की रिक्तता को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—'अनुपमा के इस प्रकार अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से चले जाने के कारण मेरे हृदय को जो आघात लगा, उसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना असंभव है। अनुपमा ने मेरे हृदय में सदैव के लिए अपना स्थान बना लिया है। उसने अदृश्य होकर मेरे स्वप्नों के संसार का ही रूपान्तर कर दिया है। उसी की स्नेह मधुर स्मृति में मेरे मन ने ये गीत गुनगुनाये हैं।'[२]

'सरोज स्मृति' की तरह वह भी एक शोकसंतप्त हृदय के उद्गारों की अविरल धारा के सदृश प्रवहमान है। कवि को अनुपमा के अप्रत्याशित चले जाने से एक विरक्ति सी हो गई है, वह सर्वत्र उसे खोजता है—

गीतों के स्मृति पंख खोलकर
उड़ असीम एकाकीपन में
मैं गगनों के पार गमन कर
तुम्हें खोजता दिशि में, क्षण में ।[३]

समाधिता

इस संग्रह में कवि धरती पर स्वर्ग की कामना करता है। इस मनुष्य रूप को ईश्वर का स्वरूप मानते हुए कवि पृथ्वी को उसका आश्रयस्थल मानता है—

ईश्वर को ये मानवीय
तन मन प्राणों का जीवन
धरती पर ही सहज सँजोया
अमर स्वर्ग का आश्रम ।[४]

इतना ही नहीं कवि स्पष्ट करता है—

डरो न तुम निर्भय मन बिचरो
जगती के आँगन में
नहीं जानते ? ईश्वर के
प्रतिनिधि हो तुम जीवन में ।[५]

कवि भारतीय संस्कृति, सभ्यता को सबसे श्रेष्ठ एवं उच्चतर बताते हुए उसका अनुसरण करने को प्रेरित करता है—

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थमाला, भाग-७ पृ. १२६
२. शशि की तरी, पंत, परिचय
३. शशि की तरी, पंत, परिचय
४. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १३९
५. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १४८

अन्तर का जागरण सत्य ही
मेरे मन का भारत
वह न विश्व का अंग
अंग उसका ही विश्व असंशय
भारत भू पर बोध प्राप्त कर
बने लोग मृत्युंजय ।[१]

भारतीय संस्कृति ही विश्व को अमरता का सन्देश दे सकती है। गीता का आदर्श ही हमें अजर-अमर होने का, मृत्युंजय होने का संदेश देता है। आत्मतत्त्व के ज्ञान से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। प्राणी समझ लेता है—केवल शरीर नष्ट होता है, आत्मा अजर-अमर है। शरीर का मरना फिर कष्टदायक नहीं रह जाता है। पुराने वस्त्र बदल कर नये पहनने जैसा लगने लगता है। नये सिरे से, नयी आशाओं के साथ समस्त दिग्मण्डल में फैल जाने की कामना करता है—

पग-पग पर सुलगे नई क्रान्ति
फैले नव जीवन की ज्वाला ।[२]

विज्ञान के विकास का रचनात्मक दृष्टि से प्रयोग न करने से सारी सृष्टि ध्वंस हो जायेगी, इसी बात को कवि इन शब्दों में प्रकट करता है—

दृष्टिहीन विज्ञान
भले भू बहार दीपित
अंधकार से मानव
तन मन आत्मा पीड़ित ।[३]

विना आत्म ज्ञान के व्यक्ति अधूरा ही रहता है। बाह्य चमत्कार मात्र चमक-दमक पैदा कर सकते हैं, प्राणों में स्पन्दन नहीं। कवि उसी आत्म तत्त्व को विकसित करने को कहता है। शरीर प्राणों के विना कोई अर्थ नहीं रखता, उसी प्रकार विना आत्म-विकास के बाह्य भौतिक चमक-दमक का है।

भीतर का मन ही
वास्तव में मन है सच्चा
उसे हमें आश्वस्त प्रथम
करना होता है ।
××××××××××××××××××
बाहर का मन
वस्तु जगत का मन है केवल

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १४८
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १६२
३. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. १७१

बाहर के जीवन में उलझा
उसका ज्ञान अधूरा ही होता।[१]

आस्था

आधुनिक आस्थाविहीन युग में, कवि आस्थावान बनने का सन्देश देता है। आज एक व्यक्ति का दूसरे पर, एक देश का दूसरे देश पर कहीं विश्वास-आस्था का नामो-निशान भी नहीं है, इसी कारण संदेह का जहर फैलता जा रहा है—

जड़ता के साधक
अस्त्रों-शस्त्रों से सज्जित
हृदयहीन जो
अहं बुद्धि के मद से प्रेरित।[२]

आज व्यक्ति अपने दम्भ, अहंकार के कारण दूसरे को नीचा दिखाने एवं अपने को सर्वशक्तिमान मानने के मद में चूर है। वैषम्य ही वैषम्य है। कहीं अतीत को ही सब कुछ मानने का भ्रम है और कहीं पुरानी सारी परम्पराओं को नकारने का दम्भ अशान्ति का कारण बना हुआ है। समन्वय का कहीं कोई प्रश्न नहीं—

भावना का शून्य
अहंकार पर्वत-सा भारी
राष्ट्रों में बहु बँटे देश
प्रतिस्पर्धा पीड़ित
एक ओर दिग्भ्रान्त मनुज
फिर से अतीत के
आदर्शों की कोरी
केंचुल को पकड़े है।
और दूसरी ओर, आधुनिकता का विषधर
दाँत गड़ाये मनुष्यत्व के, जीवित शव पर।[३]

विभिन्न महापुरुषों का दृष्टान्त देकर कवि आत्मजागृति का सन्देश दे रहा है—

योग क्षेम के लिए प्रयत्न विविध है जग में
जो प्रभु को स्वीकार अन्त में होता वह ही।
सृष्टि यंत्र के विविध चक्र पर हम सब गतिमय
निर्भय है विधि का विधान, इसमें का संशय।[४]

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. २०२
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. २२०
३. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. २२५
४. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. २३८

और अन्त में गीता के सन्देश की तरह सब कुछ छोड़कर प्रभु के चरणों में आस्थावान होकर सब भार उन्हीं को सौंपने का आह्वान भी है—

थामे रहो बाँह
सित आस्था की, ईश्वर पर
निर्भय रहो पूर्णतः
समझ सकेंगे तुमको
केवल प्रभु ही ।[१]

गीत-अगीत

प्रस्तुत संग्रह के विषय में स्वयं पंत जी के विचार—'प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ आज के संक्रान्ति युग की परिस्थितियों से प्रेरित होकर लिखी गई हैं। इनके भावबोध में एक प्रकार से युगवैषम्य को अभिव्यक्ति मिली है।'[२] संकलन में ६० कवितायें गीत तुकान्त एवं ३१ कविताएँ अतुकान्त अगीत शीर्षक में लिखी गई हैं।

कवि इन कविताओं में भी समसामयिक समस्याओं को उजागर करता है। उत्तरदायित्वहीन माँ-बाप को फटकारते हुए कवि कहता है—

बच्चों को मत जन्म दान दो ।
नरक भूमि यह, इसमें पावन
मातृकर्म को तुम न स्थान दो ।[३]

और जनसंख्या-विस्फोट पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

धिक् अति प्रजनन, धिक् अति चिन्तन
धिक् अति धन, जो करता शोषण
अति अतिशय वर्णित, मानव को
जीवन में चाहिए सन्तुलन ।[४]

नारी के शील मर्यादाहीन बिगड़ते स्वरूप पर कवि चिन्तित है—

शोभा लरी-सी जो स्त्री
चलती थी भू पर
आज सर्प-सी छोड़ रही
फूत्कार भयंकर ।
××××××××××××××××××
घर-आँगन की शोभा
गरिमा थी जो नारी

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७ पृ. ३०२
२. गीत-अगीत, दो शब्द, पंत
३. गीत-अगीत, पंत, पृ. २८
४. गीत-अगीत, पंत, पृ. ३०

अब काया की छाया भर
वह विधि की मारी ।[१]

मानव के पतनोन्मुख होने पर कवि अत्यधिक दुःखी होता है, वह उसे उच्च शिखर पर देखने की लालसा में है—

क्या बन सकता था वह
क्या हो गया आज है
अपने दुष्कृत्यों पर
उसे न तनिक लाज है ।[२]

मानव परिस्थितिवश ऐसा बन गया है—

स्थितियों से कवलित मानव
बन गया दुष्ट है,
ऐसा नहीं कि ईश्वर
उसके लिए स्पष्ट है ।[३]

गाँधीदर्शन सर्वत्र छलकता पड़ रहा है—

दण्ड दुष्ट को दो, पर
उसके प्रति हो सहृदय
उसे मनुष्य बनाना है
फिर हमको निश्चय ।
आदर दो उसको
उसके भीतर के ईश्वर
भटक गए थे उसके पग
बाहर ही बाहर ।[४]

कवि ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं को शोषण का प्रतीक मानता है । सच्ची मानवता तो गाँवों की झोपड़ी में, सरलता में है—

दानवता के रे निवास
ये सौध उच्चतर
मानवता रहती विनम्र
कुटियों के भीतर ।[५]

'अगीत' खण्ड में आगजनी, गरीबी, दहेज, डाकू-समस्या, लूटपाट आदि से संत्रस्त भारत का चित्र खींचा है । ये कवितायें कवि की यथार्थपरक कविताएँ हैं—

---

१. गीत-अगीत, पंत, पृ. ३८
२. गीत-अगीत, पंत, पृ. ७३
३. गीत-अगीत, पंत, पृ. ७४
४. गीत-अगीत, पंत, पृ. ७५
५. गीत-अगीत, पंत, पृ. ७५

कहाँ गया चरित्र ?
साथी या मित्र
स्वार्थरत संसार,
भ्रष्टाचार, दुराचार ।
काला धन, काला मन,
काला जीवन, यौवन ।
××××××××××××××××××
यहाँ कविता मत खोजो
यथार्थ से जुझो ।[१]

निम्न पंक्तियों में कवि ने मध्यवर्गीय जीवन का बड़ा सजीव चित्रण किया है—

आया आयी
हरजाई ।
न महरी आई
बहरी ।
बरतन गन्दे पड़े
रसोई में छिलके सड़े
अब चलो
बरतन मलो
झाड़ू लगाओ
चूल्हा सुलगाओ ।
××××××××××××××××××
मध्य वर्ग का जीवन
सर्वत्र विघटन ही विघटन
दाम आसमान में चढ़ रहे
हम नरक की ओर बढ़ रहे ।[२]

संक्रान्ति

सन् १९७७ में हुए चुनावों में विस्मयकारी परिवर्तन से प्रभावित होकर कवि ने संक्रान्ति का प्रणयन किया। इस घटना के सम्बन्ध में कवि के विचार—'इसे मैं अपने देश की नहीं, विश्व इतिहास की एक महान् घटना मानता हूँ। इतने विशाल पैमाने में इतनी बड़ी शान्तिपूर्ण, रक्तहीन, क्रान्ति एवं राज्य-परिवर्तन का संभव होना मन को आश्चर्यचकित कर देता है।'[३]

शान्ति । शान्ति ।
यह रक्तहीन जन क्रान्ति

१. गीत-अगीत, पंत, पृ. १५२
२. गीत-अगीत, पंत, पृ. १७४
३. संक्रान्ति, पंत, दो शब्द,

अहिंसक युग संक्रान्ति
यह निर्वाचन नहीं
नये युग का आवाहन ।[१]

कवि भारत को सांस्कृतिक अध्यात्म का केन्द्र मानते हुए इसे पहचानने की बात करता है—

यह भारत का भू सम्मोहन
बाहर से यह जर्जर खण्डहर
भीतर से स्वर्गिक वैभव गोपन ।[२]

इसके बाद सन् १९७७ में कविवर पंत का 'नये संकट' नाम से एक संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें मात्र आठ कविताऐं पूर्ण है। नवीं कविता अपूर्ण छोड़कर कवि हम सबसे दूर उस स्वर्णिम प्रदेश को प्रयाण कर गया जहाँ पहुँच कर व्यक्ति आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इन कविताओं में गहन आत्मानुभूति और अवचेतन जगत की छायानुभूति का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है।

तारा पाण्डे

श्रीमती तारा पाण्डे की कविता का प्रारंभ छायावाद के मध्य में ही हुआ, किन्तु उनकी कविताएँ किसी वादविशेष से बंधी नहीं है। इनकी रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति के साथ व्यक्तिगत निराशा, दुःख, अवसाद का स्वर प्रमुख है। कवयित्री के गीतों में 'उस पार' पहुँचने की व्याकुलता और आत्म-विसर्जन की जो उत्कंठा है उसमें प्रणय-निराशा, जीवन की व्यर्थता आदि विषम परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण हाथ है। प्रारंभिक रचनाओं में वैयक्तिकता का अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। वास्तव में तारा पाण्डे का जीवन अनेक अभिशाप, पराभवों, दुःख-सुख के तानों-बानों से निर्मित हुआ है। सोलह वर्ष की अल्पायु में क्षयरोगग्रस्त आशा-निराशा के बीच झूलता जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। स्वयं कवयित्री के शब्दों में—

खिलने से पहले ही मेरी, मृदुल पंखुड़ी सूख चली
परिमल और परागहीन मैं मुरझायी हूँ एक कली
उस झिलमिल से अजब जगत में उलझी पड़ती है पीड़ा
खेल-खेल कर तारों से ही, आँसू करते हैं क्रीड़ा ।[३]

यही नहीं, महादेवी की तरह इनकी कविताओं में उस असीम प्रभु से वार्तालाप एवं प्रश्न पूछा है—

पूर्व जन्मकृत पाप-कर्म का
नाथ मुझे यह दण्ड मिला

---

१. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७, पृ. ५२३
२. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, भाग-७, पृ. ५४९
३. सीकर, तारा पाण्डे, पृ. ११

अथवा हेतु परीक्षा के यह
तुमने है नव खेल किया
हुआ अन्त या अभी और है
मुझे बता दो हे करणेश
सत्य बनाना, सत्यसिन्धु, अब
कितना शेष रहा है क्लेश ।[१]

साठोत्तर से पूर्व इनके निम्न काव्य संकलन प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) सीकर-१९३४, (२) शुकपिक-१९३७, (३) वेणुकी, (४) आभा, (५) काकली, (६) विपंची, (७) रेखाएँ, (८) उत्सर्ग (कहानी संग्रह)।

साठोत्तर कृतियों में 'रंजना' ही एकमात्र प्रकाशित काव्य संकलन है, यद्यपि अभी भी कवयित्री लखनऊ में निवास करते हुए रुग्णावस्था के बीच यदा-कदा लिखती रहती हैं। तारा पाण्डे के विषय में महाप्राण निराला के विचार—(तारा देवी ललित रचनाओं के कारण हिन्दी की प्रमुख कवयित्रियों में गण्य हैं। साहित्यिकों में उनकी चर्चा रहती है, वे आदरपूर्वक उन्हें याद करते हैं।····प्राथमिक विकास की, हिन्दी की अनेक वर्ण छटाएँ हिमालय पर अंकित है, जिसमें तारा भी एक दीप्ति है। उत्सर्ग के अनुरूप, आजकल देवियों के प्राणों से मिलने वाली हिन्दी संस्कृति की, तारा की जैसी रागिनी अन्य की नहीं, अन्य विषयों की विशिष्ट है, घरेलू सांस्कृतिक कोमल विशेषता तारा की सिद्ध विभूति है।'[२]

एक अन्य स्थान पर निराला ने और लिखा है—'क्या भाव, क्या भाषा, यह तारा का सच्चा कवि बोल रहा है। इन पंक्तियों को हम हिन्दी की किन्हीं श्रेष्ठ पंक्तियों के समकक्ष रख सकते हैं, न यहाँ हार है न वहाँ हार होगी। कारण यह मौलिकता है, मौलिकता हारना नहीं जानती वह जीतना भी नहीं जानती, पर उसकी जीत होती है। बड़े-बड़े विजयी उसकी विजय स्वीकार करते हैं।'[३]

वेणुकी के प्राक्कथन में कविवर हरिऔध जी के विचार—'उसमें भावुकता है, गौर सहृदयता की वेदनामय झंकार,····उनकी कविता में निराशावाद की झलक अवश्य है, पर उसमें कवि और मर्मस्पर्शी है। विषय का सहृदयता से चित्रण है, जटिलता दिखाई नहीं पड़ती, प्रसाद गुण ही सर्वत्र दिखाई पड़ता है और यह प्रशंसा की बात है।'[४]

इन सब विद्वान् साहित्यकारों की विचारधाराओं से और स्वयं कवयित्री के काव्य से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी रचनाओं में क्रमशः व्यष्टि से समष्टि की

१. सीकर, तारा पाण्डे, पृ. ८१
२. शुकपिक, प्राथमिकता, निराला
३. शुकपिक, प्राथमिकता, निराला
४. वेणुकी, प्राक्कथन

ओर जाने का क्रम है। व्यक्तिगत सुख-दुःख से प्रारंभ होकर समष्टि के सुख-दुःखों को आत्मसात् करने का भाव है। कवयित्री के संवेदनशील हृदय में एक गहरी व्यथा की छाया व्याप्त है, जो उनकी रचनाओं में धूप-छाँह की तरह गुंथी मिलती है। उनके प्रबुद्ध हृदय में युगजीवन की स्थितियों तथा नारी-जीवन की सीमाओं के प्रति गंभीर असंतोष का भाव पाया जाता है। एक आदर्शवादी विकसित नारी की तरह वे अपने चतुर्दिक् व्याप्त सामाजिक जीवन को अधिक सुन्दर तथा मानवीय सहानुभूति से पूर्ण देखना चाहती है। उनकी आदर्शवादिता वर्तमान पार्थिव जीवन की परिस्थितियों से निरंतर जूझने को प्रयत्नशील रहती है और यह सूक्ष्म भाव संघर्ष उनकी गीतियों को उनके हृदय के अश्रुप्रवाह में सजल तथा सिक्त रखता है। यह अमूर्त व्यथा का ताप पाठकों के हृदय को स्पर्श किये विना नहीं रहता और यही वास्तव में इस जीवन-मंगल की अनन्य उपासिका गीति कवयित्री की सृजन कला की सफलता है।

उनकी भाषा के विषय में कविवर पंत के विचार—'श्रीमती तारा पाण्डेय की भाषा में प्रारंभ से ही एक लालित्य, माधुर्य तथा सहज प्रवाह पाया जाता है। उनके गीत उनके हृदय की गहरी भावना में ढलकर एक विशेष मार्मिक भाव लिए होते हैं। छंद का प्रत्येक चरण गीतात्मकता की मधुर झंकार से पाठक के हृदय को भावना में तन्मय तथा रस में विभोर कर देता है।[१]

रंजना

इस संग्रह में रहस्यात्मक गीतों से लेकर प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम तथा युग-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आधारित उत्कृष्ट रचनाएँ संगृहीत हैं। ईश्वर के प्रति सदा समर्पित रहने वाला भाव निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

साधना के स्वर न भूलूँ।
पंथ है अनजान तो भी
भय नहीं मुझको किसी का,
ध्येय है मेरा सुपरिचित
और मुझको बल उसी का।[२]

मातृ प्रेम की भावना 'माँ की पूजा हो बार-बार'[३] कविता में देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त—

भारत जागा सजनि, आज
जागे सारे नर-नारी
गाँव गाँव में फैल रही है
बातें मोहक-प्यारी।[४]

---

१. रंजना, प्रवेश
२. रंजना, पृ. २१
३. रंजना, पृ. २५
४. रंजना, पृ. ३४

पंत जी की तरह कवयित्री को भी प्रकृति से अनन्य प्रेम है। हिमालय के प्रति उनकी श्रद्धा-आस्था को देखिए—

गिरिराज ! हिमालय उच्च शिखर।
तुम सत्य रूप, तुम शिव सुन्दर।
रवि की किरणों का स्वर्ण मुकुट
प्रातः तुमने पहना हँस कर
शशि किरणों ने उस पर गूँथी
झिलमिल झिलमिल मुक्ता झालर
तुम विश्व रूप तुम अखिलेश्वर।
गिरिराज हिमालय उच्च शिखर।[१]

भक्ति प्रधान गीतों के साथ-साथ कवयित्री में रहस्यवादी प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। डॉ. भगत सिंह के शब्दों में—'श्रीमती तारा पाण्डेय का रहस्यवाद एक ओर तो मीरा के रहस्यवाद को स्पर्श करता है दूसरी ओर महादेवी के रहस्यवाद के समकक्ष है। पहले रहस्यवाद में भक्ति और विश्वास की प्रधानता है तो दूसरे में शैली एवं कल्पना की।'[२]

मीरा की भक्ति के सदृश कवयित्री की रहस्यवादी भावना—

छोड़ चली पुरजन और परिजन, अपने और पराए,
वंशी के स्वर सुनकर तूने मुरलीधर अपनाए।
मानी एक न बाधा।
प्रेममयी ओ राधा।
ओ राधा।[३]

कहीं पर महादेवी जी के रहस्यवाद के सदृश नई शिल्प-बोध के साथ पंक्तियाँ—

नेह लगाए, पलक बिछाए,
प्रीत जगा के पिया न आये,
परदेशी के पथ में निकली विरहित देख अरी।
बरस-बरस कर आज मिट गए
काले मेघ भारी ।[४]

एक अन्य गीत देखा जा सकता है—

कौन सी थी गीत की वह धुन बता दो ?
खिल उठे सूखे सुमन
जिस गीत को पल एक सुन,

१. रंजना, पृ. ३८
२. हिन्दी साहित्य को कूर्माचल की देन, पृ. १३३
३. रंजना, पृ. ७६
४. रंजना, पृ. ६०

आज मेरे सुप्त प्राणों को उसी से प्रिय जगा दो ।
कौन सी थी गीत की वह धुन बता दो ।
शाप भी बन जाय मृदुवर
बह चले जब गीत-निर्झर
पीर मेरे हृदय की क्षण भर सुला दो ।
कौन सी थी गीत की वह धुन बता दो ?[१]

तारा पाण्डे की कविताओं में सौन्दर्य बोध, प्रकृति प्रेम, देश प्रेम के साथ ही आनन्द की गीतात्मकता की मधुर झंकार सर्वत्र व्याप्त रहती है, यथा—

भारत माता वीर प्रसविनी
हम भारत के सेनानी ।
वीरों की गाथाओं से है
भरा पड़ा इतिहास हमारा
जौहर की ज्वाला में हँसकर
हमने दुश्मन को ललकारा ।[२]

देश-प्रेम के गीतों में देश के संकट के समय एकजुट होकर शत्रु का सामना करने का आह्वान करती हुई वीर-रस पूर्ण कविताएँ भी कवयित्री ने रची हैं—

भारत देश हमारा है ।
चीन देश ने बरबस हमको
समर हेतु ललकारा है
उठो वीर ! केसरिया पहिनो
माँ ने तुम्हें पुकारा है ।
××××××××××××××××××
हम स्वतंत्रता के अभिमानी
हमें देश निज प्यारा है ।[३]

विनोदचन्द्र पाण्डेय

सन् १९६० के बाद विनोदचन्द्र पाण्डेय के तीन कविता संग्रह प्रकाश में आये हैं। 'लाल फूलों की टहनी', 'कृष्ण पक्ष' और 'विकल्प' तीनों संग्रह मुक्त कविता संग्रह हैं।

लाल फूलों की टहनी

इस संकलन की अधिकांश कविताएँ प्रेमपरक हैं। स्वानुभूति के स्तर पर लिखी इन कविताओं में कहीं-कहीं पर अत्यधिक मांसलता परिलक्षित होती है—

---

१. रंजना, पृ. १३
२. रंजना, पृ. ८७
३. रंजना, पृ. ८९-९०

तुम यहाँ लेटी थी
तुम बैठी थीं वहाँ
धुँधियाले-ऐसे ही समय
तुमने कुछ कहा था।[१]

चन्द्रा कविता में कवि एक ओर तो स्वतंत्र विचारों को प्राथमिकता देता है, दूसरी ओर उसका मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है—

चन्द्रा, जब तुम बड़ी होना
यदि बुलायें किसी के लड़खड़ाते कदम
काका काकियों की बजाय
हृदय की सुनना।

दुनिया क्या कहती है, इसकी परवाह न कर अपने अन्तर्यामी की बात सुनना ही श्रेष्ठकर है। कवि का मन सांसारिक तिक्तता से पूर्ण हो चुका है, इसलिए कहीं-कहीं पर नैराश्य के भाव मुखर हो उठे हैं—

क्या बदलेगा जीवन ढंग।
मेरी नींव उदासी की
कितने झड़ गये आकर मौसम
मन की बाहें एकाकी ही।[२]

कहीं कवि अतृप्त प्रेम की कविताओं से जीवन की नीरसता का परिचय देता है—

तुम्हारे सिरहाने स्वप्नों को देखा
शान्त झील में मग्न हंस
भाग्य की मृदु होती रेखा
वे सफेद, कहाँ गए
आँख खोलते ही
तुमने कुछ न समझ
मुस्करा मुझे देखा।[३]

छोटी-मोटी कविताओं के अलावा इस संग्रह में 'पुष्कर विहार', 'मत्स्यगंधा', 'शकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसी पौराणिक आख्यानपरक कविताएँ भी लिखी गई हैं। नाटकीय शैली में बड़ी सरल-सरल कविताएँ बन पड़ी हैं—

वह जान ले ये नाटे मोटे गणेश
जीत चुके हैं देवताओं की रेस
××××××××××××××××××

---

१. लाल फूलों की टहनी, पृ. १२
२. लाल फूलों की टहनी, पृ. ६४
३. लाल फूलों की टहनी, पृ. १९२

शनि हँसे, कैसे होगा यह इन्द्र।
शनि, हमारे पीछे एक युवक आ रहा है
उसके चेहरे पर वही ओज है
जिसकी दूत में हमें खोज है।[१]

कृष्णपक्ष

यह साठोत्तरी दूसरा काव्यसंग्रह है, इसमें अधिकांश कविताएँ आस्था एवं प्रेमपरक हैं। कवि निरन्तर कर्मरत रहने की प्रेरणा देते हुए कहता है—

पराक्रम को जगाओ
एक स्वप्न हुआ अतीत
जो आज ढह गया महल
ढह सकता था कभी
परियों की कहानी के
टूट जाते हैं पंख
यदि हममें जीवन है
कहीं नहीं है अन्त।[२]

अतृप्त प्रेम की यहाँ भी कमी नहीं है। एकमात्र प्रेयसी के पास पहुँच कर जी-भर कर देख लेने की, अंक में भर लेने की कैसी चाह है—

ज्यों आ सकती है हवा
तुम्हारे कमरे में
मैं आ सकता
लेटी होगी ओढ़े शाल
थकी, विषादमय, चुपचाप
ज्यों बटोर सकता है चाँद
तुम्हें प्रकाश में-खिड़की पर आ
तुम्हारा ध्यान
मैं ले सकता।[३]

सुख-दुःख, नियति, आस्था आदि की कविताएँ बड़ी सजीव बन पड़ी है। असंख्य दुःखभरी कविता को देखिए मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाएँ चित्रित हैं—

मेरे विश्व के छोटे घरों में
वही दुःख का सागर रिसता
कभी न आता तूफान
दुःख इतना भारी होता

---

१. लाल फूलों की टहनी, पृ. ११७-११८
२. कृष्णपक्ष, पृ. १६
३. कृष्णपक्ष, पृ. १६

क्वारे भाई अविवाहित बहनों से दबे
एक ठप्पप्राय वकालत
मकान उठा-रहने को
अपना सर्वेण्ट क्वाटर
××××××××××××××××××
न संतोष बदल सकता
न मुझमें बढ़ी तिक्तता
व्यक्ति क्योंकि मरता नहीं
यह स्वीकृत नरक है ।[१]

प्रकृति के साथ कवि की भावनाओं का तादात्म्य हो जाता है, तब उसे वसन्त का आना भाता है—

फूलों के हिलते सिर
जग जातीं क्यारियों पर क्यारियाँ
नये पत्तों पर लगती हवा
मैंने अपनी देह में जाना
उसकी सुध में काँप-काँप
धरती पर वसन्त का आना ।[२]

पाण्डेय जी की अधिकांश कविताएँ आत्मपरक ही अधिक हैं—

मेरी आत्मा मरुभूमि में बनी
चट्टानों से सीखा जीना
जीना या जीते रह सकना
मरुभूमि में बनी, मरुभूमि ही रही ।[३]

अन्त में 'ओरेस्टीज की मुक्ति' में कवि शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा कर देता है—

विश्व में नहीं है न्याय
विश्व में है कविता
न्याय से बड़ा आश्रय
मनुष्य अन्याय सह लेता ।[४]

विकल्प

'लाल फूलों की टहनी' एवं 'कृष्णपक्ष' के मांसल एवं लौकिक प्रेम की अपेक्षा विकल्प में जनजीवन के यथार्थ धरातल पर पहुँचने का प्रयास किया है । अब कवि व्यक्तिपरक, आत्मपरक कविताओं से मन की भड़ास मिटाने का प्रयास नहीं करता, अपितु समष्टि के

१. कृष्णपक्ष, पृ. ५६
२. कृष्णपक्ष, पृ. ६९
३. कृष्णपक्ष, पृ. ७९
४. कृष्णपक्ष, पृ. १०६

सुख-दु:ख में शामिल होकर विस्तृत दृष्टिकोण, नूतन भाषा-शिल्प से कथ्य को प्रस्तुत करता है। अब कवि पूर्णतया आस्थावान और आशावादी हो चुका है—

संस्कार पुरुष मेरी अवहेलना कर
अपनी योजनाएँ पूर्ण करता रहा
मेरे निश्चय के सामने अदृश्य
अपनी असफलता पर नि:संशय ।[१]

परम्परागत प्राचीन संस्कारों के प्रति उसको मोह बना हुआ है। उन्हीं पूर्वजन्मों के संस्कारों के परिणामस्वरूप उसे प्रिय का दर्शन होता है—

किसी पूर्व जन्म के
रूपवान् संस्कार से
मेरे हृदय के कल्पवृक्ष में
एक महीन फूल खिला
इसकी सुगंध ने झकझोर
दृष्टियों की नई दृष्टि की
पहले भी देखा था
पर पहली बार देख तुम्हें ।[२]

कवि जीवन के प्रति आस्थावान होना व्यक्त करता है। यद्यपि मृत्यु अवश्यम्भावी है किन्तु मनुष्य को अन्तिम क्षण तक कर्मरत रहना चाहिए—

मृत्यु की प्रतीक्षा है मुझे भी
यह व्यर्थ का कारोबार अन्त करे
पर जब मृत्यु को आज्ञा नहीं दी जा सकती
जीवन के उदास कर्तव्यों पर थोड़ी देर हँसे ?[३]

बुद्धिवाद को कवि जीवन के लिए अभिशाप मानते हुए लिखता है—

असफल प्रेम के अपराध पर
आजन्म मृत्यु से कम
देह को दण्ड क्या संभव था
और पागल न होने के लिए
जीवन की बजाए
बुद्धि को दी जीवन की समस्या ।[४]

---

१. विकल्प, पृ. २१
२. विकल्प, पृ. २७
३. विकल्प, पृ. २६
४. विकल्प, पृ. ८२

आधुनिक युग में लेखकों की उपेक्षा पर कवि असन्तोष व्यक्त करता हुआ लिखता है—

जानवरों में जेब्रा है
जेड और ज़ू के लिए
कहीं दीखता नहीं
जैसे पाठ्यपुस्तक से बाहर
हिन्दी का कवि ।[१]

आज मानव की त्रासदी का मुख्य कारण है—अपरिमित आकांक्षाएँ और असंभव की चाहना । वह कितना दुर्भाग्यशाली है जो वह नहीं करता जो वह कर सकता था, वह करना चाहता है उसे जिसे वह नहीं कर सकता—.

कहा जाता है न चाहो असाधारण
जो मिल सकता है वही चुनो
मानसिक रोग गुलाब और चाँद ।[२]

पश्चिम के अन्धानुकरण को कवि लाभकारी नहीं मानता, उनके अनुकरण से हमें कुछ प्राप्त नहीं हो सकता—

यह भावुकता है अब
सूर्यास्त में तन्मय हो जाना
जीवन में कोई नहीं
पश्चिम से आने वाला ।[३]

अर्थप्रधान युग की भौतिक चमक-दमक एवं पूँजीपतियों का दम्भ व्यंजित किया है । कवि इन सबसे दूर रहना चाहता है ।

मैं नहीं हूँ एक उद्योगपति
जिनकी एक हुँह पर
कारखाने उजड़ जाते हैं ।[३]

राजनीतिज्ञों पर भी करारा व्यंग्य है—

मैं कभी न होऊँगा मिनिस्टर
जो एक हस्ताक्षर से
करोड़ों व्यय कर देते हैं ।[४]

'गरीबी' कविता में कवि ने गरीबी का बड़ा सुन्दर चित्रण करते हुए उससे उभरने का उपाय भी बताया है—

१. विकल्प, पृ. ८३
२. विकल्प, पृ. ८७
३. विकल्प, पृ. ९५
४. विकल्प, पृ. ४७

सदा एक क्षेत्र गरीब सहने वाला रहेगा
जो युद्ध के लिए सैनिक देगा
सड़कों को साइकिलें, दफ्तर को क्लर्क
जिनकी इच्छाएँ क्यू में खड़ी रहती हैं
गरीबी से भय, गरीबी से घृणा
ऐसा समाजवाद इन्हें आदरहीन रखेगा
जिस दिन लोग त्याग देंगे
रईसी और अमीरी के आदर्श
विषय जुटाने वालों को संशय से देखा जाएगा
जीवन की पूर्णता की पहेली
जिस दिन वैभव से न बूझी जाएगी
उस दिन गरीबी मिट जाएगी।[१]

जीवनप्रकाश जोशी

'.....नदी के किनारे उगने वाले वेंत की तरह छरहरा बदन, गेहुँआ वर्ण, छिटकी हुई चाँदनी-सा हास, अमावस्या की रात्रि में जगमगाते हुए तारकों-सी विनोदप्रियता, स्वभाव में क्रोध, परन्तु क्रोध में हिमालय का उठान नहीं, दूध का उफान और इन सबसे पृथक् सरल हृदय । अभावों की नगरी का राजकुमार, परन्तु संघर्षों का प्रेमी। जिसकी प्रतिभा कल्पनाओं के व्योम में न भटककर यथार्थ की कठोर भूमि पर मानवता की रक्षा हेतु चीखा करती है। जो मानस को सुशोभित करने के लिए अनुभूतियों के अथाह सागर से मोती निकाल कर लाता है, जिसकी कृतियों को जब साहित्यजगत् के पारखी कसौटी पर रखेंगे तो खरा कुन्दन पायेंगे।'[२] उपर्युक्त पंक्तियाँ अक्षरश: सत्य प्रतीत होती हैं।

जन्मभूमि—अलीगढ़
मातृभूमि—झिझाड़, अल्मोड़ा
जन्म—शुभ सम्वत् १९८६, वैशाख कृष्णपक्ष अष्टमी, गुरुवार।
पिता—श्रीयुत् जमुना प्रसाद जोशी
माता—स्वर्गीया चन्द्रवती देवी
शिक्षा—एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशित कृतियाँ—

(१) हृदयावेश, (२) माला, (३) दिल और दर्पण, (४) धरती : आकाश मनुष्य, (५) आग और आकर्षण, (६) हम भी तुम्हारे हैं, (७) नये सत्य का अँकन, (८) अग्निहोत्र : सपनों में, (९) डूबता सूरज : उगता सूरज, (१०) इस मोड़ में, (११) भाषा : एक महानदी, (१२) पानी गाने लगा।

---

१. विकल्प, पृ. ४८
२. हृदयावेश, संतोषकुमार जैन

अप्रकाशित कृतियाँ :

कविता-संग्रह—(१) चोट की झंकार, (२) अश्रु मेरे गीत तेरे, (३) आलोक और अर्चना, (४) फूलों की छतरी, (५) पदचिह्न १-२ भाग, (६) उच्छिष्ट।

समीक्षा—(१) हिन्दी साहित्य मंजूषा, (२) जायसी का पद्मावत, (३) हिन्दी गद्य के सोपान, (४) निबंध-नवनीत, (५) विद्यापति की पदावली, (६) साहित्यिक निबंध, (७) बच्चन: व्यक्ति और कवित्व, (८) बच्चन : पत्रों में, (९) आधुनिक हिन्दी गीत काव्य : विषय और शिल्प, (१०) नाटककार मोहन राकेश, (११) गद्यकार बच्चन, (१२) कविता की पहचान, (१३) नयी कविता की मानक कृतियाँ।

सम्प्रति श्री जोशी दिल्ली विश्वविद्यालय के देशबंधु सायं कालेज, कालका जी नयी दिल्ली में लेक्चरर तथा 'सर्वहिताय' के प्रधान संपादक हैं।

आग और आकर्षण

यह जोशी जी की साठोत्तरी काल में प्रथम कविता संग्रह है। 'जोशी जी मूलत: एक कवि हैं, कवि से भी अधिक गीतकार हैं'[१]। डॉ. भगत सिंह के ये शब्द उनके संग्रहकाव्य का अनुशीलन करते हुए सत्य प्रतीत होते हैं। विवेच्य संग्रह की भूमिका में डॉ. बच्चन ने भी जोशी जी के प्रति अच्छी संभावना व्यक्त की है—'उनकी सभी विधाओं से यत्किंचित् परिचित होने पर मैं उन्हें कविताओं में ही अधिक पाता हूँ।'[२]

इस संग्रह की रचनाओं के विषय में स्वयं कवि के विचार—'आग और आकर्षण' मेरी यौवन की यात्रा का एक पड़ाव है। मैंने इस यात्रा की संचित भावराशि को इस संग्रह के रूप में रख दिया है।'[३] वास्तव में इस संग्रह की कविताओं को पढ़ने से विदित होता है कि यह उनके प्रेम और संघर्ष की दुनियाँ से टक्कर का सबूत है। स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्तियों के साथ-साथ रूमानियत के दर्शन भी इसमें मिलते हैं—

पनघट भी हो, पनिहारिन भी, प्यासा किस भाँति रहा जाय
बिखरी अलकों के गुच्छों से उमड़े, घनश्याम लिपटते हों
झुकती शर्मीली पलकों से सौ-सौ मधु जाम छलकते हों
अंगारे सुलगते ओंठों को ही, स्वर्ग-कलश का आमन्त्रण
रेशम के झीने घूँघट में प्यासे पैगाम मचलते हों।[४]

तथा एक दूसरे स्थान पर—

इससे भी प्यार करूँ
उससे भी प्यार करूँ

---

१. हिन्दी साहित्य के कूर्माचल की देन, पृ. १५२
२. आग और आकर्षण, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, भूमिका
३. आग और आकर्षण, संकेत
४. आग और आकर्षण, पृ. १७

किस-किस के अंग लगूँ
किसकी मनुहार करूँ ?[१]

प्रेम में आकर्षण सर्वत्र दिखलाई पड़ता है और इस आकर्षण में कामाग्नि सुषुप्तावस्था में सर्वत्र विद्यमान है। उस शाश्वतता को कवि निम्न शब्दों में व्यक्त करता है—

ऐसा कौन जगत् में, जिसमें आकर्षण है, आग नहीं है
सरिता की चंचल लहरों में
धधक रही आग की ज्वाला
बादल के दिल ने पहनी है
बूंदों की चिंगारी माला।[२]

हम भी तुम्हारे हैं

'डॉ. जोशी की ये कविताएँ युग जीवन के परिवेश में व्याप्त और ज्वलंत समस्याओं से सम्बद्ध अनुभूत नये सत्य का अंकन तथा अपनी विधा में सरल होते हुए भी गंभीर व्यंग्य का प्रतिमान पेश करती हैं।'[३] यह जोशी जी की कविताओं का प्रथम छन्दमुक्त संग्रह है। कवि ने स्वीकार किया है कि—'छन्दमुक्त कविताओं में अनुभूति और कल्पना से अधिक युग-यथार्थ और जीवन-सत्य को अनुभव की आवाज दे सकता हूँ।'[४] सकंलन की कविताओं के विषय में—'बूढ़ा-बोध नयी अभिव्यक्ति का इशारा पाकर नौजवान हो जाता है। पर अभिव्यक्ति की नवीनता को कविता की नवीनता यानि 'नई कविता' के नारे से प्रचारना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। युग-सत्य का कथ्य तो अपने आप सांप की तरह अपनी अभिव्यक्ति की केंचुल उतार कर नयी त्वचा धारण करता है। यह प्रकृति, सहज और स्वाभाविक है···· आप मेरी 'नयी अभिव्यक्ति' को इसी परिप्रेक्ष्य में रखकर पढ़े-परखें।'[५]

इस युग को कवि इस तरह व्यक्त कर रहा है—

पेट की आग से घर फूंक दिया, पिता की चिता जला दी,
संसार के प्यार-उपकार को फटकारा,
मुझे मरे हुए जो रिश्तेदारी के प्रेत थे,
उन्हें मैंने ललकारा, मैं जमाने से लड़ा।[६]

कवि स्पष्ट शब्दों में युग-बोध का परिचय देता हुआ कहता है—

---

१. आग और आकर्षण, पृ. ६३
२. आग और आकर्षण,, पृ. ७४
३. हम भी तुम्हारे हैं, कन्हैयालाल गाँधी, विज्ञापन
४. हम भी तुम्हारे हैं, मुखबन्ध
५. हम भी तुम्हारे हैं, मुखबन्ध
६. वही, पृ. १५

मेरे युग का निर्माण-परमाणु बम,
मेरे युग की सभ्यता-डायनिंग टेबिल,
मेरे युग की संस्कृति-नंगी औरत,
मेरे युग का इतिहास-मुर्दा आदर्श,
मेरे युग का साहित्य-कोक-शास्त्र,
मेरे युग की मानवता-नुमायशी गुड़िया,
मेरे युग का खुदा-भाषण देता गधा।[१]

इन पंक्तियों के द्वारा कवि ने वर्तमान खोखली आचरणहीन व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण मुखर हुआ। मात्र अपने नाते-रिश्ते के लोगों तक सीमित रहना संकीर्णता है।

प्राणीमात्र से प्रेम का भाव होना अभीष्ट है—

माता-पिता, भाई-बहन, प्रेयसि-पत्नी, पुत्र-पुत्री
रिश्ते-नातेदार, पास-पड़ोसी, दोस्त-दुश्मन
सोचता हूँ-क्या यही है सारा जीवन।
लेकिन,....
द्वार पर दुम, हिलाता कुत्ता
चौराहे पर रास्ता सुझाता सिपाही,
अस्पताल में ऑपरेशन करता डाक्टर
जलता माथा सहलाती नर्सें, रक्तदान देते नौजवान,
पेड़ों के कच्चे-पक्के फल, खेत जोतते-बोते, काटते किसान,
रंग बदलता आसमान, चहकते वन-पाँखी,
ये सब कहते हैं-हम भी तुम्हारे हैं।[२]

जीव-वनस्पतियों के प्रति भी अपनत्व का भाव व्यक्त किया गया है।

युग-संत्रास से कवि अत्यधिक खिन्न है। सर्वत्र आपाधापी पूर्ण जीवन अशान्ति का घर है। इस यंत्रणापूर्ण स्थिति का सजीव चित्रण—

सारे पक्षी परेशान है-आकाश में कहाँ उड़ें?
आकाश में प्रक्षेपास्त्रों की आग लगी है,
सारे पेड़ परेशान हैं-धरती पर कैसे जमें?
सारी धरती खाईयों-खंदकों से पोली हो गई है,
छतों पर चील-कौओं और गिद्धों के जमघट हैं,
दरवाजों पर झुंड बनाकर कुत्ते रोते हैं,
हर दर-घर चीखता है त्राहिमाम्-त्राहिमाम्।[३]

---

१. वही, पृ. १४
२. हम भी तुम्हारे हैं, पृ. १७
३. हम भी तुम्हारे हैं, पृ. १७

मनुष्य द्वारा तैयार की गई युद्ध की विभीषिका से प्राणियों में ही नहीं; अपितु प्रकृति में भी भय की दहशत फैल गई है। जीवनपर्यन्त जूझता हुआ कवि आस्थावान हो उठा है। वह कहता है तुम मृत्यु से भय न करो, उसे लड़कर, पछाड़कर मृत्युंजयी बन जाओ—

मेरे दुःख में सहानुभूति न दिखाओ,
दर्द, कटे बकरे-सा तड़फड़ाता है, जी घबराता है,
कोई किस्सा कहो, एक मुर्दा रात भर मौत से लड़ा हो,
सबेरे मौत मर गई हो, मुर्दा जी गया हो।[१]

आधुनिक जीवन पर, व्यक्ति के गिरते आचरण पर, टूटते संबंध पर, कितना करारा व्यंग्य है—

अंगद के पाँव-सा अड़ गया,
बाप का खूंसट रौब मनचले बेटे के धड़कते दिल में,
कारण, सामने वाली, खिड़की की खूबसूरत लड़की को,
नौकरी दिलाने का झांसा देकर,
बाप ने दिल लगाया है,
और उधर उनके साहबजादे भी उसी लड़की से,
बचपन से इश्क फरमाते हैं।
उधर
सूर्पणखा-सी बेटी सजधज कर,
आधुनिक लक्ष्मणों को आवाज लगाती है
अरे है कोई, जो शाम को मेरे साथ
गोल्चा या रिवोली चले ?
मेरी माँ का आशीर्वाद है,
मेरी लाख बार कटे नाक,
मगर हर बार नई निकलेगी।[२]

कवि को वर्तमान संत्रासपूर्ण, आडम्बरपूर्ण जीवन और गिरते मानव मूल्यों के प्रति गहरी निराशा है, जिसे इस प्रकार व्यक्त करता है—'गाँधी शताब्दि-समापन और एक प्रश्न' कविता की कुछ पंक्तियाँ—

हमने गाँधी शताब्दि धूमधाम से मनाई,
ढोल-ढिंढ़ोरा पीटा,
गाँधीजी के आदर्शों उसूलों का।
चित्रों-लेखों, सभा-गोष्ठियों में पुल बाँधे,

---

१. हम भी तुम्हारे हैं, पृ. १९
२. हम भी तुम्हारे हैं, पृ. ४५

समाजवादी समाज की प्रशंसा के,
मगर हम आस्तीनों के साँप से
डसते रहे अपने दोस्तों को,
बहनों-भाईयों और पास-पड़ोसियों को,
देश में जगह-जगह,
हम बहाते रहे खून-सा गाढ़ा-गाढ़ा जहर,
हिंसा-घृणा-मारकाट-लूटपाट,
घिराव, पथराव और आगजनी का,
भारत की छाती छलनी कर दी हमने,
स्वार्थों के भाले मार-मार कर ।[१]

इस तरह सम्पूर्ण संग्रह युग-बोध, वर्तमान पीढ़ी का संत्रास, यंत्रणापूर्ण जीवन की तस्वीर खड़ी कर देता है।

नये सत्य का अंकन

स्वयं कवि के शब्दों में—'अपनी बात स्पष्ट करने के लिए कह दूँ कि ध्वनि का ह्रास-विकास कहने से मेरा तात्पर्य उस कथन से है जो अपने डायनेमिक श्वास-प्रश्वास में व्यंग्यार्थ का उतार-चढ़ाव लिए रहता है और इसे न जानने वालों से कैसी भी कविता के बारे में बात करना व्यर्थ है।'[२] विवेच्य कृति में भी युग-यथार्थ और परिवेश पर पूर्णता परिलक्षित होती है। इन कविताओं में मानसिक द्वन्द्व, रहस्यवादिता एवं आध्यात्म का भी कहीं-कहीं पर पुट मिलता है—

जन्म केवल एक प्राकृतिक सृजन है, एक मायावी वचन है,
अन्यथा मैं जन्म का कैदी नहीं हूँ, मौत का भोजन नहीं हूँ,
मैं कहीं हूँ, जन्म से पहले कभी जो था कहीं पर
शून्य सागर, अग्नि गिरिवर, अगम अम्बर ।[३]

पर्वतीय प्रदेश के प्रति मोह एवं वहाँ के संस्कारों का और नष्ट होते वनों का कितना हृदयस्पर्शी चित्रण किया है—

जब कभी भी,
उन पहाड़ी चरागाहों में भटक जाता है मेरा पथराया मन
जहाँ भोली भाली भेड़-बकरियों ने
मेरी भूखी भावनाओं को माँ की तरह दुलराया था
मैं भूल जाता हूँ सारे अभावों को
शिटोली का चीड़ का घना जंगल

---

१. हम भी तुम्हारे हैं, पृ. ४९
२. नये सत्य का अंकन, मुखबन्ध
३. नये सत्य का अंकन, पृ. १०

मेरे दुखते-चकराते हुए सर को सहलाता हुआ कहता है
अरे ओ अक्ल के गुलाम
लीस की टाल तो तब तक ही खुली है
जब तक वन की हरियाली हँस रही है
आधुनिक अनास्थावादी चिंतन के सुनसान में
नन्दादेवी का एक मेला लगता है
जहाँ विक्षिप्त भागते हुए भैंस का सिर
धड़ से एक ही वार में अलग कर देता है
एक अनास्थापूर्ण पौरुष
पिता बकरे की बलि देते हैं कुलदेवता पर ।[१]

विवेच्य संकलन में युग-संत्रास, टूटते परिवेश, मूल्यहीनता आदि का खुला चित्रण हुआ है—

प्रेयसी, साथी सगे-स्नेही,
माता-पिता और परिजन-पुरजन
पथ के अनजाने मोड़ों से पीछे छूटे ।[२]

मात्र कुण्ठा, संत्रास व्यक्त करना ही कवि का अभिप्रेत नहीं है, अतः स्थान-स्थान पर उसका आशावादी स्वर भी मुखर हो उठा है—

चढ़ना होगा उच्च शिखर पर
जीवन में हर नये वर्ष का नया कलेण्डर जीना होगा
बादल बिजली वर्षा, जलती धूप ज्वाला का,
नई शक्ति का, नई उमर का, नये वर्ष का
नव प्रतीक हो गया कलेण्डर ।[३]

अग्निहोत्र सपनों में

प्रस्तुत कविता २००० पंक्तियों की एक लम्बी कविता है । विवेच्य कविता में आपातकाल से पूर्व की भारतवर्ष की बिगड़ती परिस्थितियों के चित्रण के साथ आपातकालीन अनुशासनबद्ध कार्य को देखकर देश के उज्ज्वल भविष्य की कामना की है—

सब कत्लेआम की काली रात
आते आते अचानक
उल्टे पैरों लौट गई
अट्ठाइस बरस बाद जैसे
नई सुबह हो गई ।[४]

---

१. नये सत्य का चिन्तन, पृ. ६४-६५
२. नये सत्य का चिन्तन, पृ. १८-१९
३. नये सत्य का चिन्तन, पृ. २३-२४
४. नये सत्य का चिन्तन, पृ. १९

नव-यौवन में उभरते संजय गाँधी का व्यक्तित्व उभारा गया है—

जय जयकार मन्त्रोच्चार करता वह नौजवान
उगता सूरज बाहुओं में भरे
छलांग लगाकर मेरे सिरहाने आ बैठा
असीम ऊर्जा के स्पर्श पुलक से भर ।[१]

कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से कवि का नूतन प्रयोग है। साथ ही इसमें युगबोध,संस्कृति एवं मिथक का एक सुन्दर साकार रूप उभारा गया है। कवि उग्र समाजवादी धरातल से उठकर अपने अग्निहोत्र होने की सार्थकता सार्थक करती हुई भौतिकता को नकारती हुई अन्त में परमानन्द की स्थापना करती है।

सम-सामयिक सन्दर्भों में मिथकीय परिपार्श्व को लेकर लिखी हुई यह प्रबन्धात्मक कविता नई कविता की एक विशिष्ट उपलब्धि है। युग जीवन के व्यापक परिदृश्य को राष्ट्र के बृहत्तर व्यक्तित्व एवं आत्मबोध को अभिव्यंजित करने वाली दो हजार से ऊपर की पंक्तियों में कदम रखने वाली यह पहली कविता है। डॉ. मोतीलाल जोतवाली के शब्दों में—'कवि की एक बड़ी उपलब्धि फेन्तासी की निर्मिति है, जहाँ राष्ट्रविघाती फासिस्टी तत्त्वों, कला, धर्म, राजनीति, संस्कृति के राष्ट्रीय छद्मों और पाखण्डों को उसने विस्फोटक शैली में अनावृत्त किया है।'[२]

'अग्निहोत्र सपनों में' में चेतन और अचेतन जगत की समस्त क्रीड़ा रूपायित हुई है।'[३]

आलोच्य कृति में आपातस्थिति के पूर्व की सामाजिक, राजनीतिक और वैयक्तिक जिन्दगी के पक्षों को दर्शाने के बाद प्रधानमंत्री के २० सूत्रीय कार्यक्रम की उपलब्धियों को प्रतिबिम्बित किया गया है। पूरी कविता मानव-मूल्यों की नई तलाश संज्ञा से जानी जा सकती है। कविता में यत्र-तत्र कुछ सोचने के लिए विवश करती पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

चलते फिरते विद्युत् शवदाह गृह
जलने वाले जिन्दा शवों की
लम्बी-लम्बी लाइनें
जलते जिस्मों पर
माहौल में झल्लाती चिचिआती चीलें
चर्बी-खून हाड़ों के चड़मड़ाने चरखने की
वीभत्स विस्फोटक ध्वनियाँ ।[४]

---

१. अग्निहोत्री सपनों में, पृ. ६६-६७
२. अग्निहोत्री सपनों में, प्रतिक्रिया, पृ. ९
३. प्रकर, दिसम्बर, १९७६
४. अग्निहोत्री सपनों में, पृ. २१

डूबता सूरज : उगता सूरज (१९७७)

इस संग्रह में सातवें दशक की मानवीय, ऐतिहासिक, राजनीतिक घटनाओं, काले-कारनामों का चित्रण है। लेखक के शब्दों में—'सन् १९६३ से युग की जिन मानवीय ऐतिहासिक राजनैतिक (और फैशन के लहजे में कहूँ कि आधुनिक सम-सामयिक) घटनाओं, दुर्घटनाओं, काले-कारनामों, कुचक्रों का मेरे चेतन ने जैसा जितना त्रास, तनाव और असर महसूस किया, वैसा उतना ही उसी को मेरा संवेदन वाक् रूप में बुनने की क्रिया में सचेत-सक्रिय रहा है, विना किसी तरह के प्रतिबद्धता का शिकार हुए।'[1]

विवेच्य संग्रह में राजनैतिक भ्रष्टाचार के विरोध में साहसपूर्ण कवितायें संगृहीत है। सत्ता का सूर्य डूबता जा रहा है तथा दूसरी ओर नयी सत्ता उगते सूरज की तरह सत्तासीन हो रही है—

साल के डूबते सूरज
साल अपनी साफ रखना खूब
सागरों के खारे जल से
खून के धब्बे लगे सिर पर
और पापों की बुती कालिख
अच्छा अलविदा।
××××××××××××××××××
साल के उगते सूरज
ताजा अर्थ की तीक्ष्ण किरणों से
अँधेरे आयुधी आपातकालिक
अहि से डसे जुल्म जड़ता से ग्रसे
मृतप्राय जीवन को जगाकर
लपलपाती पीत लोहित नील वर्णी
ज्वाल की विभीषिका का तिलक करना
राख कर देना सभी सामान सामंती।[2]

वर्तमान बेरोजगारी एवं शिक्षा पर करारा व्यंग्य देखिए—

मुझे क्या दिया है मैंने ?
पी-एच.डी. प्राध्यापकी, प्रकाशित पुस्तकें, पारिवारिक सुविधाएँ
शायद इतना ही है मेरा देय ध्येय
करना पी-एच. डी. प्राध्यापकी में
कहाँ है वह शोध-बोध जो दिमाग को

---

१. डुबता सूरज-उगता सूरज, मुखबन्ध
२. डुबता सूरज-उगता सूरज, पृ. ९

असली अज्ञान और नकली ज्ञान के
चोर बाजार से निकाल कर
चित्रकूट के घाट पर पहुँचा सके ।[१]

कवि ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मानसिकता को पर्त-दर-पर्त अनावृत्त कर बड़े सफल व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किये हैं । आधुनिक जीवन का नग्न चित्र प्रस्तुत करता हुआ रचनाकार लिखता है—

शोभा कक्ष में नंगी कलाकृति
शयन कक्ष में नंगी कामिनी को जीभर भोगते
और अध्ययन कक्ष में नैतिकता की महाभिव्यक्ति साधते
और पड़ोस, प्रान्त, देश-विदेश में
पुरस्कृत प्रतिष्ठित व्यक्तित्व-कृतित्व के
कीर्तिमान कायम करते
ओ आधुनिक बुद्धिजीवी तेरी जय हो
मगर, इस युग में अगर कहीं व्यास-बाल्मीकि होते
तो सच, तेरी तुलना में बड़े बुद्धू कहलाते ।[२]

यही है—आज का खोखला मानव और उसकी मानसिकता ।

भाषा एक महा-नदी

कवि का १२ वाँ कविता संग्रह है । इस संग्रह की कविताओं के विषय में लेखक का मत—'न कहीं कोई वर्जना, न प्रतिबद्धता, न रहस्य, न प्रयोग-प्रगतिधर्म का दंभ-दावा । जो है, वो जुड़ा है जिंदगी की किसी भीतरी भूख से, बुद्धि की बेचैनी से, बाहर की खूनी वारदातों से जूझते हुए, पीले पड़े मनुष्य से ।'[३]

वर्तमान समय की मूल्यहीनता, बिखरते-टूटते परिवेशों, युद्ध की विभीषिकाओं को देखकर कवि को बड़ी चिन्ता है । उसे आगाह करने हेतु वह 'आदमी अगली सदियों का' में विचार व्यक्त करता है—

एक-एक आदमी होगा
कई-कई आबादियों का अवशेष
मगर आदमी में कहीं नहीं होगा
आँसू और हँसी का नामो-निशान ।[४]

'भाषा एक महानदी' में कवि भाषा का महत्त्व बताते हुए उससे विश्वबन्धुत्व की

---

१. वही, पृ. २६
२. डूबता सूरज-उगता सूरज, पृ. २७
३. भाषा एक महा-नदी, मुखबन्ध
४. भाषा एक महा-नदी, पृ. १०

भावना का सेतु बनकर महानदी बनने का सपना देख रहा है, वास्तव में भाषा ऐसी चीज है, जिसके माध्यम से सारे विश्व में शान्ति भी कायम हो सकती है और आग भी लग सकती है, ध्वंस भी हो सकता है—

परमाणु बम भरे मेजों और बाकी खेतों को
जीवन-रस से सींच-सींच हरे-भरे कर
सारे समुद्रों में मिलने वाली
भाषा एक महानदी कब होगी ?[१]

मानवीय गिरते चरित्र पर कवि मनुष्य को 'दोगला जानवर' की संज्ञा देता है और यह त्रासदीपूर्ण ही है। हम अन्दर से कुछ और बाहर से कुछ और बने रहते हैं—

आदमी-
जब अपने अन्दर झांकता है
तो एक जंगली जानवर, मुँह फाड़ता है
(जो दोगला है, क्योंकि पालतू भी है)
बाहर, भड़कीले लिबासों में अपने को
लोगों की नजर करता है
×××××××××××××××××××
दोगला जानवर, आदमी में जब तक जिंदा है
ईद के मेमने-सा, मानव-मूल्य मरता रहेगा।[२]

कवि शोषितों को शोषक के प्रति मुकाबला करने की प्रेरणा देता है कि एकजुट होकर संघर्ष करो—

हड्डियों के ओ असंख्य ढाँचों।
सुनहरे चाँद के खिलाफ खंजर खींचो
कतारों में तन कर खड़े हो जाओ।[३]

'मैंने देखा है' कविता में कवि समाज के नग्न यथार्थ सामने रख देता है, जो परदों में छिपकर फैल रहा है, बाहर से सुन्दर दिखाई पड़ता है—

रोशनीपुते नीले बंगलों में
महापुरुषों को बुरी तरह नंगा देखा है
दूधों-धुलों को
अकेले में दैत्य बनते देखा है
झूठों को सच्चों के
मजे में नाक-कान काटते देखा है।[४]

---

१. भाषा एक महा-नदी, पृ. १०
२. भाषा एक महा-नदी, पृ. ११
३. भाषा एक महा-नदी, पृ. १२
४. भाषा एक महा-नदी, पृ. १७

समसामयिक कविताएँ भी बड़ी सजीव बन पड़ी हैं। 'भूख' 'प्रदूषण' आदि पर लिखी कवितायें बड़ी प्रभावकारी हैं—

ओ मशीनी शैतानों।
हवा बिगड़ गई तो मशीनों से निकल कर
फेफड़ों में मौत डकारेगी
पर्यावरण प्रदूषण बंद करो।[1]

पानी गाने लगा

यह कवि का १३ वाँ कवितासंग्रह है, जिसमें सन् १९७१-७८ के दौरान लिखी गयी 'नियति के खेल' नामक अप्रकाशित संग्रह की ३५ कविताएँ भी सम्मिलित हैं।'[2]

प्रस्तुत संग्रह में युगबोध, संत्रास और भूख-रोग से तड़पते लोगों की, काम की तलाश में भटकते नवयुवकों की विवशता की कविताएँ हैं। तभी कवि ऋतुराज को बाह्य सौन्दर्य न देकर आधारभूत समस्या हल करने को कहता है, बाहर का सौन्दर्य तभी सुहाना लगता है, जब पेट भरा हो—

अपनी सब सदाएँ ले जाओ,
दे सको तो भूखों-नंगों को
रोटियाँ-लँगोटियाँ दे जाओ।
तुम्हारे तोफे तो आँख, नाक, कान, मन के लिए हैं
और इनका खास शौक फरिश्तों को होता है,
यहाँ तो सब हैं भूखे-नंगे।
पेटों में आटे-दाल के चढ़ते भावों का
भड़भूजा, भूँजने लगा है।
जिस्म के लहू के लोहे के चने।
ऋतुराज तुम्हारे फबीले फूलों,
हरे-भरे दृश्यों से
भूखों का क्या वास्ता है?
इन्हें वापस ले जाओ।[3]

एक और कविता देखिये बेरोजगार की करुण पुकार—

दाता चाहे कुछ न दे,
रोटी जरूर दे दे।
देख, दिल दरबे में धड़क रहा है,

---

१. भाषा एक महा-नदी, पृ. ३६
२. पानी गाने लगा, मुखबन्ध
३. पानी गाने लगा, पृ. १२

दिमाग, अंतरिक्ष में लटक रहा है,
पेट में ज्वालामुखी भड़क रहा है,
दाता चाहे दया न दे, चैन जरूर दे दे ।[१]

छोटी-छोटी कविताएँ भी सूक्तियों की तरह मर्मस्पर्शी हैं। आधुनिक, न्यस्त, स्वार्थों में धँसे व्यक्ति के लिए—

उसने पूछा : सबसे ज्यादा जहरीला जीव ?
वह बोला : भोंदू। जहर से भी ज्यादा जहरीला
आलीशान, आधुनिक आदमी ।[२]

व्यक्ति के संत्रास, कुण्ठापूर्ण जीवन से कवि का मन भर उठा है। वह उन माँ-बापों को गुनाहगार ठहराता है, जो सन्तान पैदा करना ही जानते हैं, उनकी परवरिश करना नहीं जानते, उन्हें अपने भाग्य पर भटकने के लिए, दर-दर ठोकरें खाने के लिए छोड़ देते हैं—

वो ! बदमाश था,
जिसने : मरने को पैदा किया ।
वो : उसका भी बाप निकला,
जिसने भूखों मरने छोड़ दिया ।[३]

वर्तमान युग में क्रान्ति के विना कुछ मिल नहीं सकता, शान्ति का पाठ तो मात्र छलना है, कवि इसी बात को कहता है—

मुर्दे होठों की आखिरी तमन्ना शान्ति ।
जिन्दा रहने की आखिरी उम्मीद क्रान्ति ।
××××××××××××××××××
शान्ति : आध्यात्मिक अफीम है ।
क्रान्ति : सामाजिक संजीवनी है ।
शक्ति है : जुल्मी पर हमलावर हाथ की ।[४]

दुर्गादत्त त्रिपाठी

आपका जन्म सन् १९०६ चन्दौसी में हुआ था। पारिवारिक परिवेश, साहित्यिक वातावरण ने आपके मन में साहित्य-सेवा का बीजारोपण बाल्यकाल में ही कर दिया था। आपके पिता गोविन्द दत्त त्रिपाठी भी साहित्य प्रेमी थे। आपके घर पर तत्कालीन सभी समाचार-पत्र आते थे। इनके पूर्वज चौसार मेरठ के पास परिक्षितगढ़ में रहे, फिर चंदौसी आकर बस गये। चन्दौसी में निवास करते हुए आपने निम्न रचनाओं का सृजन कर हिन्दी साहित्य का भण्डार भरने में स्तुत्य सहयोग दिया। सन्

---

१. पानी गाने लगा, पृ. १३
२. पानी गाने लगा, पृ. २९
३. पानी गाने लगा, पृ. ३९
४. पानी गाने लगा, पृ. ३८

१९७९ में आपने इहलीला समाप्त की। उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार मन्टो से अत्यधिक प्रभावित थे।

(१) **महाकाव्य**—स्वर्ग, निर्मलता का श्राप, शंकराचार्य, गाँधी संवत्सर।

(२) **खण्डकाव्य**—अनुश्रुतियाँ, आरोहा, आसव, अनुजा, सौम्या, कृतम्परा, भूयसी, मधुलिपि, पत्रांक, ग्रन्तगंधी, वृन्दा, यांत्रिका, प्रगति, ऊर्वरा, मदीया, कल्पदुहा, केशिका, प्रत्यय, स्वरन्यास, उपनाह, प्रकाम, मुहूर्त, प्रत्यक्ष, वेणुजा, गीतिका आदि।

(३) **उपन्यास**—अमरसत्य, उत्तरदायी, जहाँ बँटवारा नहीं होता, बर्लिन की रक्तरेखा, मन्टो मिला था।

(४) **कहानी-संग्रह**—क्रमागत, जीने का सहारा, विश्वास का लक्ष्य, उतरता हुआ, मद, धुकधुकी, अन्तरे अनेक टेक एक।

प्रकाशित रचनाएँ—(१) शकुन्तला (खण्डकाव्य), १९४० (२) अमरसत्य (उपन्यास), १९४१, (३) मन्टो मिला था (उपन्यास), १९६१, (४) तीर्थशिला (काव्य-संकलन), १९७२, (५) गाँधी संवत्सर (महाकाव्य), १९६१।

गाँधी संवत्सर

इस महाकाव्य में २७ सर्ग हैं, जिसके आविर्भाव, विकास, ब्रह्मचारी कांग्रेस का विधान आदि शीर्षकों में गाँधी-दर्शन की व्याख्या की गई है। कवि ने सत्याग्रह, असहयोग, सर्वोदय जैसे शब्दों की व्यावहारिक उपयोगिता पर जोर दिया है। गाँधीजी की विचारधारा के साथ इसका एकीकरण किया है। इस कथन में कोई संदेह नहीं कि वर्तमान शताब्दी में भारतीय क्षितिज पर गाँधी जी छाये रहे और आज तक भारतीय समाज उनकी विचारधारा से अनुप्राणित हो रहा है। स्वयं कवि के शब्दों में—

लिए मुट्ठियों में दुर्निग्रह प्राण, प्राण में विप्लव,
संकल्पों से दबा चरण-तल विश्व
विश्व का धन बल
सब ममतामय त्रिदित वृष्टि से
कीलित कर जन-जन मन
सत्य अहिंसा समता से कर गये समर जय संभव।[1]

कवि की धारणा है कि बापू न केवल इस युग की आच्छादक छाया थे, बल्कि वे जन-जन के हृदय में विचरण करते थे। उन्होंने एक युग का नहीं, कई युगों का सृजन किया।

आलोच्य कृति के विषय में कविवर पंत के विचार—'श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी जी को मैं दीर्घकाल से जानता हूँ। आप एक उच्च कोटि के कवि हैं। आपके अनेक काव्यग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ मैं पढ़ चुका हूँ और आप निस्सन्देह ही हिन्दी के उच्च श्रेणी के

१. गाँधी संवत्सर, पृ.

कवियों में हैं। मैंने आपके 'गाँधी संवत्सर' महाकाव्य का अवलोकन भी किया है। यह ग्रंथ गाँधी युग तथा गाँधी जी की विचारधारा एवं आदर्शों को अत्यन्त ललित काव्यमयी भाषा में अंकित करता है। पाठक कवि के इस प्रेरणाप्रद ग्रंथ से प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता। इस कृति से लोक-जीवन के निर्माण तथा उन्नयन में प्रगति होगी।'[१]

'तीर्थशिला' में उनका कवि रूप और अधिक उभरा है। इस संग्रह में ६७ गीत उनके जीवनोपासना के प्रतीक हैं। सुधी कवि समीक्षक महेन्द्र प्रताप के शब्दों में— 'उनके द्वारा रचा हुआ साहित्य मात्रा में जितना प्रचुर है, गुणवत्ता में भी उतना ही महान् है। इसे छोटे मुँह बड़ी बात न माना जाये तो मैं कहना चाहूँगा कि पूज्य त्रिपाठी जी कवियों की उसी कोटि में स्थान पाने के अधिकारी हैं, जिनमें हम प्रसाद, पंत और निराला को स्थान देते हैं। यह बात दूसरी है कि उनकी अधिकांश रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित और अज्ञात ही हैं।'[२]

डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय

आपका जन्म १२ अगस्त, सन् १९२८ को अल्मोड़ा जिला में रानीखेत तहसील के कुमाल्ट गाँव में हुआ था। आपके पूज्य पिता स्वर्गीय पद्मादत्त पाण्डेय जी थे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा गणनाथ विद्यापीठ, सवाली (अल्मोड़ा) में हुई। उसके बाद हरिद्वार, खुर्जा तथा व्यक्तिगत रूप से निरन्तर अध्ययन करते रहे। कड़े संघर्षों के बाद आपने दो विषयों में एम.ए. के बाद पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद लम्बे अन्तराल तक पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कालेजों में प्राध्यापक पद पर कार्य करने के बाद राजकीय महाविद्यालय दुडी में (नोगा) के प्रधानाचार्य पद से अवकाश प्राप्त किया।

सम्प्रति स्वतंत्र लेखन, हिन्दी एवं संस्कृत में अनुसंधान कार्य में तल्लीन। नि:स्वार्थ होम्योपैथी चिकित्सा आपकी हावी है। आपकी अब तक प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाएँ निम्नवत् हैं—

(क) उपन्यास— प्रणय और परिणय (धारावाहिक प्रकाशित)

(ख) एकांकी— असमंजस (सप्तसिन्धु), २. अविद्या (कल्याण), ३. निरीक्षण (विश्वज्योति), ४. नारदमोह-पद्य-नाटिका (जन-साहित्य), ५. घूस देना भी अपराध (विश्व-ज्योति), ६.पंच-पल्लवम् (संस्कृत एकांकी नाटक संग्रह)

(ग) कविता-संग्रह— बिछलन, रंग और रंग-भंग (प्रकाश्य)

(घ) शोध-प्रबन्ध— नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाल का तुलनात्मक अध्ययन

---

१. गाँधी संवत्सर, भूमिका

२. कुमाऊँ का एक समर्पित हिन्दी लेखक, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, कूर्माचल केशरी बद्रीदत्त पाण्डे जन्म-शताब्दी स्मारिका, १९८४

(ङ) निबंध— 'पंजाबी दुनिया' 'स्मारिका' में प्रकाशित इनके अधिकांश निबंध नेपाली-हिन्दी साहित्य के बारे में हैं। इसके अतिरिक्त कई शोधपूर्ण लेख भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।[१]

(च) कहानी— अधिकार और प्यार, मरघट एवं अपरिचिता आदि हैं।

डॉ. पाण्डेय जी ने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी कविताएँ एवं कहानियाँ लिखकर संस्कृत वाड्मय के भण्डार में श्रीवृद्धि की है। इसके लिए समस्त साहित्य संसार उनका चिरऋणी रहेगा।

बिछलन

'मुझे प्रसन्नता है कि डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय ने गद्य और पद्य की विभाजक रेखा को समझने में विवेक से काम लिया है और अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए काव्य-कला की साधना की है। उन्होंने प्रयोग के प्रलोभन में न पड़कर 'परम्परा' का प्रशस्त मार्ग ही चुना है। अपनी प्रेमानुभूतियों को छन्दोबद्ध करने में ही काव्य की सार्थकता मानी है।'[२]

वास्तव में डॉ. पाण्डेय जी का सौन्दर्य-प्रेमी स्वभाव उनकी हर पंक्ति में स्वतः ही अपना परिचय देता चलता है—

तुम्हारी याद क्या आती हमारे गीत आ जाते।
उषा क्या मुसकराती विहग-शावक कुलबुला जाते।।
××××××××××××××××××
हमारे अंग अपनी कम तुम्हारी अधिक कहते हैं।
तुम्हारे स्वप्न क्या आते हमें तुम ही बना जाते।।[३]

'बिछलन' का कवि प्रेम और सौन्दर्य का कवि है। उसमें यौवन का उन्माद भी है और मीठी पीड़ा का नशा भी। कहीं फूलों की मादक हँसी बिखरी है तो कहीं काँटों की चुभन की टीस मिलती है। प्रियतम से मिलकर मान की दशा कवि को सहन नहीं; वह तो फिर एकाकार हो जाना चाहता है—

यह निराली प्रीति कैसी।
तड़प थी आए न, आए रूठने की रीति कैसी।
घन-पटन से आग सारा
शून्य का आच्छन्न रहता
मन-मरुथल भीग जाता
लोचनों से नीर बहता

---

१. व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार से प्राप्त सूचना के अनुसार

२. बिछलन, प्राक्कथन, उदयभानु हंस, राजकवि हरियाणा

३. बिछलन, पृ. ६२-६३

फिर भला आशा लता को
झुलसने की भीति कैसी ।[१]

कवि अभिशप्त जीवन जीने की विवशता पर व्यंग्य करते हुए लिखता है—

हमारे भाग्य का लेखा अँधेरे में बना होगा ।
चढ़ाकर भंग का लोटा विधाता ने रचा होगा ।।
××××××××××××××××××
जिसे नवनीत माना था वही शम्पा-शकल निकला
जिसे मनमीत समझा था वही बैरी असल निकला
तुड़ाऊँ सिर भला किससे कहाँ पत्थर खरा होगा ।[२]

संसार की स्वार्थभरी छलनामयी प्रीति पर कवि स्पष्ट शब्दों में लिखता है—

मरने पर पानी देने को
अपने कितने ही हो जाते
पर, दुर्लभ प्राणों के रहते,
सब रूखे नैन दिखाते हैं ।[३]

डॉ. पाण्डेय जी जीवन में समन्वय न होना ही अभिशाप का कारण बताते हैं । मन और ही चिन्तन करता है तथा तन से और ही कार्य सम्पन्न हो रहा है, यही विडम्बना है—

बँध पाते तनमन साथ-साथ
बन्धन भी मधुमय हो जाते ।
पर, जग के क्रूर शिकारी तो
तन, मन से दूर फँसाते हैं ।[४]

कवि प्रेम को जीवन का सर्वस्व मानते हुए कहता है कि जब मन-प्राणों में प्रेम भरा हो तो व्यक्ति सर्वत्र आनन्दानुभूति प्राप्त करता है—

जब प्यार हृदय में जगता है
संसार सुहाना लगता है
जिस मग की पथरीली धरती
पग-पग पर शूलों की बस्ती
जो स्नेह-कुटी से जा मिलता
वह चिकना-चिकना लगता है ।
जब प्यार भरा हो तो भूखा-
भरपेट छका-सा लगता है ।[५]

---

१. बिछलन, पृ. ४
२. बिछलन, पृ. ७
३. बिछलन, पृ. १९
४. बिछलन, पृ. १९
५. बिछलन, पृ. ३३

दो हृदयों को मिलन ही शाश्वत प्रेम की अभिव्यक्ति है, जिसे कवि निम्न पंक्तियों में व्यक्त करता है—

जब हृदय हृदय की सुन लेता
तब दर्द सुहाना लगता है ।[१]

डॉ. पाण्डेय हिन्दी-संस्कृत के साथ ही उर्दू छंदों का भी पर्याप्त प्रयोग बड़ी सफलता के साथ करते हैं, उदाहरण के लिए ऊर्दू छन्द में—

चले आते, चला आता हृदय में ज्वार अनजाने ।
किसी की मुस्कराहट ही जुन्हाई बन गई कैसी ।
न शम मन में न दम तन में न अपने में न उनमें हम
किसी के नयन की सिहरन कसाई बन गई कैसे ।[२]

डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय जी की कविताओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उदयभानु हंस राज्य-कवि, हरियाणा के शब्दों में—'बिछलन के रचयिता में एक प्रबुद्ध कवि की संभावनाएँ विद्यमान हैं, अत: उनकी आगामी रचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक सशक्त और समृद्ध होंगी ।'[३]

❖

१. बिछलन, पृ. ३३
२. बिछलन, पृ. ८६
३. बिछलन, प्राक्कथन

कूर्माचल के नाटककार तथा उनकी कृतियाँ

गोविन्दवल्लभ पंत

(क) अधूरी मूर्ति

यह पंत जी का ऐतिहासिक नाटक है, इसका दूसरा नाम लेखक ने 'कोहनूर का लुटेरा' भी दिया है। यह नाटक काफी लोकप्रिय हुआ, जैसा कि दशरथ जी ने अपने कोश में भी स्पष्ट किया है—'सवा सौ से अधिक प्रदर्शन इस नाटक के अकेले गीत और नाटक प्रभाग के केन्द्रीय दल ने अब तक उत्तर-प्रदेश, आन्ध्र, काश्मीर और मैसूर प्रदेशों में किये हैं और भी कुछ प्रान्तीय भाषाओं में अनूदित होकर यह खेला गया है।'[१]

यह नाटक प्रसिद्ध लुटेरे नादिरशाह के भारत आक्रमण की घटना पर आधारित है। नादिरशाह के आक्रमण के समय असंगठित भारतवासी, आपसी द्वेष के कारण उसका मुकाबला करने में असमर्थ रहते हैं। केवल निम्न वर्ग ही वीरतापूर्वक उसका मुकाबला करता है। मूर्तिकार मनजीत रतलबूक नादिरशाह के चढ़ाई करने की बात सुनते ही अधूरी मूर्ति छोड़कर युद्ध में जाने को उद्यत होते हुए कहता है—'मुल्क के दरवाजे पर दुश्मन आकर खड़ा हो जाता है तब कलाकार अपनी कला को, पंडित अपनी पूजा को, नमाजी अपनी इबादत को भूलकर, किसान व्यापारी को, साहूकार लालच को छोड़कर, प्रेमी अपनी प्रेयसी को त्याग कर एक हो जाते हैं। .... ऐसा करना ही पड़ता है।'[२]

नादिरशाह द्वारा अपने सिपाहियों को कत्लेआम का आदेश दिये जाने के बाद अन्धाधुन्ध कत्लेआम शुरु हो जाता है। घायल मनजीत को उसकी पत्नी खोज निकालती है, किन्तु गोपीनाथ एवं रफीउद्दीन की अथक सेवा-सुश्रूषा से भी वह बच नहीं पाता। शोकाकुल जानकी पति के साथ ही आत्महत्या कर प्राण दे देना चाहती है, किन्तु रफीउद्दीन उसे ऐसा नहीं करने देता और उसे यह संदेश देता है—'तुम एक शहीद की बीबी हो, जिस फर्ज पर उसने जान दे दी उसी धर्म के लिए तुम्हें जिन्दा रहना है। इस बच्चे को जन्म देकर देश में एकता की अमर ज्योति जगानी है, जिससे मुल्क में यह तबाही और बरबादी फिर से न हो। नये हिन्दुस्तान तक सन्देश पहुँचाया जायेगा कि एकता ही हमारे मुल्क की जिन्दगी है और फूट हम सबकी मृत्यु।[३] वास्तव में यही सन्देश लेखक का भी पाठकों को देना अभीष्ट है या यही नाटक का उद्देश्य है।

---

१. हिन्दी नाटक कोश, डा. दशरथ ओझा।

२. अधूरी मूर्ति, पृ. ३३।

३. अधूरी मूर्ति, पृ. ८६।

चार अंकों में पूर्ण यह नाटक एक ही सेट पर लिखा गया है। संकलन त्रय का विशेष ध्यान रखा गया है, इसकी अभिनेयता के सम्बन्ध में लेखक के विचार—'एक ही सेट के प्रयोग से बहुत से आवश्यक सामान और कीमती समय की बचत होकर नाटक के निर्माण का व्यय कम हो जाता है। यही नहीं, नाटक को समझने के लिए भी दर्शकों का मन इधर-उधर नहीं भटकता। एक ही स्थल के होने से उसके चित्त की एकाग्रता नहीं टूटती। इसका सेट राजदुर्ग, राजभवन और राजपथ से दूर एक चौराहे का चुना गया है।'[१]

प्रस्तुत नाटक में एक समूहगान भी बड़ा मर्मस्पर्शी रखा गया है, जो सैनिकों के जाते समय नेपथ्य से सुनाई देता है। नाटक के पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। मनजीत, जानकी, रफीउद्दीन, गोपीनाथ तथा सआदत खाँ मुख्य पात्र हैं।

रफीउद्दीन मूर्तिकार है, जिसने अपनी तलवार को मूर्तिनिर्माण की छेनियों में बदल दिया है। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक है। उसकी मान्यता है कि खुदा ने न किसी को हिन्दू पैदा किया है, न मुसलमान। वह कला को मजहब मानता है। उसकी दृष्टि में सबसे बड़ी कला है—तन-मन-धन की सादगी और सच्चाई। मनजीत उच्च कोटि का मूर्तिकार है—'वह पत्थर पर जब किसी फूल की पंखुड़ी या औरत के होंठों को उभार देता है तो उस पर भौंरे मंडराने लगते हैं।'[२] मनजीत के मन में मानवता की ज्योति जलती रहती है; इसके साथ ही उसमें देशप्रेम की अटूट भावना है। मनजीत एवं रफीउद्दीन के संवादों से नाटककार ने धर्म-समन्वय का आदर्श विचार प्रस्तुत किया है।

जानकी एक पतिव्रता हिन्दू नारी है, जो सहर्ष पति को देशरक्षा हेतु भेजती है। पति की मृत्यु के बाद उसके उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु जीवित रहती है।

इन प्रमुख पात्रों के अलावा चुन्नी, रसतूक, मरबाई चुन्नी की बेटी व अब्दुल गफूर है। आलोच्य नाटक की भाषा अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दों से भरी है, स्वयं पंत जी के विचार—'कठिन भाषा, निबंध, काव्य, उपन्यास, कहानी की शोभा बढ़ा सकती होगी, नाटक में तो वह भ्रम ही फैलाती है। संसार के अनेक विख्यात साहित्यकारों ने सरल से सरल भाषा लिखकर अपनी कृतियों को सरल बनाया है।'[३] इस प्रयास में लेखक को सफलता मिली है। सरल भाषा के माध्यम से उदात्त विचारों का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

पंत जी के संवाद संक्षिप्त, चुटीले और नाटकीयता उत्पन्न करने के लिए सजीव बन पड़े हैं। आपके नाटकों में मर्मस्पर्शी स्थल स्थान-स्थान पर पाठक को प्रभावित करते हैं।

(ख) गुरुदक्षिणा

पौराणिक नाटकों में पंत जी का यह नाटक साठोत्तर नाटकों में प्रमुख स्थान का अधिकारी है। यह नाटक महाभारत के द्रोणाचार्य-एकलव्य शीर्षक से उद्धृत है।

---

१. अधूरी मूर्ति, पृ. १३।
२. अधूरी मूर्ति, प्रस्तावना, पृ. २०।
३. अधूरी मूर्ति, प्रस्तावना, पृ. १०।

बाल्यकाल के सहपाठी निरंकुश शासक पांचाल नरेश के द्वारा अपमानित द्रोण के मन में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी। इसी प्रतिशोध की भावना से वशीभूत होकर द्रोण कुरुवंश के राजकुमारों के आचार्य बन जाते हैं।

भील युवक एकलव्य अर्जुन के समान धनुर्धारी बनने का स्वप्न देखता द्रोणाचार्य के पास आता है, किन्तु दम्भी गुरु उसे शूद्र कहकर अपमानित ही नहीं करते, वरन् उसे शिष्य रूप में भी नहीं स्वीकारते। लगन का पक्का एकलव्य गुरु की प्रतिमा बनाकर जंगल में अभ्यास करने लगा। एक दिन द्रोणाचार्य के साथ राजकुमार आखेट खेलने उसी स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ एकलव्य की साधना स्थली है।

शब्दभेदी बाण से राजकुमार के कुत्ते का मुँह बंद कर एकलव्य उन्हें द्रोणाचार्य का शिष्य बताता है, जिससे अर्जुन चिंतित हो जाते हैं। उसका समाधान होता है गुरु द्वारा एकलव्य के दाहिने हाथ का अँगूठा माँग कर।

द्रुपदनरेश जंगल में आखेट करते समय अर्जुन द्वारा घेर लिया जाता है। द्रोण उसे मृत्युदण्ड नहीं देते; बल्कि उन्हें अपनी करनी स्मरण हो आती है—'मैं द्रुपद के दर्द को मिटा देना चाहता था, क्योंकि उसने दरिद्र भिखारी कहकर मेरा तिरस्कार किया था, पर क्या स्वयं मैंने भी एकलव्य को नीच शूद्र कहकर वैसा अपराध नहीं किया था? और जब इस समय साधक ने शब्दभेद का रहस्य जानकर सिद्ध कर दिया कि विद्या कोई भी प्राप्त कर सकता है, चाहे वह किसी जाति या वर्ण का क्यों न हो तो मैंने उसका अगूँठा कटवा दिया। तभी से मेरे मन में एक भीषण अर्न्तद्वन्द्व मच गया। धीरे-धीरे यहाँ पर दिव्य प्रकाश फैला और मुख पर यह स्पष्ट हो गया कि हमें किसी दूसरे को दर्प में नष्ट करना नहीं हैं। हमारा अहंकार ही हमारा शत्रु है, उसी को मिटाना है।

द्रुपद एकलव्य की महानता के बारे में कहता हुआ द्रोण के चरणों में गिर जाता है। द्रोणाचार्य उसे गले लगाते हैं। सभी लोग एकलव्य को प्रणाम करते हैं, जो हार कर भी जीत गया है।

कथानायक पौराणिक कथा के साथ-साथ लेखक की कल्पना को भी चित्रित करता है। कौतूहल अन्त तक बना रहता है।

यह नाटक तीन अंकों में है। दो सेटों के माध्यम से इसे मंचित किया जा सकता है। इस नाटक में पात्र मात्र १२ हैं—द्रुपद, द्रोणाचार्य, अपरा, अपरा की अंधी माता, अर्जुन, विशाल, कमालिनी, युधिष्ठिर, एकलव्य एवं भीम।

एकलव्य परिश्रमी, त्यागी, वीर, दयालु एवं आत्मविश्वासी पात्र है, इसके साथ ही सराहनीय है उसकी गुरुभक्ति। द्रोणाचार्य, एक दर्पीले, क्रोधी और प्रतिशोध की ज्वाला में जल रहे ब्राह्मण के रूप में चित्रित हैं। द्रुपद भी दर्प से भरा घमण्डी है, किन्तु नाटक के अन्त में उसका हृदयपरिवर्तन हो जाता है। शेष पात्रों का चरित्र उतना नहीं हो पाया है, मात्र कथाविकास में सहायक हैं।

स्त्रीपात्रों में अपरा का चरित्र-चित्रण विशेष रूप से हुआ है, जो एकलव्य को प्रेरणा देती है। एकलव्य के शब्दों में—'नारी के प्रेम ने और मनुष्य की घृणा ने मुझे दी सिद्धि।'[१]

नाटक की भाषा सहज एवं बोधगम्य है, पंत जी एक सफल निर्देशक भी हैं। उनकी दृष्टि में—'नाटक की सार्थकता प्रेस के माध्यम से छपकर पुस्तक के रूप में अवतरित हो जाना नहीं है। इसकी कसौटी है—रंगमंच। जहाँ एक बार के अभिनय से वह हजार दर्शकों का मनोरंजन भी करता है और उनकी भावात्मकता को संस्कार और प्रौढ़ता देता है। दुरूह भाषा और जटिल वाक्यों के दुर्बोध से उसकी गम्भीरता नहीं बढ़ती और वह रंगमंच पर जीवित नहीं रह सकता।'[२]

यह नाटक सफल अभिनेय नाटकों में है। पात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक अभिनय दर्शकों को प्रभावित करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए हैं। नाटक का उद्देश्य—'गुरुदेव आशीर्वाद दीजिए; धनी-निर्धन में साम्य हो, गुरु-शिष्य में भक्ति और ऊँच-नीच में एकता हो, जातियों का भेद समाप्त हो।'[३] इसके अतिरिक्त स्त्रीपात्र अपरा के स्वर में—'मैं तुम्हें सावधान करती हूँ। अरे ! सम्पत्ति और कुल अभिमानियों, शूद्रों को पददलित कर उनके श्रम पर अपनी सत्ता ऊँची करने वाली, यदि तुम्हारी यही घृणा रही तो तुम्हारा यह धर्म और संस्कृति एक दिन समाप्त हो जायेगी।'

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि यह लेखक का आदर्शवादी नाटक है, जिसमें लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

(ग) अँधेरी बस्तियाँ

यह एक सामाजिक नाटक है। प्रकाश नामक समाज-सेवक ग्राम-प्रधान की लड़की अंजना से प्यार करता है। प्रकाश उसे भगा कर ले जाना चाहता है, किन्तु अंजना पिता को छोड़कर नहीं जाती। यही नहीं, वक्त आने पर प्रेम की बागडोर भी झटक देती है। अंजना उससे कहती है—'वह नारी के चमड़े से प्रेम करता है और यह चमड़ा प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया गया एक धोखा है' जो गाँव प्रजा को अन्न देता है, उसकी मिट्टी के प्यार को वह श्रेष्ठ समझती है। ....यदि उसे शहरों से इतना ही मोह है तो वह क्यों नहीं गाँव को ही साफ-सुथरा एवं स्वर्ग बना देता ?

गाँव में शूद्र भरोसे की झोपड़ी जल जाती है। उसे शंकर पुजारी मन्दिर के पास रहने भी नहीं देता, किन्तु उसकी बीमारी में भरोसे मानवता के नाते उसकी भरपूर सेवा करता है, इससे प्रभावित होकर शंकर उसे पुत्रवत् मानता है।

प्रकाश पंचवर्षीय योजनाओं से ग्राम-सुधार के कार्य में लगा रहता है। इस नाटक में गाँवों में बसे ग्रामीणों एवं उनकी संकीर्ण मनोवृत्तियों का चित्रण कर उदार

१. गुरुदक्षिणा, पृ. ३३।
२. गुरुदक्षिणा, पृ. ५।
३-४. गुरुदक्षिणा, पृ. ८८-८५।

दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह है। लेखक ने भारतीय ग्रामों में प्यार, अंधविश्वास, धर्मभीरुता का अंधकार चित्रित कर उससे सामाजिक चेतना के प्रकाश में आने की छटपटाहट व्यक्त की है। प्रकाश का नाम ग्रामों में चेतना का प्रकाश फैलाने के अर्थ में सार्थक ही है। प्रस्तुत नाटक चार अंकों में है, किन्तु एक ही दृश्य थोड़ा-बहुत परिवर्तन के साथ चित्रित किया जा सकता है। प्रत्येक अंक के पूर्व मंचन निर्देश भी दिये हैं। कुल १२ पात्र हैं। प्रमुख पात्रों में प्रकाश, शंकर, गणेश, भरोसे और अंजना तथा माया है। पात्र वर्गों के प्रतिनिधि हैं।

संवाद श्रेष्ठ हैं, जो कथानक में गतिशीलता के साथ चरित्र-चित्रण में सहायक हैं। भाषा सरल एवं स्वाभाविक है।

(घ) आत्मदीप

प्रस्तुत नाटक भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित है। 'सांसारिकता से बुद्ध का मन वैरागी होगा' राजकवि की इस भविष्यवाणी से राजा शुद्धोधन बहुत चिंतित थे। उन्होंने राजकुमार को जरा, मरण एवं रोग और संन्यासियों से दूर रखने का प्रयास किया और गौतम का विवाह एक रूपवती यशोधरा नामक कन्या से कर दिया, जिससे उन्हें पुत्र की प्राप्ति भी हुई।

इन प्रयत्नों के पश्चात् भी राजकुमार को संसार के शाश्वत विधान जरा, मरण एवं रोग का पता चल ही गया और वे राजप्रासाद के सारे सुख-वैभव छोड़कर सत्य की खोज में निकल पड़ते हैं।

उषावेला में नीरंजना नदी के किनारे वायु पर आश्रित होकर गौतम तपस्या में लीन हो गये। उनकी तपस्या कामदेव द्वारा भंग नहीं हुई। ग्रामबाला द्वारा गौतम को वनदेवता मानकर पायस खिलाया जाता है। यह देख कर उनके शिष्य उन्हें छोड़कर चले जाते हैं, किन्तु गौतम को यहीं पर बोध प्राप्त हो जाता है, वे मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं।

कपिलवस्तु में विशाल भिक्षु विहार बनवाते हैं। मगधराज विम्बसार भी बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण कर लेता है। बस्ती में माता गौतमी तथा यशोधरा ने निर्वाण प्राप्त कर लिया। अंगुलीमाल डाकू बुद्ध का तेज देखकर उनका शिष्य बन जाता है। उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है।

नाटक के अन्त में अजातशत्रु, शीलभद्र व उनका अवैध पुत्र भी बुद्ध की शरण में आ जाते हैं। सभी लोगों को संघ का कार्य सौंप कर बुद्ध यात्रा में निकल पड़ते हैं। कथानक बौद्धकालीन, ऐतिहासिकता पर आधारित है। संसार की असारता एवं आत्मज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। ऐतिहासिक सत्य के साथ कल्पना का सामंजस्य किया गया है।

कथानक को पाँच अंकों में तथा चार दृश्यों में विभाजित किया गया है। घटना ऐक्य के साथ संकलनत्रय का निर्माण सफलता से किया गया है। दार्शनिक एवं विस्तृत

संवादों के बीच हास्य का पुट भी मिल जाता है। पात्रों की संख्या अधिक होने से अभिनय में कठिनाई होती है। नाटक की प्रस्तावना में लेखक इसे प्रसाद और व्याकुल जी की प्रेरणा मानता है—'मैं प्रसाद और व्याकुल जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से मैंने इस नाटक को लिखा है।'[१] सम्पूर्ण नाटक बौद्धकालीन सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। आज की वर्तमान हिंसात्मक प्रवृत्ति को रोकने के लिए बुद्ध के जीवन से प्रेरणा लेना श्रेयस्कर है।

(ङ) तुलसीदास

'तुलसीदास' नाटक का कथानक पंत जी ने तुलसीदास के जीवन से सम्बद्ध अनेक किंवदन्तियों को जोड़कर बनाया है। स्वयं लेखक के शब्दों में—'नाटक इतिहास नहीं है, न ही कल्पना बिल्कुल असम्भव व मिथ्या। महापुरुषों के जीवन से अनेक किंवदन्तियाँ सम्बद्ध हो जाती हैं, जो इतिहास से अधिक सच जान पड़ती हैं। ऐसा ही कुछ लोककथाओं के सहारे इस नाटक का कथाभाग बुना गया है। महाकवि के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए कुछ नये पात्रों की कल्पना की गई है तथा नाटक की पराकाष्ठा को उभारने के लिए कुछ घटनाएँ भी।'[२]

काशी के महन्त पद से त्याग-पत्र देने के बाद तुलसीदास द्वारा रचित पाँच काण्ड काशी के पंडितों के षड्यंत्र से बालचन्द्र तथा ब्रह्मदत्त द्वारा चुरा लिये गए। इससे महाकवि का मन व्यथित हो गया। अपने अनुचर एवं प्रेत के अनुरोध पर बाद के दो काण्ड निर्मित करने में लग गये। प्रथम पाँच काण्ड बालचन्द्र एवं ब्रह्मदत्त से बटमार हरिहर मार लेता है और वे किसी तरह रागिनी के पास पहुँच जाते हैं। इसी बीच तुलसीदास रोगग्रस्त होकर लिखने में असमर्थ हो गये। वे अपने महाकाव्य को पूरा न करने के कारण आत्महत्या का विचार कर गंगा में कूदना चाहते हैं। इसी समय रागिनी आकर रोक लेती है और पूर्व रचित पाँचों काण्ड उसे दे देती है। फिर रहस्य भी खुल जाता है कि रागिनी ही रत्नावली है। बटमार भी तुलसीदास से क्षमा मांगते हैं। रागिनी के क्षमा मांगने पर तुलसीदास कहते हैं—'क्षमा कैसी ? तुम उपास्य नहीं, स्वयं मूर्तिमती उपासना हो। तेरी जय हो नारी। तू मनुष्य के जीवन की पूरक है। तेरा ही प्रकाश पाकर वह परिपूर्णता प्राप्त करता है। तुझे क्षणिक विलास की प्रतिमा समझना पाप है।'[३] इन्हीं शब्दों के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

रचनाकार ने पूर्व दीप्ति शैली से तुलसीदास के जन्मसम्बन्धी घटनाओं का भी विवरण दिया है। इसमें संकलनत्रय तथा अभिनेयता का ध्यान रखा गया है। कौतूहल लाने के लिए आकस्मिक घटनाओं का सहारा लिया गया है। मात्र पाँच पात्रों की सहायता से सम्पूर्ण नाटक मंचित हो सकता है। तुलसीदास निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित हैं।

---

१. आत्मदीप, प्रस्तावना, पृ. ८।

२. तुलसीदास, वक्तव्य, गोविन्दवल्लभ पंत।

३. तुलसीदास, दो शब्द।

रागिनी एक आदर्श पत्नी की तरह पति के सुख-दुःख में छाया की तरह उनका साथ देती है और अनेकों कष्टों को झेल जाती है। बटमारों के हृदय परिवर्तन में गाँधी-दर्शन का प्रभाव है। सम्पूर्ण नाटक एक ही दृश्य में मंचित हो सकता है। स्वयं पंत जी के शब्दों में—'सुगमता से रंगमंच पर प्रदर्शित हो सकने वाला नाटक ही पढ़ने में भी पाठकों के मन में स्पष्ट चित्र अंकित कर सकता है। उलझे हुए कथानक और शब्दों के आडम्बर पाठकों के मन में भ्रम और त्रास उपजा कर कोई मार्ग नहीं दिखा सकते।'[१] एक अन्य स्थान पर नाटक के उद्देश्य पर भी लिखते हैं—'नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, उसका परम उद्देश्य हमारे भीतर उदात्त भावनाओं को जागृत करना है।'[१]

वास्तव में लेखक प्रस्तुत नाटक में अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

(च) पन्ना

यह नाटक लेखक के 'राजमुकुट' का ही रूपान्तर है। इस नाटक के संबंध में डॉ. मधुकर भट्ट के विचार—'राजमुकुट लिखने के बाद पंत जी संभवतः डॉ. राजकुमार वर्मा के एकांकी 'दीपदान' से बहुत प्रभावित हुए होंगे, जिसके परिणामस्वरूप उसी कथा को पन्ना के रूप में लिखा।' लेखक के शब्दों में—राजमुकुट और पन्ना में मात्र पात्र वे हैं, किन्तु शब्द एवं वाक्यों में सर्वथा परिवर्तन है—'पन्ना' नाटक राजमुकुट नाम से गाँधी-आश्रम ताड़ी-खेत जनपद अल्मोड़ा में सन् १९२८ में लिखा गया था। सन् १९३० में इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया। पन्ना नाटक में राजमुकुट के प्रायः सभी पात्र हैं, पर उस नाटक का ज्यों का त्यों एक भी वाक्य नहीं है।'[२]

'पन्ना' नाटक वीरांगना पन्ना धाय की स्वामिभक्ति की पराकाष्ठा की कहानी है, जो स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने जिगर के टुकड़े की आत्माहुति देकर मेवाड़ की वंशवेली को नष्ट होने से बचा लेती है। पन्ना धाय की आदर्श देशभक्ति, त्याग एवं बलिदान राजस्थान की महिलाओं के आदर्श की वीरगाथा है।

बरवीर के सभी षड्यन्त्रों को अपने त्याग, साहस एवं कुशलता से विफल करने वाली पन्ना धाय नाटक की केन्द्रबिन्दु है।

ऐतिहासिकता के साथ ही इसमें कल्पना का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। इस नाटक की सम्पूर्ण कथा तीन अंकों में बिखरी है। दृश्य एक ही है—पन्ना धाय का कक्ष। पन्ना धाय का चरित्र-चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है। शेष सभी पात्र सहायक हैं। संवाद सुसंगठित एवं भाषा सरल तथा सरस है।

इस नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। सामंती व्यवस्था के कारण राजघरानों में सत्ता-लोलुपता एवं जीवन मूल्यों का ह्रास भी चित्रित है। किस प्रकार सत्ता के चकाचौंध में व्यक्ति अंधा होकर अपने ही शोणित से कैसी होली देखने को तत्पर है।

---

१. तुलसीदास, दो शब्द।

२. पन्ना, लेखक का वक्तव्य।

(छ) अहंकार

प्रस्तुत नाटक में मानव का प्रकृत्ति के उपादानों से टकराने का दम्भ वर्णित है और अन्ततः मनुष्य प्रकृति को जीत नहीं पाता और आत्मज्ञान होने पर उसका दर्प समाप्त हो जाता है। संसार में व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने के उद्देश्य से डॉ. नीलकण्ठ वैज्ञानिक समाधान ढूँढते हैं। दो गुरिल्लों पर इसका प्रयोग भी करते हैं। काबेरी नर्स एवं बिहारी कम्पाउण्डर की सहायता से एक चिकित्सालय खोलते हैं। डॉ. की पत्नी द्वारा अपमानित होने पर काबेरी डॉ. नीलकण्ठ की नौकरी से त्याग-पत्र दे देती है और सेठ जुगल किशोर से विवाह कर लेती है। काबेरी के बीमार होने पर डॉ. नीलकण्ठ उसका इलाज करने से असमर्थता व्यक्त करता है। जुगल इसी हालत में पत्नी को छोड़कर विदेश चला जाता है।

इधर डाक्टर काबेरी में पुरुष हारमोन्स की वृद्धि कर उसे पुरुष बनाने का प्रयास करता है। काबेरी का बहुत कुछ व्यवहार भी पुरुषोचित होने लगता है। एक दिन काबेरी डाक्टर की आँखों में दवा के बहाने तेजाब डाल देती है।

इसी बीच जुगलकिशोर वापस आ जाता है। काबेरी के व्यवहार को विद्युत मशीन से बदलने के कारण डाक्टर को धिक्कारता है। अहंकारी डॉक्टर अपनी भूल को स्वीकार करता है और काबेरी की मदद से पुनः अस्पताल खोलकर दुःखियों की सेवा का व्रत लेता है।

यह नाटक मनोवृत्तिप्रधान नाटक है। पात्रों में निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। अनेक अंकों के होते हुए भी यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से सरल है। नाटक में प्राचीन नाट्य-परम्परा सूत्रधार आदि के प्रयोग के साथ पाश्चात्य नाट्य परम्परा का भी सहारा लिया गया है। नाटक दुःखान्त है।

'अहंकार' समसामयिक समस्या को लेकर लिखा गया नाटक है। इस नाटक पर नियतिवाद का भी प्रभाव देखा जा सकता है। इसके साथ ही प्रकृति को बदलना मनुष्य के वश की बात नहीं है। प्रकृति से टकराकर निराशा ही हाथ लगती है। भाषा की दृष्टि से इसमें प्रचलित आंग्ल भाषा के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

पंत जी वास्तव में एक सफल नाटककार ही हैं।

बृजमोहन शाह

कूर्मांचल साहित्यकारों ने नाटकों पर कम लेखनी चलाई है। गोविन्द वल्लभ पंत के बाद बृजमोहन शाह ही प्रमुख नाटककार हैं, यानि इसके बाद आठवें दशक में डॉ. रमेश शाह, ब्रजेन्द्र शाह एवं मृणाल पाण्डेय ने भी अच्छे नाटक लिख कर नाटकों के भण्डार को समृद्ध करने में सराहनीय योगदान दिया है और भविष्य में भी इनसे अच्छी आशा है।

नाटककार बृजमोहन शाह जी नाटककार होने के साथ ही कुशल निर्देशक एवं अभिनेता भी हैं। 'त्रिशंकु', 'शह ये मात' तथा 'युद्धमन' इनके प्रकाशित नाटक हैं।

त्रिशंकु

यह शाह जी का प्रथम नाटक है। विवेच्य नाटक एक ही अंक का तथा एक ही दृश्य विधान में निर्मित है। नाटक के प्रारंभ में रंगला-रंगली मंच पर आकर हास्य-व्यंग्य द्वारा राजा के सम्मुख किसान का अभिनय कर आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रार्थना करते हैं, किन्तु राजा मांग स्वीकार नहीं करता। पुन: वे निम्न मध्यवर्गीय आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान की मांग करते हैं और विद्यार्थियों के अधिकारों की मांग करते हैं। राजा दरबार से दुत्कार देता है और उन्हें हटाने का आदेश देता है। इसके बाद उच्च वर्गीय पात्र एक-एक कर आकर अपने कार्यों का बखान करते जाते हैं; किन्तु थियेटर वाला उन्हें पात्रता के अयोग्य घोषित करता है।

इसके बाद मध्यमवर्गीय पात्र युवती, सिपाही, ज्योतिषी और बाबू आते हैं। थियेटर वाला उन्हें भी अयोग्य घोषित करता है। इसके बाद निम्नवर्गीय पात्र मजदूर, विज्ञापक, चपरासी आते हैं। उनकी दीनता को देखकर उन्हें भी नाटक के अयोग्य घोषित करता है।

इसके बाद वर्गहीन बुद्धिजीवी पात्र आते हैं। डिग्रियों, साहित्य, विज्ञान आदि की चर्चा कर नाट्य अभिनय का दावा करते हैं। इसी बीच थियेटर वाले को तीनों वर्ग की धमकी मिलती है। बुद्धिजीवी उसका प्रतिवाद करता है।

अन्तत: नाटक प्रारंभ हो ही जाता है। निम्नवर्गीय पात्र यथार्थ जीवन की विसंगतियों का प्रदर्शन करते हैं—'चपरासी विना सिगरेट लिए युवक को साहब तक नहीं पहुँचने देता, युवती को साहब नाइट शो पिक्चर चलने को कहता है।'[१] इसी प्रकार ज्योतिषी, सेठ, युवती, मजदूर, पुलिसवाला, भिखारिन आदि अपने-अपने स्तर के अनुसार वार्तालाप करते हैं तथा एक-दूसरे के जीवन को निरर्थक सिद्ध करते हैं। सभी बुद्धिजीवी को त्रिशंकु की संज्ञा देते हैं।

अभिनय की दृष्टि से नाटक में कुछ कमियाँ हैं। १८ पात्रों को एक साथ मंच पर उपस्थित करना कठिन है। किन्तु नाटककार इसका समाधान प्रस्तुत करता है कि डबलरोल करने पर कुछ पात्र कम हो जायेंगे।

आलोच्य नाटक में सभी वर्गों की समस्याओं का उद्घाटन किया गया है—'नाटक का काम समस्या का समाधान करना नहीं, वरन् समस्या का एहसास कराना है। समाधान के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक मंच है; रंगमंच नहीं।'[२] नाटक में सामाजिक विसंगतियों को उठाया गया है। साथ ही बुद्धिजीवी-वर्ग की निरर्थकता भी अभिव्यंजित हुई है। उसके संबंध में थियेटर वाले का कथन—'अपना उल्लू सीधा करने के लिए तुमने इसे नामसझ कहा....कनफ्यूज्ड करके त्रिशंकु बना रखा है। तुम सब विरासत की गहरी लीकों पर चलने वाले बेबुनियाद मकानों के वासिन्दे हो।' सभी

---

१. त्रिशंकु, भूमिका, बृजमोहन शाह।
२. त्रिशंकु, भूमिका।

वर्गों को सम्बोधित कर कहता है—'तुमने थोथी कागजी तालीम देकर, तुमने इसे महत्त्वाकांक्षा की बर्फीली मीनार पर बैठा रखा है, अब इसकी मान्यताओं को कुचल कर इसको अपनी लीक में डालना चाहते हैं। तुम सब क्रिमिनल हो, महापापी हो।'[१]

प्रस्तुत नाटक में बेरोजगार युवक का उपहास एवं उसकी विवशताओं को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। शिक्षित बेरोजगार ठोकरें खाते-खाते आत्महत्या पर विवश है, पर आत्महत्या भी कर नहीं पाता। कैसा व्यंग्य है—'बस इतनी-सी मेहरबानी कर कि तू सिर्फ तीन माह और जिन्दा रहना। मेरे साथ मेरे घर में रह, मुझे पिता और मेरी बीबी को माँ कहा कर।

युवक—जी।

आदमी–सुन मैं तेरा एक लाख रुपये का जोखिम वाला बीमा कराऊँगा और तीन महिने बाद तुझे एक्सिडैन्ट में मरवा दूँगा। मुझे दो लाख रुपये मिल जायेंगे और तेरा भी काम हो जायेगा।'[२]

इस प्रकार आज का युवक जिजीविका की दौड़ में त्रिशंकु की तरह लटक कर रह गया है। यही उसकी नियति है। बेरोजगार युवक का बड़ा सजीव, यथार्थ एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

शह ये मात

प्रस्तुत नाटक एक विशिष्ट मनोवृत्ति के लोगों के जीवन पर आधारित है, साथ ही बेमेल विवाह एवं उसके दुष्परिणामों का भी चित्रण करता है। किस तरह शंका का सर्प जीवन को विषवत् कर देता है।

सेवामुक्त अपाहिज कप्तान पत्नी से इस कारण नाराज रहता है। वह मकान में रह रहे युवक के साथ हँसती-बोलती है तथा वह युवक कप्तान के साथ शतरंज भी नहीं खेलता। एक नये आगन्तुक को मकान किराये पर देना चाहता है, पर पत्नी को यह पसन्द नहीं। अपाहिज कप्तान को अपनी पत्नी पर हमेशा शंका बनी रहती है। इसी कारण बात-बात पर वाक्युद्ध चलता रहता है। कप्तान रसगुल्ला खाने को मांगता है। किन्तु शुगर की बीमारी के कारण वह उसे नहीं देती। वह दवा भी गुस्से में ग्रहण नहीं करता। सामान्य घरेलू छोटी-मोटी बातों पर रात-दिन चक-चक होती रहती है।

इसी बीच एक आडम्बरी आगन्तुक प्रवेश करता है। पत्नी उसकी बातों में आकर उसके साथ बद्रीनाथ की यात्रा कर तैयार हो जाती है। कप्तान अपनी अतीत की बातों में डूब जाता है और पत्नी को भी धमकी देता है कि वह पर्वतारोहण को जायेगा, किन्तु उसकी विवशता उसे कुछ करने नहीं देती। लड़का उस आडम्बरी आगन्तुक को पाखण्डी ठहराता है। इसी बात पर कप्तान की पत्नी से वह भी नाराज हो जाता है।

---

१. त्रिशंकु, पृ. ५४।

२. त्रिशंकु, पृ. १०१-१०२।

अब लड़के और कप्तान में शतरंज जम जाता है। आगन्तुक लड़के का अतीत जान लेता है कि वह खूनी सरदार है। वेश बदल कर रह रहा है। इस बात के खुलते ही लड़का फरार हो जाता है। कप्तान का रहस्य भी खुल जाता है तथा आगन्तुक भी अपना संकेत में परिचय देता हुआ गायब हो जाता है। सभी पात्र विचित्र कुण्ठाओं से ग्रस्त एवं अतीत के असफलता-सफलता पर पर्दा डाले वर्तमान समय में भी द्वन्द्वग्रस्त एवं अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। स्वयं लेखक के विचार—'जो सभी जी रहे हैं'—रीति-रिवाज, बीती इच्छा असफलताओं के संत्रास में स्व को समझने-समझाने के तनावपूर्ण वर्तमान में, एक का रूप त्रास के विसंगत परिवेश में यह जीना व्यक्तिगत हो तो, दाम्पत्य गत हो तो, वर्गगत हो तो, अवस्थागत हो तो, परिस्थितिगत हो तो, सभा-जगत हो तो सभी अतीत की असफलताओं और भूलों के उग्र वर्तमान में अनिश्चित भविष्य में जी रहे हैं।'[१]

विवेच्य नाटक अभिनेय की दृष्टि से सफल है। तीन अंकों में नाटक पूर्ण हुआ है। एक ही सेट एक ही दृश्य के माध्यम से नाटक मंचित किया जा सकता है। मुख्य रूप से बेमेल विवाह की समस्या को उभारा गया है। विकलांग कप्तान पत्नी पर संदेह करता है, किन्तु विवशतावश कुछ भी कर पाने में असमर्थ है। अतीत की स्मृतियों एवं वर्तमान विवशता के बीच पिस कर रह जाता है। उसकी स्थिति 'यह दशा कर दी मेरी, जो मार खा रोये नहीं' की हो गयी है।

युद्धमन

यह बड़ा लोकप्रिय नाटक रहा। अकेले दिल्ली में ही दो माह के अन्दर इस नाटक के ग्यारह प्रदर्शन हुए। नवम्बर-दिसम्बर १९७२ में युद्ध की विभीषिका का वर्णन ट्रांजिस्टर एवं दूरदर्शन के माध्यम से समाचार दिया जाता है। दो देशों का परस्पर युद्ध एवं महाशक्तियों का शस्त्र सहायता का संकेत मिलता है।

इसके बाद प्रथम दृश्य एक अदालत का है, जिसमें लेफ्टिनेण्ट के ऊपर चल रहे केश की चर्चा है, जिसमें ५०० सिविलियन्स की मौत के घाट उतारने वाले लेफ्टिनेंट को डिफेन्स काउंसिल दोषी नहीं मानती, वरन् वह प्रत्येक युद्ध करने वाले को दोषी ठहराती है।

दूसरा दृश्य शरणार्थी शिविर का है। जहाँ एक सिपाही किसी को कम्बल बेचते पकड़ता है और उसे शिविर के बाहर कर देता है। गाँव के लोग शरणार्थियों की सुविधा का विरोध करते हैं।

तीसरा दृश्य युद्धक्षेत्र का है। युद्धबन्दी सैनिकों से जानकारी लेने का प्रयास तथा बन्दी की हत्या तथा दूसरे की चौकसी से ऊब का चित्रण है। कैप्टन का आगमन एवं मेजर के आदेश की घोषणा भीषण गोलावारी असंख्य सैनिको का हताहत होना एक दहशत फैल जाती है। मेजर कैप्टन को, कैप्टन सिपाहियों का ढाढस बंधाता है। चौथे

१. शह ए-मात, भूमिका।

दृश्य में एक महिला तीन बच्चों को खाना खिला रही है, पापा अखबार पढ़ रहे हैं, जिसमें युद्ध की विभीषिका का वर्णन है। साथ ही महान् शक्तियों के अस्त्र-शस्त्रों के विक्रय का समाचार है।

पाँचवें दृश्य में अवकाश पर घर गये सैनिकों को युद्ध में जाने की विवशता है। छठें दृश्य में वृद्ध के तीसरे लड़के के शहीद होने का कारुणिक दृश्य, युद्ध के परिणाम के रूप में प्रस्तुत होता है। सातवें दृश्य में दुकानदार आता है। फौजियों को मुफ्त सामान देने का फरमान लेकर, पर मौखिक रूप में वह कहता मात्र है। व्यवहार में ब्लैक करता है। आठवें दृश्य में घूसेबाज और उसका शिक्षक आता है। नवाँ दृश्य पुनः युद्ध क्षेत्र का है। कैप्टन युद्ध की योजना बनाता है। पानी के विषय में विवाद पर एक सैनिक दूसरे सैनिक को गोली मार देता है। दशवें दृश्य में बुद्धिजीवियों की सभा किन्तु आपस में संघर्ष से समाप्त हो जाती है। ग्यारहवाँ दृश्य नाटक का अन्तिम युद्ध के परिणामों को प्रदर्शित करता है। मेजर, कैप्टन मारे जाते हैं, लेफ्टिनेंट पागल हो जाता है। यही तो युद्ध का फल होता है।

इस प्रकार युद्धमन विश्वयुद्ध की विभीषिका दिखलाकर शान्ति प्रयासों की ओर संकेत करता है। विश्वयुद्ध की भयावहता कल्पनातीत एवं युद्ध के बाद देशों की दयनीय दशा तो स्वाभाविक ही है। स्वयं लेखक के शब्दों में—'युद्ध से बुरी बात इन्सान की जिन्दगी में दूसरी नहीं होती। अगर बात युद्ध के वक्त तक मर्यादित रहती तो तसल्ली रखी जाती; परन्तु युद्ध के बाद हालत और भी भयंकर होती है। युद्ध एक ऐसी मूर्खता, मानव हत्या का बर्बर उन्माद, पुनरावर्ती विध्वंसक है, जो मानव सभ्यता को पंगु कर नाशोन्मुख करता है। सही अर्थ में युद्ध किसी भी राष्ट्र के लिए आत्महत्या है।'[१]

विवेच्य नाटक की मंचीयता पर विचार करता हुआ लेखक कहता है—'पीछे विशाल गगनिका, गगनिका के आगे एक स्क्रीन जिस पर दृश्यों के बदलने के साथ युद्ध की भयावह तस्वीरें प्रोजेक्ट होकर गुजरती रहती है। जो युद्ध के कारण, कार्य व परिणामों को चित्रित करती है।'[२]

यह नाटक समसामयिक चिन्ता को लेकर लिखा गया है, जो युद्ध की विभीषिका से बचने का सन्देश देता है। उद्देश्य के साथ-साथ नाटकीय कला में भी नाटक खरा उतरता है।

ब्रजेन्द्रलाल शाह

ब्रजेन्द्रलाल शाह जी मुख्य रूप से नाटककार हैं। ये नाटकलेखक ही नहीं, वरन् एक कुशल निर्देशक और अभिनेता भी हैं। उनके अब तक १६ से ऊपर नाटक मंचित हो चुके हैं। प्रमुख निम्न हैं—

---

१. युद्धमन, भूमिका।
२. युद्धमन, मंचन विन्यास।

अष्टावक्र नाटक[1]

पौराणिक कथानक पर आधारित होते हुए भी पुरुषप्रधान समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा का सजीव चित्रण करता है, सुजाता के शब्दों में—

'यही बात तो अंकशायिनी को भ्रूणवाहिनी बनाकर भूल जाती है, पुरुषों की जात ....एक अभावग्रस्त गर्भवती की भूखी कराह नहीं सुनाई पड़ती—उसकी दुग्धविहीन माँ अपने सूखे स्तनों को निचोड़ती हुई उस नवजात के गले में दो बूँद दूध टपकाने का असफल प्रयास करेगी.... रह जायेगी, केवल आँसू टपका कर (रोती है।)

युगबोध को युधिष्ठिर के शब्दों में व्यक्त करता हुआ नाटककार कहता है—'मैं समझा था केवल उस द्वापर युग में ही संदीपन के शिष्य सुदामा ऋषि भूखे थे'। वह जब टूटे....विवश दीन होकर पहुँचे द्वारिका नगर में। किसे विदित है। ज्ञानी ध्यानी गुणी सुदामा अब भी कितने ही असंख्य मारे-मारे फिरते हैं। यह द्वापर की बात है, किन्तु त्रेता युग में भी हुए सुदामा यही सुदामा होंगे। संभवत: करोड़ों हो सकता है आने वाले युग में, यही सुदामा वर्ग पनपता ही जायेगा....।'

प्रमुख पात्र अग्निमित्र, सुजाता और उद्दालक तथा अष्टावक्र हैं, भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। नाटक उत्तर-प्रदेश गीत नाट्य अकेडमी द्वारा कई बार मंचित हो चुका है।

महाभारत[2] (१-२ खण्ड)

यह नीति नाट्य है, इसमें युद्ध की विभीषिका एवं युद्ध न करने का संदेश दिया गया है, युधिष्ठिर के शब्दों में—

लड़कर हमको क्या करना है
शान्ति संधि से काम निकाले
व्यर्थ युद्ध लड़ना मरना है
माधव ! हमको क्या करना है।

स्वयं कृष्ण जो गीता में स्वयं अर्जुन को लड़ने का संदेश देते हैं तुम कर्म करो, फल की आशा मत करो। यही कृष्ण नाटक में समन्वयवादी दृष्टिकोण लेकर आते हैं—

कृष्ण तुम्हारा दूत बनेगा
द्वन्द्व न होवे घर के अन्दर
ऐसी युक्त उपाय रचेगा
कौरव पक्ष अगर सम्मति से काम करे तो
महायुद्ध से रणविनाश से
तब ही आर्यावर्त बचेगा।

---

१. अष्टावक्र,—अप्रकाशित नाटक।
२. महाभारत-अप्रकाशित नाटक।

लेखक ने उत्तरा के मुख से युद्ध की निरर्थकता एवं उसकी अपूरणीय क्षति के कारणों को भी व्यक्त किया है—

तुम पावोगे राज्य ऐश्वर्य सम्पदा
कीर्ति पताका दिग् दिगन्त तक फहराएगी
वह दिन आयेगा निश्चित ही, वह आयेगा
किन्तु उत्तरा उस दिन बोलो क्या पायेगी
जब दोनों पक्षों के मरे हुए वीरों का
रुधिर सूख कर रक्त धूलि में परिणत होगा
बोलो उससे चुटकी भर सिन्दूर बना सकता है कोई
मेरी सूनी मांग सजा सकता है कोई ।[१]

भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रवाहपूर्ण है । पाठक या दर्शक को कहीं पर भी समझने में कठिनाई नहीं होती है ।

वन्या

वन्या भी हील यात्रा पर आधारित 'नीति-नाटिका' है, जिसमें लेखक ने प्रदूषण की समस्या पर गहराई से विचार किया है । पहाड़ों में अन्धाधुन्ध वृक्षों का कटान यदि न रोका गया तो कुछ समय में प्रकृति के विनाश से आम जीवन संकट में पड़ जायेगा । कोरस गीत से लेखक स्पष्ट करता है—

ये पर्वत ये छैल छबीले, गीले पर्वत
लाल, बुरांशी, पद्म गुलाबी, श्वेतधेंकरी, पीले पर्वत
काफल, बेरी, बेड़ू, हिसालू, कीमू फले रसीले पर्वत
लेकिन आज लग रहे क्यों रोगी, थके व ढीले पर्वत ?
भादों की हरियाली में भी एक उदासी छाई.... ।

वन्या का परिचय देता हुआ पर्वतश्री का कथन—

कटे वृक्ष का ठूँट पकड़ कर
जो यूं रो सकती है
निःसन्देह वही बस अपनी
वन्या हो सकती है ।

वन्या को पर्वतपुत्री के रूप में लेखक ने चित्रित किया है । उसे जंगलों, वृक्षों से अगाध प्रेम है । उसके शब्दों में एक प्रश्न है, पर्वतों के उजड़ते स्वरूप को देखकर—

मेरी माता । देवी वनश्री यह क्या रूप बनाया ?
मेरे पर्वत पिता तुम्हारी जीर्ण शीर्ण क्यों काया ?

पर्वत अपनी दयनीय दशा को निम्न शब्दों में व्यक्त करता है—

---

१. महाभारत, पृ. ४४ (अप्रकाशित पाण्डुलिपि)

आलस स्वार्थ अभाव भूख से
पीड़ित मेरी संतति
असन्तुष्ट है रूष्ट उसी ने
की मेरी यह दुर्गति ।

पर्वतीय समाज की दीनहीनता को भी लेखक ने बताया है, जिससे वहाँ के सरस-सरल हृदय व्यक्ति वनसम्पदा को नुकसान पहुँचा रहा है। भविष्य के विषय में सोचने का उसे अवसर नहीं। वह वर्तमान की भूख से बेहाल है।

लेखक वनसम्पदा की रक्षा कर हरित क्रान्ति लाना चाहता है। इसे वन्या प्रकट करती है—

पर्वतश्री की और पर्वत की यह बेटी, यह वन्या
सजग हुई कर्त्तव्यबोध से, यह भटकी वनकन्या
अब मैं रूप बदलकर ग्राम्याओं में मिल जाऊँगी ।
×××××××××××××××××××××××××××××
उस दिन ही कुछ चैन मिलेगा, और सुख शान्ति मिलेगी
जब पर्वत मुस्काएगें और पर्वत श्री भी हँसेगी ।

नाटककार ने बड़ी नाटकीयता से जंगल के दुश्मनों, जंगली पशु-पक्षियों के शिकारियों एवं मानवता के विकास में बाधकों को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत कर अपना कार्य कहलवाया है—

लखिया भूत

रूप बदलकर आऊँगा मैं
आलस बनकर छाऊँगा मैं
अरे ! गाँव के सब पुरुषों को
शिथिल, सुषुप्त बनाऊँगा मैं ।

उसके बाद एक गीत के माध्यम से मानव जाति को क्रूर एवं नृशंसता के बारे में—

कितना लोभी है यह मानव
बाहर से सुन्दर लगता है
भीतर छुपा हुआ है दानव ।
इसे न भाते मृग के छैने
और न पशु पक्षी का कलरव
धन के लोभी खा जाते हैं
कितने ही भोले मृग शावक
कितना लोभी है मानव ।

वन्या मनुष्य को समझाती हुई कहती है कि इस पाशविक वृत्ति को त्याग दें—

तेरे भी तो बच्चे होंगे
प्यारे भोले अच्छे होंगे
उसको काश ! याद कर लेता
जब तरकश से तीर निकाला
रे यह तूने क्या कर डाला
आँसू से उपवन भर डाला ।

वनसम्पदा, वन्य पशु-पक्षियों के संरक्षण एवं पर्वतों के, जंगलों के विनाश पर ध्यान आकृष्ट कर इसे रोकने की जागृति पैदा करने का प्रयास करना चाहता है । इस समस्या को लेकर लेखक का यह संभवत: प्रथम गीति-नाट्य है ।

इसके अतिरिक्त कूर्मांचल के नाट्यकारों में डॉ. रमेशचन्द्र शाह एवं मृणाल पाण्डे का नाम प्रमुख रूप से सामने आ रहा है । डॉ. रमेश शाह का नाटक 'मारा जाई खुशरो' नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, १८९२ मृणाल पाण्डे के 'मौजूदा हालत को देखते हुए' एवं 'जो रामरचि राखा' प्रसिद्ध हैं ।

❖

अष्टम अध्याय

कूर्माचल के साहित्यकारों का साठोत्तरी निबंध एवं आलोचना साहित्य

'आलोचना' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लोच् धातु' से निष्पन्न हुई है, जिसका अर्थ है 'भली प्रकार देखना'। काव्यशास्त्र से बाहर इस शब्द का प्रयोग केवल छिद्रान्वेषण या दोष दर्शन के अर्थ में किया जाता है। आलोचना को अँग्रेजी में 'क्रिटिसिज्म' कहते हैं, जिसके मूल में ग्रीक शब्द 'क्रिटीकोश' शब्द है, क्रिटीकोश का अर्थ है—निर्णय देना। निर्णयवाची शब्द का प्रयोग ही इस तथ्य का द्योतक है कि अपने मूल में इस विधा का कार्य साहित्य के सम्बन्ध में अपना मत देने का अथवा गुण-दोषों पर विचार करने का ही रहा था।

साहित्यिक कृति के गुण-दोषों का निर्धारण तथा उसके प्रति अपना निर्णायक मूल्यांकन देने के अतिरिक्त समीक्षा का वास्तविक कार्य है कृति के सौन्दर्य का उद्घाटन करना, यही वास्तविक आलोचना का स्वरूप है।

कूर्माचली साहित्यकारों ने कविता और कहानी की तरह आलोचना एवं निबंध के क्षेत्र में भी लेखनी चलाई है, यद्यपि परिमाण में इन विधाओं पर उतना अधिक नहीं लिखा गया, किन्तु जो भी लिखा गया है वह सुन्दर और शिवं ही है। साठोत्तर काल में प्रमुख निबंधकार एवं आलोचकों में शिवानी, सुमित्रानन्दन पंत,, डॉ. रमेशचन्द्र शाह, डॉ. देवेश ठाकुर, जीवनप्रकाश जोशी, डॉ. बटरोही एवं डॉ. केशवदत्त रूवाली आदि का नाम उल्लेखनीय है।

शिवानी के प्रमुख निबंध संग्रहों में वातायन, गवाक्ष, दरीबा, झरोखा, जालक एवं झूला हैं। शिवानी ने अपने निबन्धों में भारतीय शिक्षा, संस्कृति, राजनीति एवं आचार-विचार से संबंधित विषयों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'वातायन' के संबंध में स्वतंत्र-भारत के सम्पादक अशोक जी के शब्दों में—

'शिवानी जी के इस 'वातायन' से भी बहुत विस्तृत और रंग-बिरंगे दृश्यपट दिखाई देते हैं। बिना पैसा कौड़ी लिए हड्डी बिठाने वाला, चमचमाती मोटरों पर पोश होटलों में महंगे डिनर खाते लोग, और बाहर एक-एक दाने को तरसते भिखारी। न जाने कितनी यादें, कितने कड़वे-तीते अनुभव, जो हमें रोज होते हैं और इनके पीछे है, लेखिका की गहरी संवेदना और अप्रतिम वर्णन शैली। ऊँचे अधिकारी अपने इन्द्रासन से हटते ही किस प्रकार नगण्य हो जाते हैं, छोटे-छोटे दफ्तरों के छोटे-छोटे अधिकारियों

के हाथों किस प्रकार प्रताड़ना सहते हैं, मृत पति की पेंशन लेने किस प्रकार महिमा को कदम-कदम पर हृदयहीन लाल-फीताशाही का सामना करना पड़ता है, ये सब अनुभव मार्मिकता के साथ शिवानी के 'वातायन' में मिलते हैं।'[१]

शिवानी की भाषा में सरलता एवं परिनिष्ठता परिलक्षित होती है, इसमें बौद्धिकता की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसका कारण लेखिका का एक सशक्त कहानीकार होना ही है। इनके निबंधों में—'एक से एक चुटीले प्रसंग.... मर्म को छू लेने वाली घटनाएँ.... कभी न भूल पाने वाले अनोखे चरित्र.... अति कुशल शब्द-शिल्पी तथा लोकप्रिय कथा-लेखिका शिवानी के निजी जीवन से जुड़े रोचक प्रसंग जो उनकी यादों के झरोखों से उभर-उभर कर उनकी चमत्कारी लेखनी की नोक पर उतरे हैं।'[२]

डॉ. जीवन प्रकाश जोशी ने समीक्षा के क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। प्रारंभ में लेखक ने परीक्षोपयोगी ग्रन्थों का प्रणयन किया, शनैः-शनैः उनके गहन समीक्षात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। डॉ. नवीनचन्द्र के शब्दों में—

'उत्तरकालीन समीक्षा की खाद बनी है।'[३] जोशी जी के अल्प आलोचना ग्रन्थों में 'बच्चन व्यक्तित्व और कृति', 'नाटककार मोहन राकेश', तथा 'कविता की पहचान' मुख्य है।

'वच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में प्रथमखण्ड में कवि के जीवन की विशिष्ट घटनाओं, संस्मरणों के माध्यम से व्यक्तित्व की सरल झाँकी प्रस्तुत की है, इसके पश्चात् बच्चन जी के साहित्य का क्रमिक विकास प्रस्तुत किया है।

'नाटककार मोहन राकेश' में नाटकीय तत्त्वों के आधार पर समीक्षा प्रस्तुत की गई है। 'कविता की पहचान' में लेखक के कवि और कविता का सम्बन्ध, कविता का कथ्य एवं शिल्प पर विभिन्न टिप्पणियों के साथ कविता के औचित्य-अनौचित्य पर प्रकाश डाला है।

डॉ. बटरोही का नाम साठोत्तरी आलोचकों की श्रेणी में उनके समीक्षात्मक लेखों के साथ ही 'कहानी रचना प्रक्रिया और स्वरूप' के प्रकाशन के बाद जुड़कर निरन्तर इस क्षेत्र में आता जा रहा है। 'कहानी रचना प्रक्रिया और स्वरूप' में लेखक ने कहानी रचना-प्रक्रिया, कहानी का रचना विधान, कहानी का रचना संसार एवं कहानी विधा-मूल्यांकन के प्रतिमान स्पष्ट करने के बाद अन्त में लेखक ने आधुनिक कहानी के विविध पहलुओं पर विचार व्यक्त किये हैं। कहानी रचना को समझने के लिए यह बटरोही जी की अनुपम भेंट है। इसके अतिरिक्त डॉ. लक्ष्मणसिंह 'बटरोही' जी की समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तकों की समीक्षाएं भी प्रकाशित होती रहती है।

---

१. वातायन, भूमिका, पृ. ५
२. वातायन, प्रकाशकी वक्तव्य
३. हिन्दी साहित्य को कूर्मांचल की देन, डॉ. नवीनचन्द्र, पृ. २५५

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने साठोत्तर हिन्दी साहित्य को काव्य के साथ ही निबंधों का अमूल्य उपहार भी भेंट किया है। 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' नाम के ग्रंथ में पंत जी के तीन निबंध प्रकाशित हुए हैं—'कला और संस्कृति' तथा 'साठ वर्ष और अन्य निबंध'। इसके अतिरिक्त सभी पुस्तकों की भूमिकाओं में पंत जी की साहित्यिक विचारधारा का अवलोकन किया जा सकता है।

'शिल्प और दर्शन' में काव्य के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए पंत जी के विचार—'यदि हम काव्य अथवा कला की संक्षिप्त परिभाषा बताना चाहें तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि काव्य सत्यं शिवं सुन्दरम् की अभिव्यक्ति है। दूसरे शब्दों में कविता की आत्मा सौन्दर्य के पंखों में उड़कर ही सत्य के असीम छोर छूती है। अतः काव्य का सत्य सौन्दर्य के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। सौन्दर्यविहीन सत्य शुद्ध दर्शन हो सकता है तथा आनन्द विहीन शिवं नैतिक साधना अथवा आचार मात्र हो सकता है पर काव्य नहीं।'[१]

आलोच्य ग्रन्थ में पंत जी ने काव्य भाषा के संबंध में विस्तृत विचार प्रस्तुत किये हैं। काव्य के लिए एवं ब्रजभाषा के उपयोग पर भी विस्तृत चर्चा की है। कला एवं संस्कृति में पंत के वार्ता, निबंध संकलित है। युग-बोध, मानवता इनके काव्य की विशेषता है, चाहे वह गद्य लेखक हो या पद्य।

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' जी ने ऐतिहासिक एवं विवरणात्मक निबंधों के माध्यम से पर्वतीय क्षेत्रों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विषयों से सम्बन्धित तथ्यों का उद्घाटन किया है। मद्यपान से उत्पन्न समस्याओं पर भी विचारात्मक निबंध लिखे हैं। 'संस्कृति संगम उत्तरांचल' (१९७७) 'कुमाऊँ और गढ़वाल के दर्शनीय स्थल' (१९७८) है। वैष्णव जी ने वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, जीवनीपरक, स्थान-विषयक भौगोलिक निबंध, साहित्यिक निबंध, आर्थिक निबंध, सामाजिक समस्यापरक एवं धार्मिक सभी विषयों में निबंध लिखे हैं। ये निबंध समय-समय पर विभिन्नपत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। उदाहरण के लिए 'चालक मद्यसार या पावर अलकोहल' (विज्ञान, जून १९५२, भाग ७७, संख्या ३), 'पावर अलोकहल एक सुगम उपाय' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २३ सितम्बर १९७३, पृ. ४७) 'हमारा मस्तिष्क' (मुक्ता, जनवरी, द्वितीय, १९८०, अंक ३२४, पृ. १५७-१६२), 'वरूण की राजधानी सुषा'[२], 'बाणासुर इतिहास के दर्पण में'[३], एवं 'मृत्फलक पर अंकित बिक्री-पत्र'[४], 'सैकड़ों साल से कुमाऊँनी व्यापारियों की रोमांचक यात्राएँ'[५], 'खिसकती हिमघाटी'[६], आदि निबंध प्रमुख है।

---

१. शिल्प और दर्शन, पंत पृ. २८०
२. कादम्बिनी, जुलाई, १९७४
३. कादम्बिनी, नवम्बर, १९६९
४. नवनीत, फरवरी, १९७७, पृ. ४०-४१ व १४३
५. धर्मयुग, १५ सितम्बर, १९७४, पृ. ४०-४१
६. कदाम्बिनी, जनवरी, १९७९, पृ. १५६-१६५

'संस्कृति संगम उत्तराचंल' में संस्कृति और सभ्यता, पर्वतीय लोक धर्म, पहाड़ी लोग और पहाड़ी संस्कृति, पहाड़ों के स्थायी निवासी, लोकभाषा और लोकसाहित्य, कुमाऊँनी बोली का उद्भव और विकास, पर्व और तिथिवार (त्योहार) आदि शीर्षकों में विभक्त है। इस कृति के संबंध में डॉ. ओमप्रकाश के शब्दों में—'हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार यमुनादत्त वैष्णव की पुस्तक 'संस्कृति-संगम उत्तरांचल' भारत के अत्यन्त विशिष्ट हिमालय क्षेत्र की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, धार्मिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के अध्ययन और परीक्षण का नवनीत है और इस क्षेत्र की संस्कृति की कई अर्थवत्ता को उजागर करती है।'[१] डॉ. छैलबिहारी लाल 'राकेश गुप्त' के शब्दों में—'श्री यमुना दत्त 'वैष्णव' अशोक ने अपनी इस पुस्तक से इस प्रदेश की लोक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पक्ष के अभाव की पूर्ति की है। उन्होंने कुमाऊँ की संस्कृति को एकदेशीय न मानकर उसे समूचे हिमवत्प्रदेशीय संस्कृति का एक अंग माना है। इस पुस्तक में कुमाऊँ के सांस्कृतिक इतिहास के परिचय के साथ लेखक ने पर्वत प्रदेश की संस्कृति की नवीनता, रोचकता, विचारोत्तेजकता और ऐतिहासिक गहराई के साथ विवेचन किया है।'[२]

डॉ. रमेशचन्द्र शाह कुमाऊँ के प्रमुख समीक्षकों में है। हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास आदि सृजन के साथ ही समीक्षा के प्रति भी निरन्तर जागरूक रहे और लिखते रहे। 'समानान्तर' (१९७३) इनकी प्रथम समीक्षा कृति है। इसमें समीक्षा के विभिन्न पक्षों पर विचार करने के बाद 'आंगन के पार द्वार' (अज्ञेय), 'काठ की घंटियाँ' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता) काव्य संकलनों की समीक्षा, भावनात्मक सर्जनात्मकता, शमशेर की कवितायें और हिन्दी कहानी, हिन्दी कविता पर कई लेख संकलित है। इसके बाद 'छायावाद की प्रासंगिकता' (१९७३) में प्रमुख छायावादी कवियों की सारगर्भित विवेचन के बाद इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'वागर्थ', जयशंकर प्रसाद 'शब्द निरन्तर' इनके अन्य समीक्षात्मक लेखों के संग्रह हैं। 'रचना के बदले 'शैतान के बहाने' एवं 'आडू का पेड़' शाह जी ललित निबंधों के संग्रह हैं, जिनमें छोटे-छोटे विषयों पर भावात्मक, रागात्मक निबंध संग्रहीत है, जो मनोभावों की सुन्दर अभिव्यंजना करते हैं।

डॉ. देवेश ठाकुर समीक्षा के क्षेत्र में कूर्मांचल ही नहीं अपितु सम्पूर्ण हिन्दी जगत् के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। आप लगभग चालीस पुस्तकों का संपादन-प्रकाशन कर चुके हैं। प्रमुख समीक्षा ग्रन्थों में 'नयी कविता के सात अध्याय' 'नदी के द्वीप' की रचना प्रक्रिया, हिन्दी कहानी का विकास, साहित्य के मूल्य, साहित्य की सामाजिक भूमिका, 'मैला आँचल' की रचना प्रक्रिया, इन समीक्षा ग्रन्थों का अध्ययन करने से लेखक की दृष्टि सम्पन्नता का पता चल जाता है। गहन अनुभूति एवं स्पष्टवादिता हर स्थान पर

---

१. संस्कृत संगम उत्तरांचल, विज्ञापन

२. संस्कृत संगम उत्तरांचल, प्राक्कथन

देखने को मिलती है। 'मैला आंचल की रचना प्रक्रिया' में देवेश ठाकुर ने उपन्यास की रचना-प्रक्रिया से टकराने के पहले १९५४ के आसपास कथा साहित्य में उठे आंचलिकता के सवाल पर गम्भीरता से विचार किया है और आँचलिक उपन्यासों के विकास-क्रम को भी स्पष्ट करने की कोशिश की है। इस विश्लेषण से आंचलिकता संबंधी भ्रान्तियों का कुहासा छटा है और कई महत्त्वपूर्ण तथ्य छनकर सामने आए हैं। इसके अतिरिक्त देवेश ठाकुर ने कई उत्कृष्ट निबंधों की भी रचना की है। 'कालेज निबन्ध और रचना', 'हिन्दी निबंध प्रदीप' और 'व्यवहार वीथिका' इनके निबंध संग्रह हैं।

डॉ. डी.डी. शर्मा ने भी भाषा वैज्ञानिक लेख और निबंध लिखकर हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की है। आपके उत्कृष्ट भाषा वैज्ञानिक ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक हिस्ट्री ऑफ उत्तराखण्ड', 'स्टडी आफ लोन वर्ड्स इन सेन्ट्रल पहाड़ी' और 'द फोरमेशन आफ कुमाऊँनी' लेंग्वेज १-२ भाग' (आंग्ल भाषा में) एवं 'राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण', 'भारत की सम्पर्क भाषा' आदि कई उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की है एवं वर्तमान में भी लेखन से निरन्तर जुड़े रहते हैं।

डॉ. ए.डी. पाण्डेय आलोच्य काल के सशक्त आलोचक एवं समीक्षक है। आजकल (नई दिल्ली) आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित सर्वाधिक चर्चित एवं नई स्थापनाओं से युक्त शोध-लेख 'कबीर की क्रान्तिकारिता से तुलसी की परंपरावादिता तक' (आलोचना अंक ८०) जैसे समसामयिक नवीन दृष्टिपरक लेख एवं 'आधुनिकता और आलोचना' पर १९८७ का सोवियत लैण्ड नेहरू एवार्ड प्राप्त समीक्षक है। आपके अंग्रेजी में भी साहित्यिक समस्याओं तथा उच्च शिक्षा की समस्याओं पर बीसियों लेख 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स', 'सन्डे स्टैंडर्ड, दैक्कन हैराल्ड, नेशनल हैराल्ड, हिन्दू आदि में अनगिनत पुस्तक-समीक्षाएं आदि प्रकाशित हैं।'[१]

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने 'कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य' में कुमाऊँनी भाषा एवं साहित्य के स्वरूप पर वर्णनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला है। स्थानीय भाषा की अर्थगत विशेषताओं का सम्यक् निरूपण करते हुए उसके स्वरों और व्यंजनों का सोदाहरण परिचय देना, उनके व्याकरण पर विचार करना, वाक्य रचना और अर्थ परिवर्तन की मुख्य प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है। विवेच्य कृति के विषय में कविवर सुमित्रानन्दन पंत के विचार—

'डॉ. पाण्डेय लोक साहित्य के मर्मज्ञ एवं मान्य विद्वान् हैं। लोक बोलियों के भाषागत, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्कारों के अध्ययन पर उनकी विशेष रुचि रही है। कुमाऊँ निवासी होने के कारण वे वहाँ की स्थानीय रचनाओं की महत्ता, सूक्ष्मता तथा भेदोपभेदों को समझने की विशेष क्षमता रखते हैं। उनका यह अद्भुत ग्रंथ कुमाऊँनी भाषा के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना जायेगा, इसमें मुझे संदेह नहीं।'[२] यही नहीं श्री पाण्डेय जी ने कई महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रणयन किया है।

---

१. व्यक्तिगत पत्र व्यवहार से प्राप्त जानकारी के आधार पर

२. कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य, आशीर्वचन, सुमित्रानन्दन पंत, पृ. ६

श्रीमती शान्ति जोशी ने 'सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य' नाम से दो भागों में कविवर पंत के सम्पूर्ण साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत कर स्तुत्य कार्य किया है। साहित्यिक कृतियों के साथ ही कवि पंत के व्यक्तिगत स्वभाव, रुचि, एवं वैयक्तिक जीवन के अनेक पहलुओं पर भी इसमें चर्चा की गई है, जिससे ग्रंथ और भी उपादेय हो गया है।

वर्तमान समय में डॉ. केशवदत्त रुवाली, डॉ. देवसिंह पोखरिया, डॉ. रमेश पंत एवं डॉ. दिनेश पाठक आदि विद्वान् कुमाऊँनी भाषा एवं साहित्य पर गम्भीरता से अध्ययन, मनन एवं उसके उन्नयन हेतु प्रयत्नशील हो रहे हैं।

❖

नवम अध्याय

कूर्माचलीय साहित्यकारों की अन्य साठोत्तर साहित्यिक-विधाएँ

कथा-साहित्य से अलग हटकर आत्म-कथा एवं जीवनी साहित्य के क्षेत्र की लघु आकार की विधा है संस्मरण। यद्यपि इसमें कथातत्त्व, चरित्र, घटनाएँ, परिस्थितियाँ, भाव-स्थितियाँ सब कुछ का समावेश रहता है, फिर भी यह कथा साहित्य के क्षेत्रान्तर्गत नहीं आती है।

भावनाशील व्यक्तित्व की स्मृतियों में छिपी हुई विशिष्ट मार्मिक अनुभूतियों की तथ्यपरक किन्तु रमणीक शैली में की गई अभिव्यक्ति संस्मरण कहलाती हैं। संस्मरण आकार की दृष्टि से बड़ा नहीं होता, जिस प्रकार उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन को एवं कहानी में जीवन के एक खण्ड को लिया जाता है, इसी प्रकार जीवन-यात्रा को व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने वाली विधाएँ होती हैं, आत्मकथा तथा जीवनी, तथा जीवन-यात्रा में आए हुए किसी एक प्रदेश को प्रस्तुत करने वाला होता है, संस्मरण। आत्मकथा एवं जीवनी ऐसे संस्मरणों का समुच्चय होता है जो अपने अथवा किसी दूसरे के जीवन को लेखक की दृष्टि से देखकर कारण-कार्य परम्परा में बाँधकर पुनः सृजित कर देता है, आकार लाघव होते हुए भी अपने आप में पूर्ण विधा है।

कूर्माचल के साहित्यकारों में संस्मरणात्मक लेखों एवं रेखाचित्रों के लिए शिवानी, हिमांशु जोशी, बटरोही, शेखर पाठक आदि का नाम उल्लेखनीय है।

शिवानी का नाम साठोत्तर संस्मरण लेखिकाओं में कूर्माचल नहीं अपितु सम्पूर्ण हिन्दी जगत् में प्रमुख स्थान का अधिकारी है। शिवानी के रेखाचित्रों के विषय में कविवर पंत के शब्दों में—'तुम अधिक से अधिक ऐसे ही संस्मरण लिखा करो, भूले बिसरे चेहरों को भी तुम जीवन्त बना देती हो।'[१] 'चाह दिन की' संग्रह में कुल पन्द्रह रेखाचित्र हैं, जिनसे संबंधित पात्रों का जीवन्त स्वरूप पाठक के सामने उपस्थित हो जाता है। 'शान्तिनिकेतन' शिवानी का दूसरा संस्मरण रेखाचित्र संग्रह है। इस पुस्तक के बारे में बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में—'अब तक, शान्ति-निकेतन के विषय में जितने लेख पढ़ने में आये हैं उनमें श्रीमती शिवानी की यह पुस्तक मुझे सर्वोत्तम जँची। यह आश्चर्य की बात है कि आश्रम की एक छात्रा, सबसे आगे बढ़कर, बाजी मार ले गयी और प्रतिष्ठित कहे जाने वाले लेखक पिछड़ गये।''''शिवानी की असाधारण सफलता का मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि हर चीज को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की

---

१. चार दिन की, दो शब्द, शिवानी

क्षमता उनमें विद्यमान है, भाषा पर उन्हें अधिकार है और अपने हृदयगत भावों को ज्यों का त्यों प्रकट कर सकती है।'[१]

'शान्तिनिकेतन' में विद्यार्थी जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ जैसे राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के आश्रम में पधारने की बात, आलू-परवल का किस्सा, आश्रम में गाँधीदिवस, खेलकूद, मनोरंजन की अनेक घटनाएँ संस्मरणों में बिखरी है तो वहीं श्रद्धेय गुरुजनों का हूबहू चित्र उपस्थित करने वाले रेखाचित्र, आश्रम के नौकर-चाकरों का संक्षिप्त रेखाचित्र एवं बस-चालक नीलमनी बाबू का संक्षिप्त रेखाचित्र कितना सुन्दर और स्वाभाविक बना है। शिवानी के संस्मरणों में, रेखाचित्रों में सबसे लुभाने वाली बात है उनके द्वारा पात्र की ही भाषा को हूबहू रख देने की असीम कला-कौशल। चाहे पात्र बंगला भाषी हो या आंग्ल भाषी या मराठी अथवा कुमाऊँनी। इसका कारण है लेखिका का बहुभाषा ज्ञान एवं पाण्डित्य। यथा गुरुदेव के द्वारा लेखिका के भाई को कहा गया वाक्य—'थाक त्रिभुवन, तोके आर बांग्लाओ सीखते हबे ना, आर तोके माछ ओ खाबे न।' (रहने दे त्रिभुवन, न तुझे बांग्ला सीखनी होगी न तुझे मछली ही खायेगी) इस प्रकार दूसरे की भाषा ज्यों की त्यों रखकर कोष्ठक में उसका अर्थ भी दे देती हैं।

शिवानी के विषय में गुरुदेव रविन्द्रनाथ की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली जो उन्होंने उन्हें एक बांग्लाभाषा में कविता पढ़ने पर लिखित रूप से पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुई—

हिमालयेर कन्या तूमी गौरीर महन
नीरबे फुटिओ हाँसी फूलेर जेमन
सकलेर भालो वेशे करो आयनार
शान्तिर निर्झर तोरे
जीवने लेमार।[२]

(तुम हिमालय की कन्या गौरी सी हो। फूल की नीरव हँसी-सी तुम प्रस्फुटित होती रहो। सबको प्यार कर अपना बनाओ और ईश्वर करे, शान्ति निर्झर तुम्हारे जीवन में बहता रहे।)

'मंजीर' में देश समाज, परिवार, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति आदि से सम्बन्धित विभिन्न संस्मरणों का संकलन है। शब्दों के द्वारा मूर्त रूप खड़ा कर देना शिवानी की विशेषता है, चाहे संस्मरण हो या रेखाचित्र या उनके कथा साहित्य का कोई अंश। 'क्यों' 'वित्रू', 'झूला', 'गुरुदेव' और 'उनका आश्रम' इनकी संस्मरणात्मक कृतियाँ हैं।

बाल-साहित्य

शिवानी ने बालकों के उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी साहित्य सृजित किया है। 'बचपन की याद', 'राधिका सुन्दरी', 'हर-हर गंगे', 'अलविदा', 'स्वामी' एवं 'भूत

---

१. शान्ति-निकेतन, पृ. ५-६
२. शान्ति-निकेतन, शिवानी, पृ. १५

अंकल' तथा 'आइसक्रीम' इनकी मुख्य बालोपयोगी रचनाएँ हैं, जो अत्यधिक मार्मिक एवं प्रभावशाली, सरल-सरस भाषा में लिखी गई हैं।

इसके अतिरिक्त यात्रा वृतान्त में 'यात्रिक' नाम से प्रकाशित हो चुका है। संस्कृति सम्बन्धित पुस्तकों में 'हे दत्तात्रेय' उनकी प्रौढ़कृति है। गद्य-साहित्य की सभी विधाओं में शिवानी की लौह लेखनी ने चमत्कार प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की और निरन्तर करती जा रही है।

हिमांशु जोशी ने भी बहुत कुछ लिखा है। आपकी तीन बालोपयोगी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं—'हिम का हाथी' (कहानी संग्रह), 'अनोखे मित्र' (बाल उपन्यास) एवं '(बचपन की याद रही कहानियाँ)' हैं। इनके माध्यम से लेखक ने बालकों में साहस, धैर्य, वीरता के साथ ही सत्य, अहिंसा, प्रेम के गुणों का समावेश करने की प्रेरणा दी है।

यमुनादत्त वैष्णव ('अशोक') जी ने भी बाल-साहित्य पर बहुत कुछ लिखा है। अशोक जी ने वैज्ञानिक तथ्यों को रखकर बालकों के मन में मनोवैज्ञानिक रूप से पड़ने वाले दुष्परिणामों का परिहार कर उन्हें स्वस्थ दिशा निर्देशन भी दिया है। सूर्य की कहानी, चाँद-तारों की कहानी में लेखक ने बालकों को सौर-मण्डल की शिक्षाप्रद जानकारी दी है। 'भूत की वेदना' उपन्यास में अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य करते हुए निडर होने तथा प्राचीन अंध-परम्पराओं का विरोध किया है।

जीवनचन्द्र पंत की बाल-कहानियों में जादू का अनार, मायाजाल, मृगकन्या, परीक्षा, मंत्री-पुत्र आदि प्रमुख है। बालकों के लिए 'कुमाऊँ की लोक कथाएँ' भी सरल भाषा में प्रकाशित है।

बटरोही जी का बाल साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब तक एक लघु उपन्यास 'सुदामा' एवं 'वीर गाथाएँ' (कहानी संग्रह) प्रकाश में आ चुके हैं।

'सुदामा' उपन्यास में प्राचीन पौराणिक कथानक को सरल एवं सहज रुप में आधुनिक समस्या से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। स्वयं लेखक ने कृष्ण के बारे में सुदामा के विचार एवं विस्मय में पड़ जाना निर्धन व्यक्ति का समृद्धि देखकर होने वाली प्रतिक्रिया है। 'श्रीकृष्ण के बारे में उनकी समस्त धारणाएँ निर्धन व्यक्ति के रुप में निर्मित होती हैं, निरन्तर अभावों को सहने के बाद उनका अस्तित्व ऐसा बन गया है कि वस्तु को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है। उनका चिड़चिड़ापन, थोड़े में ही प्रसन्न, थोड़े में ही अप्रसन्न होने वाला स्वभाव भी इसी कारण निर्मित होता है।'[१]

लेखक का उद्देश्य बालकों में आत्म-विश्वास भरकर आत्महीनता को त्यागने की प्रेरणा देना रहा है। वीरगाथाओं में विभिन्न देशों के वीरों की कहानियाँ, साहसपूर्ण कृतियों का उल्लेख है।

---

१. सुदामा, लेखकीय

जीवनी-साहित्य

आत्मकथा साहित्य में 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' पंत जी की श्रेष्ठ कृति है। इसमें लेखक ने अतीत के साठ वर्षों पर प्रकाश डाला है। इसके प्रारंभ में कविवर पंत ने अपने बाल्य जीवन से संबंधित संस्मरणों का वर्णन किया है। तत्पश्चात् अपने साहित्यिक विकास-क्रम में अत्यन्त संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' में पंत की संश्लिष्ट किन्तु सौन्दर्य मुखी शैली जीवन्त हो उठी है। एक निर्भीक कलाकार की आत्म विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति, एक मनोवैज्ञानिक का प्रयोगशाला में, सूक्ष्म संवेदनाओं का, सूक्ष्मदर्शी परीक्षण एवं प्रकृति, परिवार-परिवेश, शिक्षा, अन्त: संघर्ष, बाह्य-संघर्ष सभी एक-दूसरे को एक ही नव मानवता एवं मानव जाति के उल्लासमय, शिवमय जीवन की आकांक्षा करते हैं।'[१]

अपने जीवन में स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े रहने की भावात्मक वृत्ति को लेखक ने स्वीकार किया है—'मैंने देश के आन्दोलन में बाहर से तो कभी भाग नहीं लिया और न भाई की तरह मैंने कभी कारावास ही झेला, पर हमारे राष्ट्रीय जागरण के आन्दोलन का जो भीतरी पक्ष रहा है उसमें मैं निरन्तर जूझता रहा हूँ और अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैंने उसका ऋण भी चुकाया है।'[२]

पंत जी के साहित्य को समझने के लिए उनका यह जीवनीसाहित्य बहुत सहायक है, इसमें संदेह नहीं।

इतिहास

कुमाऊँ के साहित्यकारों ने इतिहास लेखन की रूचि दिखाई है। स्व. बद्रीदत्त पाण्डेय का 'कुमाऊँ का इतिहास' सुप्रसिद्ध शोध-प्रबन्ध के रूप में कूर्माचल की झाँकी प्रस्तुत करता है। इसके बाद श्री यमुनादत्त वैष्णव जी का साठोत्तर काल में रचित 'कुमाऊँ का इतिहास' (खस जाति के परिप्रेक्ष्य में) प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति है। इसमें कुल ३१ अध्याय है। प्रारंभिक छब्बीस अध्यायों में कुमाऊँ का राजनीतिक तथा शेष अन्तिम अध्यायों में सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत कृति के प्रणयन में कुमाऊँ गजेटियर 'गजेटियर आफ हिमालियन डिस्ट्रिक्स'[३] के अलावा प्राचीन ईरानी, असीरियन तथा भारतीय साहित्य में अपनी स्वतंत्र मान्यताओं को प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया है। सांस्कृतिक खण्ड में कुमाऊँ के तीज, त्योहारों, पर्वों, उत्सवों का, मेलों तथा अन्य सामाजिक कार्यकलापों का विवेचन वर्णनात्मक एवं विचारात्मक शैली में रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इतिहास लेखन में कूर्माचल के मनीषियों का ध्यान प्राचीन समय से ही रहा है। स्कन्धपुराणान्तर्गत मानसखण्ड, जिसमें लगभग पाँच हजार श्लोकों में कुमाऊँ की राजनीतिक, प्राकृतिक, भौगोलिक जानकारी

१. सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य, भाग-२, पृ. ३७४ शान्ति जोशी

२. साठ वर्ष : एक रेखांकन, पृ. ३७

३. गजेटियर ऑफ हिमालियन डिस्ट्रिक्स, एटकिंशन

भरी पड़ी है, जिसके रचयिता कूर्माचल के ही विद्वान रहे हैं। आज भी इस दिशा में कई नवयुवक अन्वेषण कर रहे हैं।

पत्रकारिता

पत्रकारिता के इतिहास में कूर्माचल साहित्य का प्रथम नाम आता है, प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्तमार्तण्ड' के बाद दूसरा स्थान 'अल्मोड़ा अखबार' का आता है। इस अखबार की परिनिष्ठित भाषा एवं शुद्धखड़ी बोली के प्रयोग को स्वयं शुक्ल जी ने स्वीकार किया है।'[१] स्व. पाण्डेय जी ने भी इस बात को स्वीकार किया है— 'कूर्माचल का प्रथम समाचार-पत्र 'अल्मोड़ा अखबार' ही नियमित रूप से प्रकाशित हुआ, जिसे हिन्दी का दूसरा समाचार-पत्र कहा जा सकता है। अल्मोड़ा अखबार का प्रकाशन सन् १८७१ में पं. बुद्धिबल्लभ पंत के सम्पादन में हुआ।'[२]

अल्मोड़ा अखबार के बाद कुमाऊँ में निरन्तर पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन होता रहा है। सम्प्रति दो दैनिक अखवार, लगभग अर्द्धशतक साप्ताहिक, पन्द्रह पाक्षिक, लगभग दस मासिक पत्र-पत्रिकायें निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं।

कूर्माचली साहित्यकारों ने सम्पादन के कार्य में भी काफी ख्याति अर्जित की है। हिमांशु जोशी, मनोहरश्याम जोशी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से जुड़े हैं तो प्रो. देवेश ठाकुर ने कई कहानियों का संकलन किया एवं 'समीचीन' त्रैमासिक शोध-पत्रिका का सम्पादन किया। 'चीड़ के वनों में' हिमांशु जोशी का सम्पादित कहानी संकलन है, जिसमें प्रमुख कूर्माचली कहानीकारों की १८ कहानियों का संग्रह है। मृणाल पाण्डे ने 'वामा' पत्रिका का सम्पादन संभाला है।

अनुवाद कार्य में भी यहाँ के साहित्यकार किसी से कम नहीं हैं। 'सुबह के सूरज' हिमांशु द्वारा टालस्टाय के बाल नाटकों का अनुवाद है। जोशी ने हेनरी जेम्स के बाल उपन्यासों का हिन्दी रुपान्तर प्रस्तुत किया है। बृजमोहन साह के 'आ बैल मुझे मार' 'टेड़ो टेड़ो जाय' आदि रुपान्तरित नाटक है।

कैलाश शाह ने कई चिकित्सा साहित्य सम्बन्धी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद किया है। डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ने चरकसंहिता सरीखे विशालकाय ग्रंथ का हिन्दी एवं प्रो. गोपालदत्त पाण्डेय जी ने व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी सरीखे क्लिष्ट ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत कर हिन्दी संसार को अद्‌भुत भेंट प्रदान की है।

अनुवाद कार्य में श्री जानकीबल्लभ एवं श्यामाबल्लभ का भी उल्लेखनीय स्थान है। आपने लगभग बारह वर्ष तक विदेशी भाषा प्रकाश ग्रह पेइचिङ में रहकर कई चीनी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद किया। 'बसन्त के रेशम के कीड़े' इस पुस्तक में चीन के शीर्षस्थ समकालीन कथा शिल्पी माओ तुन द्वारा १९३२ और १९३३ में लिखी गई

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ४२७
२. कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डेय, पृ. १५१

पाँच कहानियाँ संकलित हैं, जिनमें कथाकार ने अपनी सशक्त लेखनी के जरिए इस शताब्दी के चौथे दशक के पूर्वार्द्ध के चीनी समाज की विषमताओं पर तीखा प्रहार किया है तथा साम्राज्यवादी आक्रमण और सामन्ती शोषण-उत्पीड़न की दुहरी चक्की में पिस रही चीनी जनता की व्यथा-कथा का जीवन्त और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।'[१]

प्रस्तुत कृति में सरल एवं सरस भाषा में अनुवाद के साथ ही भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए कई चीनी शब्दों का प्रयोग ज्यों का त्यों किया है। फुटनोट में उनके हिन्दी अर्थ समझा कर दुरूहता से भी बचा दिया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने चीन-भारत सम्बन्धों के इतिहास पर प्रो. चिन खमू की सुप्रसिद्ध कृति का भी हिन्दी अनुवाद किया।

'दो अन्य रचनाएँ—चीनी साहित्य का इतिहास' एवं 'पश्चिमी स्वर्ग की तीर्थयात्रा' (शी यओची) का अनुवाद-कार्य भी बड़े परिश्रमपूर्वक सम्पन्न किया। ये दोनों महत्त्वपूर्ण कृतियाँ सम्प्रति प्रकाशनाधीन हैं।'घुड़सवार मेढक', 'भैंसा और बाघ' नाम से चीनी लोक कथाओं का रोचक अनुवाद के साथ-साथ चीन की लोक-कथाओं को अनेक भागों में अनूदित किया गया। इनमें बहुजातीय चीनी समाज की विभिन्न जातियों के समृद्ध लोक-साहित्य के सरस-शिक्षाप्रद आख्यान सरल-सुबोध भाषा में प्रस्तुत किए हैं। मनुष्यों और पशु-पक्षियों के जीवन की घटनाओं के माध्यम से जन-समुदाय के बुद्धि-विवेक को प्रतिविम्बित करने वाली ये लोककथाएँ चीन में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त 'लुशुन की चुनी हुई कहानियाँ, ये चिन की कहानियाँ 'आफन्ती के किस्से', 'इन्द्रधनुषी सड़क' (उपन्यास), 'तीन घमण्डी बिल्लियाँ, 'जादू की तुम्बी' (उपन्यास) 'ये शङथाओं की बालकथाएँ', छाओ टवी : तूफान' (नाटक', 'याङ.श्वो : हिमकण') (लघु उपन्यास) चीन की प्राचीन नीतिकथाएँ आदि का हिन्दी अनुवाद कर हिन्दी साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि में सराहनीय कार्य किया है।

इतना ही नहीं श्री जानकीबल्लभ जी ने कुछ संस्कृत-हिन्दी नाटकों का चीन में मंचन कराने में भी सहयोग दिया। उनके द्वारा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का शकुन्तला नाटक नाम से मंचन चीनी रंगमंच में एक मील का पत्थर साबित हुआ। संप्रति चीनी दूतावास के सूचना एवं संस्कृति कार्यालय में कार्यरत हैं। आपने एक वृहदाकार हिन्दी चीनी मुहावरा कोश तैयार करने में पेइचिङ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर चिन तिङ हान को विशेष सहयोग दिया। हिन्दी जगत् को इनसे काफी आशा है।

उपसंहार

पिछले अध्यायों में कूर्माचल साहित्यकारों की शाश्वत साधना की, उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की चर्चा की गई है। इस परिचर्या में जहाँ प्रबंध-संग्रह की सीमा का नियंत्रण है, वहीं भाषागत नियंत्रण भी रहा है। इस कारण मैं चाहते हुए भी रचनाओं का विवेचन विस्तृत रूप से नहीं कर पाया तथा हिन्दी से इतर संस्कृत तथा कुमाऊँनी

---

१. बसन्त के रेशम के कीड़े, माओ तुन, अनुवादक-जानकी बल्लभ, प्रथम सं. १९८१ (विज्ञापन), विदेशी भाषा प्रकाशन, गृह, पेइचिङ चीन

भाषाओं में हुए विपुल साहित्य को स्थान नहीं दे पाया हूँ। कुमाऊँनी के कई साहित्यकारों, लोक-साहित्य के कई मनीषियों की रचनाओं का अप्रासंगिक होने से आलोचना में स्थान नहीं मिल पाया है। हिन्दी साहित्य में भी केवल उन्हीं मनीषियों की विवेचना हुई है, जिनके विषय में श्रमसाध्य सामग्री उपलब्ध थी। कुछ विद्वानों के व्यक्तित्व की मात्र सूचनाएँ ही प्राप्त हो सकी, अत: उसी रूप में उनका परिचय दे दिया गया है। अनुसंधान करने पर इस सन्दर्भ में और भी कई नये तथ्य प्रकाश में आयेंगे, इसमें सन्देह नहीं। आशा है भावी गवेषक इस अभाव की पूर्ति करते हुए इस मार्ग में अग्रसर होंगे। भविष्य में कभी कूर्मांचल के हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में किसी मनीषी की लेखनी उठेगी तो उसमें यह प्रयास भी सहायक तथा उपयोगी ठहर सकता है।

भूल होना मानव स्वभाव है, अस्तु अज्ञानवश या प्रमादवश, जहाँ कहीं यत्किंचित् भी भूले हो गयी हों तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

❖